# कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य में नारी-चेतना

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला की
पी-एच०डी० (हिन्दी) की उपाधि
हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
जुलाई 1999


निर्देशिका उषा चौहान

डॉ० उषा चौहान

प्राध्यापिका, हिन्दी-विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
सांध्य महाविद्यालय, शिमला

शोधकर्त्री
निशा देवी

निशा देवी

हिन्दी-विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला-171005

Th
891.4338
स 876 न

5.08

H. P. UNI... SHIMLA
Acc No. 170801
Subject हिन्दी
Price
Source हि० प्र० वि० शिमला
Date 28-7-2000

Class on 10-8-2000 Signs
Catal. on 10-8-2000

# प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती निशा देवी द्वारा हिन्दी–विभाग से पी–एच0 डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत "कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में नारी–चेतना" नामक यह शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशन में सम्पन्न, उनके अपने शोधकार्य का परिणाम है और इसे अभी तक किसी अन्य विश्वविद्यालय में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है। जहां तक मुझे जानकारी है, इनका कार्य मौलिक है। मैं पी–एच0 डी0 की उपाधि के लिए इनके शोध प्रबन्ध को परीक्षार्थ संस्तुति करती हूँ।

उषा चौहान

दिनांक 23.7.11

डॉ0 उषा चौहान
प्राध्यापिका, हिन्दी–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
सांध्य महाविद्यालय
शिमला

# कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य में नारी-चेतना
## विषयानुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| 0.0 | प्राक्कथन | i – x |
| 0.1 | विषय का स्पष्टीकरण | |
| 0.2 | सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण | |
| 0.3 | विषय का महत्व | |
| 0.4 | विषय का परिसीमन | |
| 0.5 | विषयानुक्रम | |
| 0.6 | आभार | |

**प्रथम अध्याय : कृष्णा सोबती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व** 1 – 41

| | |
|---|---|
| 1.1 | जीवन परिचय |
| 1.1.1 | जन्म |
| 1.1.2 | शिक्षा |
| 1.1.3 | पारिवारिक जीवन |
| 1.1.4 | आन्तरिक व्यक्तित्व |
| 1.1.5 | बाहरी व्यक्तित्व |
| 1.2 | कृतित्व |
| 1.2.1 | उपन्यास साहित्य |
| 1.2.2 | कहानी साहित्य |
| 1.2.3 | संस्मरण साहित्य |
| 1.2.4 | विविधा |

**द्वितीय अध्याय : चेतना : सामान्य परिचय** 42 – 62

2.1 चेतना : शाब्दिक अर्थ

2.2 चेतना : परिकल्पना एवं स्वरूप

2.3 चेतना : परिभाषाएँ

2.4 कृष्णा सोबती के साहित्य में नारी–चेतना

**तृतीय अध्याय : कृष्णा सोबती पूर्व महिला कथाकारों के** 63 – 87
**कथा-साहित्य में नारी-चेतना : एक विहंगम दृष्टि**

3.1 पचास से पहले : महिला कथाकार और उनके कथा–साहित्य में युग–स्थिति

**चतर्थ अध्याय : कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी-चेतना: विश्लेषण और विवेचन** 88 – 110

4.1 मूल्य विघटन और स्थापित नैतिकता की निरर्थकता

4.2 स्त्री–पुरुष बदलते सम्बन्ध सन्दर्भ

4.2.1 स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में द्वन्द्व

4.2.2 स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में रिक्तता, व्यथा और विसंगति

4.3 स्वावलम्बी, स्वतन्त्र और महत्वाकांक्षी स्त्री

4.4 परम्परागत मूल्य–भ्रमों से युक्त, वर्तमान जीवन की त्रासदी में स्त्री की स्थिति

4.5 जिजीविषा के रहस्यों की खोज में रत स्त्री

**पंचम अध्याय : कृष्णा सोबती के उपन्यासों में** 111 – 147
**नारी-चेतना एवं विश्लेषण**

5.1 शरीर की सहज माँग का खुला चित्रण : मित्रो मरजानी

5.2 परम्पराओं मे जकड़ी पाशो की दु:ख–गाथा का सजीव चित्रण : डार से बिछुड़ी

5.3 एक ठण्डी नारी के कुंठा ग्रस्त जीवन का चित्रण : सूरजमुखी अँधेरे के

5.4 एक पूर्ण पुरुष के प्यार की तलाश : तिन पहाड़

5.5 हिन्दू–मुस्लिम एकता एवं मानवीय सम्बन्धों में अन्तर्निहित अन्तविरोधों का गम्भीर विश्लेषण : ज़िन्दगीनामा

5.6 निर्भय जिजीविषा का महाकाव्य : ऐ लड़की

5.7 संयुक्त परिवार के सन्दर्भ में रखैल महक और मालिक के आपसी सम्बन्धों का गहरा और जीवन्त चित्रण : दिलो–दानिश

**षष्टम अध्याय : कृष्णा सोबती की नारी-चेतना : यथार्थता और समसामयिकता के सन्दर्भ में** 148 – 181

6.1 कृष्णा सोबती युगीन समाज और कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में समाज

6.2 व्यक्तिमूलक जीवन बोध

6.3 नारी मुक्ति आन्दोलन : गतिरोध और कारण

6.4 पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था और कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य के नारी पात्रों की त्रासदी

6.4.1 अशिक्षा

6.4.2 आर्थिक परतन्त्रता

6.4.3 शारीरिक कमजोरी के कारण

6.4.4 सामाजिक रूढ़ियों के कारण

6.4.4.1 नारी–जूती

6.4.4.2 पुरुष की आज्ञाकारिणी

6.4.4.3 पतिव्रता

6.5 विशिष्ट वर्ग की नारी की भूमिका

6.6 कृष्णा सोबती और नया कथा–परिवेश

**उपसंहार** 183 – 188

**परिशिष्ट** 189 – 228

परिशिष्ट– I कृष्णा सोबती की भाषा–शैली

परिशिष्ट–II कृष्णा सोबती से साक्षात्कार का विवरण

परिशिष्ट–III ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

सहायक ग्रन्थ

कोश

हिन्दी कोश

अंग्रेजी कोश

पत्र–पत्रिकाएँ

# प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी–साहित्य के क्षेत्र में जिन विद्याओं का विकास हो रहा है उनमें लोकप्रियता की दृष्टि से कथा–साहित्य का सबसे अधिक महत्व है। कथा-साहित्य की दोनों विद्यायें–उपन्यास तथा कहानी साहित्य की सशक्तम तथा जीवन की अन्तः बाह्य अनुभूतियों का प्रतिफलन हैं। वस्तुतः कथा–साहित्य में जीवन के व्यापक सन्दर्भों को सूक्ष्मता से चित्रित करने की क्षमता है। जीवन का सही और व्यापक चित्रण जितना कथा–साहित्य में हुआ है, अन्यत्र नहीं। कथा–साहित्य अन्य साहित्य विद्याओं की अपेक्षा विचारों और भावनाओं के प्रति अधिक संवेदनशील रहा है।

स्वातन्त्र्योत्तर शब्द और इसकी अर्थबोधक स्थिति आधुनिक हिन्दी कथा–साहित्य के समीक्षा सन्दर्भ में एक पुष्ट विभाजक बिन्दु के रूप में व्याख्यायित है। भारतीय जीवन में इस शब्द का अर्थ है वह कालवधि जो 15 अगस्त 1947 के पश्चात् की है। जिसमें आधुनिक जीवन की समस्त सम्भावनाएँ ओर देशगत बहुविध विकासशील वृतियों के प्रसार की कल्पनायें हैं। स्वातन्त्र्योत्तर शब्द नये हिन्दी–साहित्य को नये मनुष्य और नये जीवन की खोज की संज्ञा प्रदान करता है और महत्वपूर्ण बनाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से भारतीय सामाजिक व्यवस्था और विभिन्न क्षेत्रों को पुनः नया संस्कार, सन्दर्भ और परिदृश्य मिला और नयी उमंग और भावना ने जन्म लिया। इससे नर–नारी दोनों प्रभावित हुए। इसी परिप्रेक्ष्य में नारी के विविध रूपों में परिवर्तन के विभिन्न कारणों को रेखांकित किया जा सकता है जिसके कारण कथाकारों के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया।

स्वातन्त्र्योत्तर महिला लेखिकाएँ कविता या कहानी तक ही सीमित नहीं रही अपितु उसने साहित्य की हर विद्या में पुरुष रचनाकारों के साथ बराबर की भागीदारी निभाई है। साथ ही उसने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने प्रबल युग–बोध का परिचय दिया ।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा–साहित्य जिन महिला साहित्यकारों पर गर्व करता है उनमें कृष्णा सोबती का नाम सहजता से लिया जा सकता है। महिला लेखिका अपनी नारी–चेतना को किस हद तक और किस ईमानदारी के साथ व्यक्त करने की क्षमता रखती है

उनमें कृष्णा सोबती का नाम सर्वप्रथम आता है। सावित्री डागा के अनुसार अपनी लघुता में भी महत्ता, शीतलता में भी जीवन की उष्मा तथा सुन्दर तन में शिवम् छिपाये रहने वाली यह नारी, सदा से समाज का ही नहीं, साहित्य का भी प्रेरक तत्त्व रही है। जिस प्रकार नन्ही सी अरुण किरण के संस्पर्श से जल–थल, तल–अतल, जड़–चेतन कोई भी अछूता नहीं रह पाता, इसी प्रकार समाज का प्रत्येक कोना, साहित्य की प्रत्येक विद्या नारी से शून्य नहीं है। फलतः नारी साहित्यारम्भ से लेकर आज तक कथा–साहित्य के विकास में निरन्तर सहयोग देती आ रही है।

महिला रचनाकारों ने नारी को उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व दिया है। नारी कोई वस्तु अथवा सम्पत्ति नहीं जिस पर किसी का अधिकार आवश्यक हो। नारी भी पुरुष की ही भान्ति जीवन्त प्राणी है जो अपनी निजी सोच रखती है। अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करने की स्वतन्त्रता चाहती है अगर वह संकल्प के साथ प्रयास करे तो उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। वह न सिर्फ अपना अपितु समाज का नव निर्माण भी कर सकती है। लक्ष्मी, काली और दुर्गा की यह सन्तति शारीरिक बल में भले ही कमतर समझी जाती रही हो मगर आत्मबल में अपना कोई सानी नहीं रखती। वह आत्मबोध से भी युक्त है। जिन्होंने नारी की बद्धमूल जकड़न से मुक्ति, उसकी सोच, उसकी वेदना और स्वतन्त्र सत्ता को ईमानदारी से चित्रित किया है। एक नारी का लेखिका होकर नारी के बारे में लिखना अपने आप में एक भारी विडम्बना है। उसका संकोचशील स्वभाव उसे एक सीमा तक पहुँच कर आगे बढ़ने से रोकता है। पर कृष्णा सोबती जैसी महिला लेखिका ने नारी मन के अनछुए पहलुओं को बहुत ही तन्मयता और खुलेपन से चित्रित किया है। कृष्णा सोबती ने नारी–चित्रण में कहीं भी पक्षपात नहीं किया है। उन्होंने नारी के अच्छे रूपों के साथ–साथ नारी के बुरे रूप के अन्तर्मन में बैठकर उसे जानने का जो अद्वितीय प्रयास किया है वह अपने आप में प्रशंसनीय है।

कृष्णा सोबती ने नारी मुक्ति का संघर्ष, नारी की आर्थिक मुक्ति के माध्यम ढूंढने का प्रयास किया है। कृष्णा सोबती ने प्रेम–विवाह, स्त्री–स्वतन्त्रता, वेश्या–जीवन, नारी–शोषण, दहेज–प्रथा आदि समस्याओं को विस्तार से वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त

कृष्णा सोबती ने नारी की अतृप्त, यौन समस्याओं विकृतियों, अन्तर्द्वन्द्वों, कुण्ठाओं, अभावों, आक्रोश और अनैतिकता आदि समस्याओं को यथार्थवादी अभिव्यक्ति दी है।

आज भारतीय नारी जीवन के अनेक स्तरों पर प्रताड़ित–अपमानित एवं शोषित है। इसके विपरीत यह भी स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन में होने वाले विभिन्न प्रकार के आन्दोलनों, सामाजिक–आर्थिक विकास के साथ–साथ नारी की चेतना में भी अन्तर आया है और इसी चेतना सम्पन्नता के कारण वह अपनी अस्मिता को पहचानकर उसकी रक्षा एवं अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्षरत भी दिखाई देती है। कृष्णा सोबती ने अपनी रचनाओं में नारी की उभरती इस नवीन चेतना को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है।

## 0.1 विषय का स्पष्टीकरण

नारी चेतना का साहित्य में चित्रण विशेष रूप से मध्यवर्गीय नारी के सन्दर्भ में हुआ है। गाँव की अशिक्षित मेहनतकश स्त्रियों में भी पुरुषों की शोषक नजरों का सामना करने का साहस आ गया किन्तु धूपछांही रंग के जैविक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर निरन्तर संघर्षरत है।

'चेतना' शब्द भारतीय दर्शन से संस्कृत और हिन्दी साहित्य में लिया गया है। सामान्यतः चेतना का अर्थ होश में आना या बुद्धि विवेक से काम लेना अर्थात विषयों व्यवहारों का ज्ञान होना है। 'चेतना' चित्त का साकारात्मक गुण है। इससे बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है और आन्तरिक अनुभूतियों की अवधारणा बनती है।

युगीन परिवेश में सांस लेते मनुष्यों में रूढ़ियों के कारण जड़ता या अज्ञानता कहीं–न–कहीं, किसी–न–किसी रूप में सदैव वर्तमान रहती है। युग की अधोगति और तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों में जो विचारधारा की प्रतिभा आकर्षक दीप्त बनकर चमक उठे और जिसके प्रभाव से समूचे युग में नवजागरण की लहर दौड़ जाये, वही चेतना है।

कृष्णा सोबती स्वयं एक नारी है और लेखिका भी। स्वयं नारी होने का परिणाम है कि अनवरत एक ऐसी खोज में रत दीखती है जहाँ उन्हें अपनी नारी–जाति के सही रूप का ज्ञान हो सके, नारी की आत्मा की आवाज को पकड़ सके, उसे सच्चे मानवीय धरातल पर

प्रस्तुत करते हुए उनकी जटिलतम गहराइयों में जाकर उनकी खोज कर सके। वास्तव में कृष्णा सोबती ने स्त्री–मूल्यों या नारी–चेतना की पहचान अपने तमाम साहित्य में की है। अपने चारों ओर फैली हुई शिक्षित, मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय नारी की कठिनाइयाँ, उसकी बेबसी, पुरुष निर्भरता से मुक्ति पाने की कामना तथा आन्तरिक संस्कारों भावनाओं और संवेदनाओं के बाहरी स्थितियों और दबाबों को झेलती, कभी उनको तोड़ती और कभी खुद उनके सामने टूटती हुई नारी के प्रति वह काफी जागरूक और उस स्थिति की विध्वंसक रही है।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने शोध का विषय 'कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य मे नारी चेतना' चुना है। कृष्णा सोबती का कथा–साहित्य नारी–चेतना को उजागर करता है। अतः प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का विषय नवीन एवं मौलिक है।

## 0.2 सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण

समाज की मान्यताएँ और मर्यादाएँ समय के साथ बदलती रहती हैं और नारी के सोचने, समझने और परिस्थितियों मे भी अन्तर आता रहता है। इन परिवर्तनों को लेखकों ने अपने कथा–साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में नारी विषय को लेकर कई शोध–कार्य हुए हैं। अब तक के विविध रूपों को लेकर आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य पर शोध–कार्य नाममात्र ही हुआ है। उनके साहित्य में नारी–चेतना को लेकर अभी तक कार्य नहीं हुआ है। इसीलिए इस विषय को शोध–कार्य के लिए उपयुक्त समझा।

उर्मिला गुप्ता द्वारा लिखित 'हिन्दी–कथा–साहित्य के विकास में महिलाओं का योग'(1966) पुस्तक में विभिन्न लेखिकाओं द्वारा लिखित कृतियों को विवेचित किया है।

उर्मिला गुप्ता द्वारा लिखित 'स्वातन्त्र्योत्तर कथा–लेखिकाएँ' (1967) में कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुड़ी' और 'तिन पहाड़' को चित्रित किया है।

'हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण' (1968) नामक पुस्तक में बिन्दु अग्रवाल ने नारी की विभिन्न स्थितियों पर विचार किया है।

उमेश माथुर द्वारा रचित' आधुनिक–युग की हिन्दी–लेखिकाएँ' (1969) पुस्तक में विभिन्न कथा–लेखिकाओं द्वारा रचित रचनाओं को विश्लेषित किया है।

स्वर्णलता द्वारा लिखित 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि' (1973) पुस्तक नारी समस्याओं का प्रतिफलन है।

सुभद्रा द्वारा रचित 'हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रयोग' (1974) ग्रन्थ में 'मित्रो मरजानी' 'यारों के यार', 'तिन पहाड़' और 'सूरजमुखी अँधेरे के' रचनाओं को विवेचित किया है।

राजेन्द्र यादव द्वारा रचित 'औरों के बहाने' (1981) में कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला है।

'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी का समाज–सापेक्ष अध्ययन' (1982) में कीर्ति सिंह लिखित इस पुस्तक में कृष्णा सोबती के उपन्यास 'यारों के यार' को विश्लेषित किया है।

गीता द्वारा लिखित 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास' (1982) में कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुड़ी तथा 'सूरजमुखी अँधेरे के' रचनाओं को विश्लेषित किया है।

सुशीला शर्मा द्वारा लिखित 'हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प' (1982) में कृष्णा सोबती के 'तिन पहाड़' 'यारों के यार' और 'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यासों को विवेचित किया है।

सरिता कुमार द्वारा रचित 'महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप – विकास' (1983) में कृष्णा सोबती के 'डार से बिछुड़ी', मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यासों और'बादलों के घेरे' कहानी का विवेचन किया गया है।

'आज की हिन्दी कहानी' (1983) में भैरुलाल गर्ग ने कृष्णा सोबती की सिक्का बदल गया,' 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार' आदि को उद्घाटित किया है।

अमर प्रसाद गणेश प्रसाद जायसवाल द्वारा लिखित 'हिन्दी लघु उपन्यास' (1984) में 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'मित्रो मरजानी', 'डार से बिछुड़ी' आदि उपन्यासों को चित्रित किया है।

देवेच्छा द्वारा पचासोत्तरी हिन्दी कहानी तीसरे आदमी की अवधारणा महिला कहानीकारों के सन्दर्भ में (1986) कृष्णा सोबती के साहित्य का वर्णन मिलता है। जिसमें उनके उपन्यासों 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'तिन पहाड़' और 'बादलों के घेरे' कहानी संग्रह का विवेचन किया है।

निर्मला जैन द्वारा लिखित 'हिन्दी उपन्यास 1950 के बाद' (1987) पुस्तक में कृष्णा सोबती के 'ज़िन्दगीनामा' को विश्लेषित और मूल्यांकित किया है।

शीलप्रभा वर्मा द्वारा रचित 'महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ (1987) पुस्तक में कृष्णा सोबती के उपन्यासों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'यारों के यार' और 'तिन पहाड़' प्रमुख हैं।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि कृष्णा सोबती के साहित्य पर कहीं–कहीं छिटपुट रूप से अलग–अलग चित्रण हुआ है कहीं उपन्यास पर तो कहीं कहानियों पर। लेकिन कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य के सन्दर्भ में कहीं भी एकत्रित रूप से विवेचन नहीं किया गया है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध 'कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में नारी–चेतना' इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

## 0.3 **विषय का महत्व**

साहित्यकार अपने युग का चितेरा और आलोचक होता है। वह काल और परिस्थिति विशेष तथा समसामयिक परिवेश सन्दर्भों से सम्पृक्त शाश्वत जीवनमूल्यों की ओर अग्रसर होता है और उसमें अपने चारों ओर बिखरी परिस्थितियों व प्रेरणाओं को गहनता से जाँचने और परखने की अद्‌भुत क्षमता होती है यह क्षमता ही किसी रचनाकार को सही अर्थों में आधुनिक बनाती है। साहित्य रचना में साहित्यकार का व्यक्तित्व एवं उसे प्रभावित करने वाला परिवेश दोनों सम्मिलित रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। कृष्णा सोबती का कथा–साहित्य विस्तृत है। इनके कथा–साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इनके कथा–साहित्य में जीवन के प्रति गहरी अन्तर्दृष्टि है और उनकी अत्यन्त सहज प्रस्तुति। इनका

कथा–साहित्य ज़िन्दगी के अहम् सवालों से टकराता है और उनका समाधान भी करता है, किन्तु यह समाधान कहीं भी आदर्श का खोखलापन प्रदर्शित नहीं करता। इनके कथा–साहित्य में जीवन के प्रति गहन अन्तर्दृष्टि का कारण यही है कि इन्होंने समाज के रहन–सहन, आचार–व्यवहार और अन्य घटनाक्रमों को अपनी दृष्टि से देखा है। इन्होंने समाज के प्रत्येक दृश्य का परिदृश्य पाठकों के सामने रखा है और बखूबी से हल करने का प्रयत्न किया है। कुल मिलाकर साहित्यकार ने नारी स्वतन्त्रता, नारी अस्मिता, नारी के विविध रूप, नारी जीवन से जुड़ी विसंगतियों कुरीतियों और विद्रूपताओं को उभारने का और उसके प्रति जागरूक व सचेत रहने का प्रयत्न किया है। विषय के महत्व के सन्दर्भ में इतना कहना आवश्यक है कि अन्य साहित्यक विधाओं की अपेक्षा उपन्यास व कहानी में जीवन का बृहत्तर और व्यापक चित्रण प्रस्तुत होता है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध द्वारा 'कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में नारी–चेतना' का शोध परक दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है। इस दृष्टि से शोध–कार्य का महत्व एवं उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

## 0.4 विषय का परिसीमन

कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य का क्षेत्र विस्तृत है। इसके विस्तार को देखते हुए तथा प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की सीमा को ध्यान में रखते हुए मैंने कथा–साहित्य में अभिव्यक्त नारी–चेतना को ही अपने शोध का विषय लिया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में चेतना, नारी–चेतना आदि का विश्लेषण और विवेचन किया है। यह विषय अपने आप में बहुत व्यापक है तथा इस पर स्वतन्त्र रूप से कार्य करना अपेक्षित है, ताकि कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में व्यक्त नारी–चेतना का पूरा रूप स्पष्ट हो सके। यह विषय शोध की दृष्टि से बिलकुल अछूता–सा लगता है। मेरे अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में नारी–चेतना को स्पष्ट करना तथा उसके विविध रूपों पर प्रकाश डालना है।

## 0.5 विषयानुक्रम

जहाँ तक विषय के अनुक्रम का सम्बन्ध है, शोध–प्रबन्ध में विषयानुक्रम इस प्रकार है – प्राक्कथन, विषय–विवेचन उपसंहार और परिशिष्ट। प्राक्कथन में विषय का स्पष्टीकरण, सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण, विषय का महत्व एवं विषय परिसीमन की चर्चा की गयी है सम्बद्ध साहित्य का सर्वेक्षण कर यह सिद्ध किया गया है कि कहां और किन विषयों में इस विषय से सम्बन्धित कार्य हुआ है किस रूप में हुआ है और किस क्षेत्र में कार्य की उपेक्षा है। फिर शोध–प्रबन्ध का महत्व प्रतिपादित करते हुए इसकी सीमा निर्धारित की है। इस शोध–प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है।

शोध–प्रबन्ध का प्रथम अध्याय कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बद्ध है। जिसमें कृष्णा सोबती के जन्म, शिक्षा, पारिवारिक जीवन, आन्तरिक, बाहरी व्यक्तित्व और कृतित्व में कहानी संग्रह, उपन्यासों, संस्मरण साहित्य तथा विविधा का परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में चेतना का सामान्य परिचय, शाब्दिक अर्थ, परिकल्पना एवं स्वरूप, परिभाषा और सोबती जी के साहित्य में नारी–चेतना को स्पष्ट किया है।

तृतीय अध्याय में कृष्णा सोबती पूर्व महिला कथाकारों द्वारा उद्घाटित नारी–चेतना का विवेचन किया है और साथ में महिला–कथाकारों के कथा–साहित्य में युग–स्थिति को भी स्पष्ट किया है।

चतुर्थ अध्याय में कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी–चेतना को विश्लेषित एवं विवेचित किया है। इस विश्लेषित विवेचन में मूल्य विघटन और स्थापित नैतिकता की निरर्थकता, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध, स्वावलम्बी, स्वतन्त्र, महत्वाकांक्षी, परम्परागत मूल्य–भ्रमों से मुक्त, वर्तमान जीवन की त्रासदी में स्त्री की स्थिति को उजागर किया है। साथ ही जिजीविषा के रहस्यों की खोज में रत नारी का चित्रण स्पष्ट किया गया है।

पंचम अध्याय में कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी–चेतना का विश्लेषण एवं विवेचन निहित है। इन उपन्यासों में कृष्णा जी द्वारा चित्रित नारी रूप के हर पहलू का विस्तार से विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है।

षष्टम अध्याय में कृष्णा सोबती की नारी–चेतना को यथार्थता और समसामयिकता की दृष्टि से विवेचित किया है। साथ में कृष्णा सोबती युगीन समाज और उनके कथा–साहित्य में समाज, व्यक्तिमूलक जीवनबोध, नारी–मुक्ति आन्दोलन, पुरुष प्रधान समाज में नारी पात्रों की त्रासदी आदि को लेकर विचार किया है।

अन्त में शोध–प्रबन्ध का उपसंहार दिया गया है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट दिया गया है जिसे तीन भागों में बाँटा है। परिशिष्ट–1 में कृष्णा सोबती की भाषा-शैली पर विचार किया गया है। परिशिष्ट– II में कृष्णा सोबती से साक्षात्कार का विवरण दिया गया है। परिशिष्ट – III में ग्रन्थ–सूची अंकित की गई हैं जिसके अन्तर्गत मूल ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ, कोश के अतिरिक्त पत्र–पत्रिकाओं की सूची दी गई है।

## 0.6 आभार

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की सम्पन्नता का श्रेय अपनी शोध निर्देशिका डॉ0 उषा चौहान को देती हूँ जिनकी सहृदयता और सहयोग से यह शोध–कार्य सम्पन्न हुआ। उनकी हृदय से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त हिन्दी–विभाग के अन्य सभी प्राध्यापकों का भी आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के कर्मचारियों और राज्य पुस्तकालय शिमला के कर्मचारियों का धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने समय–समय पर मुझे पुस्तकें उपलब्ध कराने में मेरी सहायता की है।

मैं अपने मम्मी–पापा श्री चत्तर सिंह भंगालिया एवं श्रीमती विशम्भरा भंगालिया की आभारी हूँ जिन्होंने मेरे चार माह के बेटे को अपने पास रखकर मुझे शोध–कार्य पूर्ण करने के लिए तन, मन, धन से सहयोग दिया। मैं अपनी चाचियों प्रोमिला भंगालिया, सरिता भंगालिया एवं समस्त भंगालिया परिवार की आभारी हूँ जिन्होंने मेरे पारिवारिक दायित्व को अपने ऊपर लेकर शोध–कार्य पूर्ण करने के लिए प्रेरित किया। मेरे पति यशपाल चन्देल इस शोध यात्रा में सदैव पथ के पाथेय के रूप में सहायक रहे हैं। उनके आग्रह के कारण ही यह शोध–प्रबन्ध पूरा हो सका है। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर मैं औपचारिकता को निभाना नहीं चाहती। मैं

अपनी सास की भी आभारी हूँ जिन्होंने विषम परिस्थितियों के होते हुए भी शोध–कार्य सम्पन्न करने के लिए प्रेरित किया। और न आभार, न धन्यवाद फिर भी बहुत कुछ अपने आत्मांशी अभिनन्दन को, जिसको मेरे शोध–कार्य ने मातृत्व से वंचित रखा।

शोध–प्रबन्ध के टंकन कार्य में जो सजगता और कुशलता कृष्णा चौधरी ने दिखाई है उसके लिए उनकी आभारी हूँ। शोध–प्रबन्ध की टंकन त्रुटियों का यथा सम्भव निराकरण करने का प्रयास किया गया है, प्रयासों के पश्चात् भी टंकन की त्रुटियाँ रह गई हों तो मैं इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

निशा देवी

दिनांक 23.7.99 निशा देवी

# प्रथम अध्याय : कृष्णा सोबती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

## 1.1 जीवन परिचय

मानव व्यक्तित्व एक इकाई है, उसका विभाजन सम्भव नहीं है। व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं – अन्तः पक्ष और बाह्य पक्ष। अर्थात किसी भी व्यक्ति की आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियाँ मिलकर उसके व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। अन्तः एवं बाह्य पक्ष को पृथक–पृथक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अतः अन्तः एवं बाह्य गुणों का संयोग व्यक्ति विशेष का व्यक्तित्व कहलाता है। व्यक्तित्व का निर्माण व्यक्ति के जन्मजात गुणों उसकी पारिवारिक परिस्थितियों, शैक्षणिक उपलब्धियों और उसके सम्पर्कों तथा राष्ट्र और युग के तत्कालीन वातावरण के समन्वित प्रभाव के आधार पर होता है। "व्यक्ति की बाह्य रचना, व्यवहार की विशेषताओं, वृत्तियों, रुचियों, धारणाओं, शक्तियों, योग्यताओं और कुशलताओं का सर्वाधिक लाक्षणिक समायोजन ही व्यक्तित्व की परिभाषा है।"[1]

आमतौर पर व्यक्तित्व एवं कृतित्व को एक ही समझ लिया जाता है। परन्तु चरित्र तो व्यक्तित्व का ही एक परिणाम होता है। जैसा आचरण करते हैं वह सब हमारे व्यक्तित्व के कारण ही उत्पन्न होता है अर्थात चरित्र तो व्यक्तित्व का एक तत्त्व मात्र होता है। यह व्यक्तित्व का उद्‌बोधक है जबकि व्यक्तित्व में व्यक्ति को पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। दूसरों के सम्पर्क में आकर ही व्यक्ति अपने आप को समझता है और उसके व्यवहार से दूसरे व्यक्ति उसके व्यक्तित्व को समझते हैं। व्यक्तित्व के दोनों रूपों में से एक रूप बाहरी जगत को और दूसरा रूप मनोजगत को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। पूर्ण सामाजिक प्रभाव के लिए व्यक्तित्व के दोनों रूप समान महत्व रखते हैं। कभी–कभी व्यक्ति के बाह्य रूप को देखकर उसकी बाहरी विशेषताओं का पता लग जाता है और लेखक के कृतित्व से उसके व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। कृष्णा सोबती की जिन्दगी का मकसद केवल कर्म करना है, चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न किया जाए। कृष्णा सोबती एक वक्त, एक खतरा,

---

[1] पीयूष गुलेरी – चन्द्रधर शर्मा गुलेरी व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0 – 125

एक तुर्शी, एक संवेदना, एक जिंदगी। हिन्दी साहित्य की अत्यन्त विवादास्पद लेकिन अद्वितीय कथा–लेखिका। कृष्णा सोबती के लिए महज लिखना नहीं है, एक ज़िंदगी और तमाम हरकतों को पोर–पोर से रचना में उतारना है। आज की अनेक लेखिकाओं में इनका नाम प्रमुख है। हिन्दी साहित्य जगत में इन्हें बहुचर्चित और विवादास्पद स्थान प्राप्त है।

आधुनिक भारतीय समाज में स्त्री–चेतना की इस प्रखरतम प्रवक्ता का संघर्ष निस्संदेह दोहरा रहा है। उन्होंने जहाँ एक कलाकार का अनिवार्य अकेलापन झेला है, वहीं पुरुष प्रधान समाज में स्त्री होने के दुर्निवार सत्य को भी झेला है और इस दोहरे संघर्ष में एक रचनाकार का व्यक्तित्व ही उसकी असली पहचान है।

### 1.1.1 **जन्म**

कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 को गुजरात (पंजाब अब पाकिस्तान) में हुआ। इनका जन्म ज़मींदार–अफसर परिवार में हुआ। राजेन्द्र अवस्थी ने जब कृष्णा सोबती से पूछा कि आपका जन्म कब और कहाँ हुआ ? तो उनका उत्तर यह था – "सदियों पुराने अन्दाज में यह न पूछिए कि कब और कहाँ हुआ – पूछिए यह कि क्यों हुआ? हम खुद भी अपने से यही सवाल कई बार पूछ चुके हैं कि आखिर हम पैदा हुए तो क्यों ? अपने हाथों से न कभी कुछ बनाया, न संवारा, बस सुबह शाम नाश्ते के 'वक्त' घोल–घोलकर पीते रहे।"[1] कृष्णा जी के विचारों से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक इन्सान का जीवन किसी न किसी उद्देश्य से पूर्ण होना चाहिए। मनुष्य का जीवन लक्ष्य रहित हो तो उसका व्यक्तित्व अपूर्ण लगता है।

### 1.1.2 **शिक्षा**

कृष्णा सोबती ने विभिन्न स्थानों से शिक्षा ग्रहण की है। दिल्ली, शिमला और लाहौर में उनकी शिक्षा–दीक्षा हुई। भारत–विभाजन के बाद सिरोही (आबू) के महाराज तेजसिंह के लिए गवर्नेस के रूप में 1948–50 तक दो वर्ष काटे। 1950–51 तक आर्मी

---

[1] राजेन्द्र अवस्थी – प्रश्नों के घेरे, पृ0– 223

आफिसर्स चिल्ड्रेन्स स्कूल दिल्ली की प्राचार्या रही। दिल्ली में कई जगह अध्यापन और दिल्ली प्रशासन प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के संपादक के रूप में 1980 तक कार्य किया। वे साहित्यिक वातावरण और आदर्शवादी माता–पिता के संरक्षण में पली। परिवार का वातावरण साहित्यिक होने के कारण पढ़ने–लिखने का खुला माहौल था। केवल किताबी शिक्षा ही नहीं दी जाती थी बल्कि स्कूल की पढ़ाई के अलावा साहित्य सम्बन्धित शिक्षा भी बराबर दी जाती थी। उनके इस प्रतिभाशाली साहित्यिक व्यक्तित्व के पीछे उनके पिता का हाथ अधिक था। वह उन्हें रात के समय उर्दू और अंग्रेजी की पुस्तकों से अच्छी रचनाएँ पढ़कर सुनाया करते थे।

### 1.1.3 **पारिवारिक जीवन**

सोबती जी की दो बहनें और एक भाई है। कृष्णा सोबती अविवाहित हैं। विवाह न करने के कौन से कारण रहे होंगे । इसके विषय में कभी नहीं कहा, न कहीं लिखा है। इस बात पर आश्चर्य होता है कि इतनी सुन्दर व पढ़ी–लिखी होने के बाद भी उन्होंने अकेले ज़िन्दगी व्यतीत करने का फैसला क्यों कर किया होगा। राजेन्द्र यादव ने इस बारे में लिखा है कि "वे कौन से तहखाने, द्वीप, दुर्ग या बियाबान हैं जहाँ कैद हुई राजकुमारियों को किसी राजकुमार ने नहीं मुक्त किया ? इस किले की खिड़की पर बैठकर भी तो किसी ने अपने गीले बाल सुखाये होंगे ? या छत पर खड़े होकर सूरज को दर्पण में बांध किसी राहगीर को चकाचौंध करके भटकाया होगा..... ।" [1] सोबती जी के विवाह न करने के कारण अज्ञात हैं क्योंकि वे कभी भी इस प्रकार की बातचीत पसन्द नहीं करती हैं। न ही इस विषय में कभी कुछ पत्रिका में छपा। उन्होंने विवाह सम्बन्धी प्रश्न को आज तक स्पष्ट करना जरूरी नहीं समझा। परन्तु फिर भी उनके हृदय में कहीं न कहीं, कभी न कभी विवाह सम्बन्धी विचार अवश्य पैदा हुआ होगा। उन्होंने इसके बारे में अवश्य चिन्तन किया होगा। तभी तो उन्होंने इस बात की कल्पना की है कि यदि वह गृहस्थी बसाती तो उनका घर कैसा होता। इस विषय में स्वयं कहती हैं कि "अगर हमें कभी भी अपनी गृहस्थी जुटानी होती तो घर में सबसे पहले लगता तन्दूर। मिट्टी के बर्तनों

---

[1] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 36

की लगती कतारें। थालियों में गूँथती मैं आटा। चंगीरों में रखती घी–सनी रोटियाँ। और सोंधी गन्धवाले सालन पकाती मैं हँडिया में। मेरे घर में दूध बिलोने की चाटियाँ होतीं। पानी भरने को घड़े। बैठने को होती राँगली पीढ़ियाँ और पसरने को होती सूत की मंजियाँ।''[1] सोबती जी के विचारों से स्पष्ट होता है कि वे विवाह करती तो उनके घर का वातावरण पंजाब के किसी गाँव का होता। वे कहती हैं कि – ''गेहूँ की तन्दूरी रोटी पर मक्खन और धीमी–धीमी आँच पर पकी चॉपों की इलाही गन्ध ! इसके आगे दुनिया की सब नियामतें फीकी हैं।''[2] अपनी गृहस्थी में उन सब चीजों की आवश्यकता समझती हैं जो पंजाब के घराने में आवश्यक होती है। सोबती जी ने अपना देहातीपन अपनी आत्मा में बसा रखा है और शहरीपन अपने तौर तरीके और लिबास में।

कृष्णा सोबती माँ–बाप के मिले–जुले गुण अपने में अनुभव करती हैं। वे कहती हैं कि –''खर्च करने का ढंग मेरा न बहुत छोटा है न बहुत बड़ा। माँ से यह सीखा कि जो खर्च करो, यह न लगे कि लुटाया जा रहा है। पिताजी से यह कि ऐसे खर्च करो कि अपने को भी खालिस जरूरत न लगे।''[3] सिर्फ किताबों – कापियों में ही खर्च करते थे। अन्य चीजों पर नहीं।

### 1.1.4 **आन्तरिक व्यक्तित्व**

व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत सोबती जी के स्वभाव, गुणों और चारित्रिक विशेषताओं का अनुशीलन किया गया है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझना कठिन है ही, परन्तु उसके अंतस् को समझना तो और भी कठिन है। रचनाकार : का आन्तरिक व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में देखा जा सकता है। रचनाओं के पात्रों के चरित्रों के द्वारा ही लेखक के आन्तरिक व्यक्तित्व का काफी हिस्सा देखा–परखा और समझा जा सकता है। कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य को पढ़कर कहा जा सकता है कि उनके व्यक्तित्व में जिज्ञासा,

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0–255
[2] वही – वही पृ0–256
[3] वही – वही पृ0–256

साहस, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, संवेदना, आक्रोश समाज के झूठे आदर्शो पर व्यंग्य और काम आदि गुण बड़ी मात्रा में विद्यमान हैं। उनके अद्‌भुत साहस के बारे में घनश्याम मधुप का कथन है – "हिन्दी कथा–साहित्य में जिन कुछ लेखिकाओं ने अपने साहस का परिचय दिया है उनमें एक नाम कृष्णा सोबती का है।"[1] कृष्णा सोबती के अद्‌भुत साहस के कारण ही उनके व्यक्तित्व के बारे में विवाद उत्पन्न हुए हैं।

सोबती जी नारी हैं इसलिए इनका आन्तरिक व्यक्तित्व नारी गुणों से भरपूर है जो इनके साहित्य में झलकता हुआ प्रतीत होता है। कृति और कृतिकार एक सिक्के के दो पहलू हैं। इनकी रचनाओं में चित्रित नारीत्व इसी का प्रमाण है। वास्तव में जैसा नारीत्व प्रत्यक्षतः इनका दिखाई देता है वैसा ही इनके कथा–साहित्य में चित्रित हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी रुचियाँ व आदतें होती हैं। वही आदतें उसके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा होती हैं। लेखक के निजी दायित्व के इस तीखे अहसास के साथ नैतिक – सामाजिक बंधनों – सीमाओं का अन्त तक अन्वेषण करने का साहस कृष्णा सोबती में है, इसलिए तलस्पर्शी स्त्री – चेतनावादियों और लकीर के फकीरों को वे समान रूप से असमंजस में डाल देती हैं। सोबती जी एक ऐसी कथाकार हैं जिनमें एक पौरुष और व्यस्क साहस है। यह साहस सिर्फ पारम्परिक शिल्प और मूल्यों को चुनौती देने वाला साहस नहीं है, वरन यह नई सर्जना का कौशलपूर्ण साहस भी है। यही वजह है कि वर्जित प्रसंगों के वर्णन के जरिए भी कृष्णा जी उन तमाम मुखौटों को उतारकर आदमी का, समाज का असली चेहरा दिखाने में कारगर सिद्ध हुई हैं। मनुष्य की आदिम कुंठा और वर्जनाएँ उनके सामने बच्चे सी सहजता के साथ अपना रहस्य खोल देती हैं। अपनी सारी सख्ती और तीव्र मुद्रा के बावजूद भीतर कहीं न कहीं उनका संवेदनशील मन सजग रहता है। उनकी कृतियों का असमतल संसार बेलौस अभिव्यक्ति की वजह से अन्ततः गहरी मार्मिक छटपटाहट का खुलापन ही उद्‌घाटित करता है। कृष्णा सोबती की विभिन्न रुचियाँ ही उनके व्यक्तित्व की विभिन्न प्रशंसनीय खूबियाँ हैं।

---

[1] घनश्याम मधुप – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ0 – 35

### 1.1.5 **बाहरी व्यक्तित्व**

व्यक्ति का बाहरी पक्ष व्यक्ति के शारीरिक गठन और वेशभूषा से सम्बन्ध रखता है। सोबती जी के व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करते हैं, तो उनका साहित्य उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। कृष्णा सोबती का साहित्य उन साहित्यकारों से भिन्न है जो आदर्श का जामा पहने हुए रहते हैं। वे आधुनिक विचारों की समर्थक हैं। इनकी आधुनिकता विचारों में ही नहीं, रहन–सहन में भी देखी जा सकती है। उनका बाह्य व्यक्तित्व जितना प्रभावशाली है, उतना ही विलक्षण और विचित्र भी है। उनके आन्तरिक व्यक्तित्व की तरह बाहरी व्यक्तित्व भी प्रभावशाली है। गौरवर्ण चुस्त और पुष्ट शरीर वाली कृष्णा सोबती किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। वस्तुतः सोबती जी एक आकर्षित व्यक्तित्व वाली हैं। आकर्षक चेहरे पर बड़ी–बड़ी आँखे, सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु के भीतर तक पहुँच कर उसके अंतस् को जानने की क्षमता रखती हैं। सोबती जी का बाह्य व्यक्तित्व प्रभावक तत्वों के योग से बना है। पहनने, ओढ़ने के विषय में उनकी अलग ही रूची है। वे अपनी शक्ल–सूरत के अनुरूप ही कपड़े पहनना पसन्द करती हैं और अधिक कपड़ों का सृजन करना भी वह पसंद नहीं करती। उनका पहनावा आम पहनावे से अलग होता है। अपनी वेशभूषा का उद्देश्य वे स्वयं बताती हैं – "आमतौर पर मैं ऐसे कपड़े पहनना पसन्द नहीं करती जो मेरी शक्ल–सूरत से कहीं ज्यादा कीमती लगें। ....मैं बार–बार उसे ही पहनती हूँ जो मुझमें खप जाये, जो हल्का हो और ढीला हो। अल्मारी में ज्यादा कपड़े मेरा माथा गर्म कर देते हैं।"[1] राजेन्द्र यादव ने इनके बाह्य व्यक्तित्व का चित्रण इन शब्दों में किया है – "कलाइयों तक ढंके दो हाथ और काले चश्में से ढंका चेहरा, बाकी तो सब रेशमी.... लिबास, स्टाइल, अन्दाज, अदा.....और उसके पीछे एक औरत, आत्म–विश्वास और अनुभव से लैस। दूसरों के हर पर्दे को भेदकर देख लेने वाली निगाह और अपने आपको 'सॉरी, थैक्यू' से लेकर साटनी–थानों के पर्दों में अधिक–से–अधिक छिपाये रखने को चौकस। कहीं कोई गुमान ही नहीं होता कि इस सबके भीतर सुर्ख चूड़े पहने

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0 – 256

एक खूबसूरत कलाई तन्मय गुनगुनाहट में डूबी तन्दूर लगा रही है..... ।''[1] कृष्णा जी जहाँ अपनी वेशभूषा के प्रति चौकस रहती हैं वहाँ व्यक्तित्व, परव्यवहार एवं सामाजिक व्यवस्था के प्रति भी सावधान हैं। शरारा, कुर्ता पहने हुए चुन्नी से सिर को ढके हुए गोल चेहरे पर नुकीली नाक और उस पर चढ़ाया काला चश्मा उनके व्यक्तित्व का परिचय देता है। स्वयं ही अपनी पोशाक पर हँसती हुई कहती हैं – ''देखिए, इस ड्रैस में हमें बड़े–बड़े फायदे हैं ! यानी कि लोग गाने–वाने का शौक रखनेवाली से लेकर समझते हैं, यानी हम कहीं के प्रिंसेस–विंसेस हैं – हम भी सोचते हैं, समझों यार, हमें क्या फर्क पड़ता है... यू नो, बनाकर फकीरों का हम भेस गालिब ..... ।''[2] सोबती जी की वेशभूषा एक ऐसे व्यक्ति की वेशभूषा है जो नए अन्दाज के साथ हर रंग में रंगी हुई प्रतीत होती है। हजारों की भीड़ में भी अलग सी दिखाई देती है। इनके व्यक्तित्व में विशेष बात यह है कि वे जानती हैं कि किस आदमी से कैसे बातचीत करनी है और किस व्यक्ति से कितनी सीमा तक खुलापन होना चाहिए। उनके विषय में राजेन्द्र यादव का कथन है कि – ''जब तक आप कृष्णा जी की भौहों, या चश्में के पीछे फैलती–सिमटती आँखों, चमकती भूरी पुतलियों, खूबसूरत होंठों और उनकी बेबाक हँसी को देखते रहते हैं – समझ लीजिए, वे आपको बाहरी सरहदों पर ही रोके या वहीं उलझाये हुए हैं।..... सख्त सरहदों और बीहड़ पगडंडियों वाली यह महिला एक चट्टानी पहाड़ की गर्वोन्नत हिमानी शिखर जैसी दिखाई देती है।''[3] सोबती जी के साथ चाहे किसी की बरसों की पहचान हो परन्तु वे दूसरों को अपने व्यक्तित्व की बाहरी सरहदों पर ही भटकाती रहती हैं। बरसों उनके साथ मिलते रहने से भी किसी से ज्यादा खुल नहीं पाती हैं। ज्यादातर लोग औपचारिक ही रह जाते हैं।

कृष्णा जी का व्यक्तित्व बहुत ही सशक्त है, इसलिए उनकी तुलना उद्दाम प्रवाह में अडिग खड़े एक शैलखण्ड से की है। जो समय के अपघातों को सहता हुआ भी पौरुषवान होकर गर्वोन्नत खड़ा है। उनका व्यक्तित्व किसी चट्टान की भान्ति अटल व उच्च

---

[1] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 36

[2] वही – वही पृ0 – 35

[3] वही – वही पृ0 – 34

प्रतीत होता है। कृष्णा जी अपने व्यवहार कुशलता से ही पूर्ण नहीं हैं बल्कि वे व्यवहार में शिष्टाचार को भी समान महत्व देती हैं। वे चाहती हैं कि सभी एक दूसरे से सामाजिक जीवन में शिष्टाचार का पालन करें। इसी कारण वे कभी–कभी अपने साथियों से भी नाराज हो जाती हैं क्योंकि वे लोग काफी समय तक उनसे मिल नहीं पाते और न ही शिष्टाचार के नाते फोन पर उनसे सम्पर्क बना पाते हैं। इसी कारण वे बात–बात पर अपनी नाराज़गी जाहिर कर देती हैं – ''आप लोग सोशल आदमी हैं, व्यस्त हैं। लेकिन कभी–कभी हम सोचते हैं..... यू नो वन ऐक्सपैक्ट्स..... मतलब शिष्टाचार के नाते ही आदमी बदले में सम्पर्क करता है। 'शिष्टाचार' शब्द का उनके व्यक्तित्व में कुछ ज्यादा ही बड़ा स्थान है।''[1] वे स्वयं भी शिष्टाचार का पालन करती हैं और दूसरों से भी यही चाहती हैं। 'शिष्टाचार' शब्द उनके व्यक्तित्व में कुछ अधिक ही झलकता है। वे ज़िन्दगी में 'शिष्टाचार' को नितान्त आवश्यक मानती हैं। इनकी मित्रता भी एक सीमा तक है, क्योंकि मित्रों की भीड़ प्रायः शिष्टाचार की सीमाओं को तोड़ने का कारण बन जाती है। अतः इनकी मित्रता भी अपने लेखन की तरह सीमाबद्ध रहती है। राजेन्द्र यादव के अनुसार – ''उनसे बहुतों की दोस्ती 'सॉरी, थैक्यू' से आगे नहीं बढ़ पाती। अंग्रेजी तहजीब के ये दो शब्द उसे पूरी तरह परिभाषित ही नहीं करते, बीच में हमेशा दीवार की तरह खड़े रहते हैं।''[2] उनकी नाराजगी की भी एक अदा है। वे पल मे नाराज हो जाती हैं और फिर बच्चों की तरह मनाते ही पल भर में फिर से खिल–खिला उठती हैं।

कृष्णा सोबती नारी होने के नाते वाक् कला में माहिर हैं क्योंकि वाक् कला औरतों की कला है। वे अच्छी वक्ता होने के साथ–साथ अच्छी श्रोता भी हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी बोलचाल से झलकता है और जो अच्छी लेखिका हो। यदि वे किसी आदमी को गलत महसूस करती हैं, तो अपनी बातचीत के द्वारा इतनी सावधानी से उसे अपराधी महसूस करा देती कि वह अपनी गलती भी समझ जाये और उसे बुरा भी न लगे। बातचीत में सोबती जी इतनी सिद्धहस्त हैं कि उनसे उलझना आसान नहीं है। शब्दों के माध्यम से उन्हें

---

[1] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 33

[2] वही – वही, पृ0 – 36

हरा पाना आम आदमी के बस की बात नहीं है। थोड़ी सी ही देर में वे अपने सामने वाले के हृदय में अजीब सी कसक छोड़ देती हैं। कृष्णा जी का व्यक्तित्व उनके 'मूड' पर 'डिपेन्ड' करता है। कभी–कभी तो वे किसी से घण्टों बातचीत से उबती नहीं हैं और कभी महज 'हैलो' पर ही अटक जाती हैं। राजेन्द्र यादव ने सोबती के व्यक्तित्व की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – "आपको और उन्हें दोनों को फुरसत हो, वे सही मूड में हों, उस समय कृष्णाजी व्यक्ति नहीं, सचमुच एक चीज, या फिनोमिनन होती हैं।उनकी ज़बान पर शब्द किस तरह तस्वीर बन जाते हैं, बिना जरा भी नाटकीय हुए कैसे वे दृश्य ही नहीं खड़ा कर देती, उससे अलग हटकर कैसे खुद भी उसमें मजा लेने लगती हैं, यह सिर्फ़ अनुभव करने से ही ताल्लुक रखता है। उस समय हीन–भावना के साथ–साथ यही महसूस होता रहता है कि बोलना केवल औरतों का क्षेत्र है, वे शायद शब्दों के साथ अधिक एकाकार हो पाती हैं। और अगर माहौल अनुकूल न हो तो कृष्णाजी लकड़ी के कुन्दे की तरह बोझिल और चुप ..... मैंने उन्हें मंच पर विरोधियों को ऐसा महीन काटते देखा है कि मजा आ जाये।"[1] किन्तु उनमें अहंकार नहीं है वह एक शिष्ट श्रोता भी हैं, वे किसी बात को ध्यान से सुनती हैं। किसी बात को पहले से जानते हुए भी बड़ी तन्मयता के साथ सुनती हैं – "बेहद झुँझलाहट होती है उस समय जब किसी भी बात को अच्छी तरह समझते–बूझते हुए भी वे इस तरह के साश्चर्य हुँकारे देती हैं, जैसे पहली बार सुन रही हों।"[2] सोबती जी सम्भाषण कला और तर्क–वितर्क में इतनी अधिक माहिर हैं कि अपने सामने किसी को भी ठहरने नहीं देती हैं। वे छोटी सी मुलाकात में अपनी छाप छोड़ जाती हैं। परन्तु कृष्णाजी के व्यक्तित्व में एक बात यह पाई जाती है कि वह सार्वजनिक रूप में बातचीत करने में कतराती हैं। जबकि आपसी बातचीत में उतनी ही अधिक चुस्त रहती हैं। वे किसी की बातचीत सुनते चाहे कितनी बोर क्यों न हो रही हो, परन्तु ऐसा लगता है कि बहुत दिलचस्पी से सुन रही हैं। उनकी हर चीज में एक अदा है एक खास अन्दाज़ है। वे स्वयं को

---

[1] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 33–34

[2] वही – वही पृ0 –34

अधिक छिपा कर रखना चाहती हैं और दूसरों को तीखी निगाहों से भेदती हैं कि उसके सारे पर्दे खुल जाएँ। कृष्णाजी एक ऐसी औरत हैं जो आत्मविश्वास और अनुभव से परिपूर्ण हैं।

कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व बहुत रौबीला है। शायद यही कारण है कि उन्हें ऊँचे, तगड़े और रौबीले व्यक्तित्व ही पसन्द हैं। उनमें पुरुषों के प्रति आस्था मिश्रित सम्मोहन का भाव है, इसलिए वह अपनी रचनाओं में सरदारों या मिलिटरी अफसरों के व्यक्तित्व का वर्णन करती हैं। तो वह केवल वर्णन ही नहीं होता अपितु उसमें अभिवादन जैसा भाव भी आ जुड़ता है। राजेन्द्र यादव ने स्पष्ट किया है कि – "पुरुष के प्रति किसी भी प्रकार के असम्मान–जनक संकेत भी उनके यहाँ नहीं मिलते, न व्यक्ति की तरह, न हजारों वर्षों की साज़िश के प्रतिनिधि की तरह। उनके पात्रों में न कहीं विद्रोही होने का दंभ दिखाई देता है, न किसी को छोटा करने का अहंकार।"[1] उनकी रचनाओं से उनके व्यक्तित्व का खुलापन झलकता है। राजेन्द्र यादव के अनुसार – "खुद उनका अपना व्यक्तित्व भी कम प्रभावशाली नहीं है, एक अजीब कान्फिडैन्स और सब कुछ समझ लेने का भाव उनकी हर मुद्रा से झलकता है।"[2] सोबती जी के ऐसे रौबीले और आत्मविश्वास पूर्ण व्यक्तित्व को देखकर ऐसा लगता है कि वे जरूर किसी उच्च राजघराने से जुड़ी हैं। उनके बहुत करीबी साथी भी यही महसूस करते हैं जैसा कि राजेन्द्र यादव ने कहा है – "हालाँकि मुझे उनकी पिछली ज़िन्दगी जानने की कभी कोई उत्सुकता नहीं रही, मगर बातचीत में लगा कि शायद कभी वे किसी राजस्थानी राजघराने से भी जुड़ी रही हैं। न भी रही हो तो उनकी चाल–ढाल, बोल–चाल सबमें एक राजसी स्पर्श तो है ही। शायद इसीलिए उनके साथ हम जैसे फक्कड़ लोग बहुत खुला हुआ नहीं महसूस करते।"[3] वास्तव में कृष्णा जी का व्यक्तित्व राजसी प्रतीत होता है। अधिकांश व्यक्ति इनके व्यक्तित्व के सामने स्वयं को बौना अनुभव करते हैं और अहम्वादी समझते हैं। स्वयं सोबती जी के अनुसार –"दूसरों की निगाह से अपने को देखती हूँ तो एक मगरूर

---

[1] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 45

[2] वही – वही पृ0 – 35

[3] वही – वही पृ0 – 36

घमण्डी औरत, चमक–दमक वाला लिबास और अपने को दूसरों से अलग समझने वाला अन्दाज़। अपनी नजर से अपने को जाँचती हूँ तो एक सीधी–सादी खुद्दार शखसियत। वक्त और खुदा दोनों ही जिस पर ज्यादा मेहरबान नहीं फिर भी अपने जिगरे के जोर से जिन्दादिल।"[1] परन्तु उन्होंने अपने विषय में कहीं भी कुछ खास नहीं बताया है।

कृष्णा सोबती जब किसी महफिल, पार्टी या सम्मेलन में जाती हैं तो अपने दिल व दिमाग पूरी तरह अपने साथ रखती है। जब वह किसी भी वर्ग के लोगों का वर्णन करती हैं तो वह अद्वितीय होता है। अपने घर की साज–सज्जा पर भी बहुत ध्यान देती है। हर काम सलीके से करती हैं। वे ज्यादातर दिल्ली और शिमला में रही हैं, फिर भी पंजाब से किसी न किसी रूप में जुड़ी रही हैं।

सोबती जी के व्यक्तित्व को समझना कठिन है, लेकिन अभी तक इनके बारे में कोई आलोचनात्मक पुस्तक प्राप्त नहीं होती है। इसी कारण इनके व्यक्तित्व के बारे में अधिक कहना उचित प्रतीत नहीं होता है।

## 1.2 **कृतित्व**

कृष्णा सोबती हिन्दी साहित्य की एक विख्यात लेखिका हैं। उनका व्यक्तित्व असाधारण होने के कारण कृतित्व भी बहुरंगी है। वैसे तो उन्होंने अपना लेखन कविता से आरम्भ किया परन्तु बाद में उन्होंने कथा लेखन आरम्भ किया। उन्होंने जिस किसी भी विषय पर लिखा खुलेपन और अनौपचारिकता से लिखा। उन्होंने विशेष रूप से नारी को ही चित्रित किया है। उन्होंने लोकजीवन और पंजाब संस्कृति को भी चित्रित किया है। कृष्णा जी ने केवल कहानियाँ और उपन्यास ही नहीं लिखे, बल्कि संस्मरण, निबन्ध, साक्षात्कार आदि साहित्यिक विधाओं में बहुचर्चित सृजनात्मक कार्य भी किया है। कृष्णा सोबती कॉलेज के दिनों में ही छुट–पुट कविताएँ लिखा करती थी। लेकिन उनके मन में यह धारणा थी कि वह गद्य ही अच्छा लिख सकती है। उन्होंने नागरी प्रचारिणी, शिमला द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में कविता

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0 – 253

लेखन के लिए पदक भी जीता। इनकी गद्य साहित्य में प्रथम लघु कहानी 'उसकी रोटी' है जो कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले पत्र 'विचार' में प्रकाशित हुई थी।

1954 में 'हिन्दुस्तान टाइम्स अन्तर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता' में 'दादी अम्मा' कहानी को पुरस्कृत किया गया। 1979 में 'बादलों के घेरे' का मंचन व 'मित्रो मरजानी' का दिल्ली आर्ट थियेटर द्वारा नाट्य प्रस्तुति की गई। 1980 में 'ज़िन्दगीनामा' के लिए 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार व 1981 में इसी उपन्यास के लिए पंजाब सरकार का 'साहित्य शिरोमणि' पुरस्कार भी लेखिका को प्राप्त हुआ है। 1982 में हिन्दी अकादमी पुरस्कार व इसी वर्ष 'डार से बिछुड़ी' की नाट्य प्रस्तुति। 1980–82 तक पंजाबी विश्वविद्यालय की विद्वतवृति मिली। 1986–87 में 'बुनियाद' की सलाहकार रही। 1986 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा 'मित्रो मरजानी' की पुनः नाट्य प्रस्तुति हुई। 1988 में 'सिक्का बदल गया' कहानी का फिल्मांकन किया गया। कृष्णा सोबती ने वर्ष 1991–92 के लिए हिन्दी अकादमी दिल्ली का सर्वोच्च श्लाका सम्मान लेने से इन्कार कर दिया है। उन्होंने कहा है कि वर्ष 1994–95 के पुरस्कार दिये जा चुके हैं फिर 1991–92 के पुरस्कार में इतना विलम्ब क्यों हुआ ? 1996 में साहित्य अकादमी के सर्वोच्च सम्मान महत्तर सदस्यता से विभूषित किया गया। 1996–97 में मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किया। 'हम हशमत' पर उन्हें उत्तर प्रदेश शासन पुरस्कार मिला है।

कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व में खास बात यह है कि वे अपने कर्म के प्रति बहुत तन्मय हैं, पूर्ण निष्ठा से कार्य करने को तत्पर रहती हैं। कृष्णा सोबती ने बहुत ही कम लिखा है। ''कृष्णा सोबती कम लिखने को अपना साहित्यिक परिचय मानती है और यही उनके परिचय की विशिष्टता भी है। दूसरे शब्दों में इनका 'कम लिखना' दरअसल 'विशिष्ट लिखना' है। लेखन के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा, आत्मीयता और भावप्रवणता के साथ–साथ कभी न मरने वाले सत्य की निरन्तर तलाश इनकी रचनाधर्मिता और व्यक्तित्व के अन्तर्निहित तत्त्व हैं।''[1] उनका लेखन कम होते हुए भी अनुभवों तथा गहराई से मानव विसंगतियों को समेटने की दृष्टि से

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0 – आवरण पृष्ठ से

अधिक महत्वपूर्ण है। ''लेखक अपनी आत्मस्वीकृतियों में जितना ही सच्चा होगा, अपने लेखन में भी उतना ही। कृष्णा सोबती की आत्मस्वीकृतियाँ उनके लेखन को प्रौढ़ता, सहजता तथा सफल प्रेषणीयता की ओर संकेत करती हैं। उनकी रचनाओं तथा अपने और दूसरों के लेखन के बारे में लिखी गई बातों से यह अहसास सहज ही होता है कि न तो जीवन जीने के स्तर पर, न अनुभवों को रचने के स्तर पर और न संप्रेषण के स्तर पर, कहीं भी उनमें दुराव–छिपाव और साहित्यिक छद्म नहीं है। दरअसल यही ईमानदारी उनके लेखन की शक्ति है जिससे अपनी सीधी–सपाट अभिव्यंजना को स्वातंत्र्योत्तर कथा–लेखन में एक अलग स्वर के रूप में स्थापित कर सकी हैं।''[1]

राजेन्द्र यादव के कथनानुसार, ''कृष्णा जी का सारा लेखन चार या पाँच--पाँच सालों के अन्तरालों के बीच कुछ गिनी–चुनी रचनाओं के रूप में ही है और वे 'डार से बिछुड़ी', तिन पहाड़', मित्रो मरजानी' या 'सूरजमुखी अँधेरे के' जैसे बहुत छोटे उपन्यासों की लेखिका के रूप में ही जानी जाती हैं – या फिर 'बादलों के घेरे', 'सिक्का बदल गया' या 'यारों के यार' कहानियों के लिए। ढंग से छपे तो यह सब–कुछ चार–सौ पन्नों से अधिक नहीं होगा। करीब पच्चीस बरसों में इतना–सा लिख कर उन्होंने जैसी प्रतिष्ठा पाई है वह सचमुच ईर्ष्या की चीज है। वे निर्विवाद रूप से हिन्दी की सबसे चर्चित लेखिका हैं, और जैसा उन्होंने लिखा है उसे अंग्रेजी में कहते हैं 'फुल ब्लडेड' लेखन।''[2] उनकी रचना में चाहे जितना अन्तर और अन्तराल रहा होगा, लेकिन उसमें एक निश्चित थीम है। ''लम्बी कहानी या लघु–उपन्यास जैसी कुल चार–पाँच चीज़ें, चार--पाँच कहानियाँ। बीस--पच्चीस सालों की मात्र यही उपलब्धि। लेकिन मोती चुनना, पच्चीकारी या ज़रदोज़ी की महीन–नफीस कारीगरी .....शब्दों को कोई भी ऐसा नाम दिया जा सके तो हिन्दी में वह सिर्फ कृष्णाजी ने किया है। एक–एक शब्द, वाक्य, कॉमा, फुलस्टाप जैसे हफ्तों के परिश्रम से आया है। वे भयानक परफैक्शनिस्ट हैं। अपनी कलम से कभी भी उस चीज को बाहर नहीं आने देंगी जिसकी सारी नोक–पलकें

---

[1] बटरोही – कहानी : संवाद का तीसरा आयाम, पृ0 – 151

[2] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 39

उन्होंने दुरस्त न कर ली हों।"[1] सोबती जी ने लेखन में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। उन्होंने अपने लेखन से हिन्दी कथा–साहित्य को एक अनोखी छवि और अनोखे अन्दाज़ से समृद्ध किया है। अपने आत्मसाक्षात्कार में ही सोबती जी ने लिखा है – "सस्ता या मँहगा कबाड़ उठाते ही चले जाना, एक शब्द की जगह दस इस्तेमाल करना, एक 'इमेज' की जगह विपरीत रंगों की भीड़ लगातार पाठकों को भुलावे–छलावे में डाल देना – न सिर्फ कम अच्छा लेखन है– वह लेखन है ही नहीं। बहुत खींचिए तो लेखन का जुगाड़ भर है। असली लेखन नहीं।"[2] कृष्णा सोबती के लेखन की यह विशेषता है कि वह थोड़े से शब्दों के माध्यम से ही बहुत कुछ कह देती हैं। वह नहीं चाहती है कि एक शब्द की जगह अनेक शब्दों का प्रयोग करके किसी बात को स्पष्ट किया जाए। वह जो कुछ भी कहना चाहती हैं शब्दों के माध्यम से ही कहती हैं न कि डेश–डेश कह कर स्पष्ट करती हैं। उनकी प्रमुख साहित्यिक कृतियाँ निम्नलिखित हैं:–

1. उपन्यास साहित्य
2. कहानी साहित्य
3. संस्मरण साहित्य
4. विविधा

### 1.2.2 उपन्यास साहित्य

उपन्यास लेखक की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। उपन्यास मानव स्वभाव के विविध पक्षों का उल्लेख, विभिन्न मनोरंजन प्रसंग, मार्मिक एवं हास्य की जितनी सुन्दर व्याख्या सशक्त भाषा के माध्यम से कर सकता है उतनी अन्य साहित्य के माध्यम से असम्भव है। "शृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव चरित्रों का निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उसके स्वभावों एवं मन की

---

[1] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 37

[2] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0 – 256

महती शक्तियों का पूर्ण जीवंत एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं।"[1] उपन्यास यथार्थ के आधार पर मार्मिक ढंग से कही गयी कहानी है।

कृष्णा सोबती ने अपने युग और युग की समस्याओं के यथार्थ को अपने उपन्यासों के माध्यम से उभारा है। मानवीय समस्याओं के मूल को तलाश कर उसके अन्तर्मन में प्रवेश किया है। उन्होंने मानव के अन्तः लोक और बाह्य समाज के अन्तराल को व्यक्त कर उसके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से वर्जनाओं और सामाजिक मर्यादाओं से घिरी नारी को एक दिशा, दृष्टि प्रदान की है और जीवन्त इकाई के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन निम्न है –

**डार से बिछुड़ी** - कृष्णा सोबती का यह प्रथम उपन्यास 1958 ई0 में प्रकाशित हुआ। डार यानी उड़ते पक्षियों की कतार या घरेलू पशुओं के झुण्ड। यह पंजाब की लोकगाथा के आधार पर लिखा गया है। इस उपन्यास में नायिका पाशो की मार्मिक जीवन–गाथा को आधार बनाया है। उसको माता मेहर के द्वारा विजातीय शेख से विवाह करने के कारण अनेक कष्ट सहने पड़े। उसकी माँ के स्वेच्छा से शादी करने से उसके भाइयों को अपमान लगा। जिसका परिणाम पाशो को भोगना पड़ा। पाशो को मामा–मामियाँ और नानी सभी शंका की दृष्टि से देखते। उनके अमानवीय अत्यचारों ने उसके अन्तर्मन को हिला दिया। जब पाशो को सन्देह हुआ कि उसे जहरमोहरा देने और जोड़ मेले में ठिकाने लगाने की कोशिश और साजिश की गई तो वह वहाँ से भाग कर अपनी माँ के पास हवेली में आ जाती है। शेख जी उसकी शादी अपने मित्र दिवान से कर देते हैं। पाशो दिवान के साथ खुशी से दिन व्यतीत करती है, परन्तु भाग्य की विडम्बना कि एक पुत्र पैदा होने के उपरान्त दिवान जी की मृत्यु हो जाती है। दिवान की मृत्यु के बाद पाशो पर विपत्तियाँ आती हैं। दिवान का भाई बरकत पाशो को बूढ़े लाला के हाथ बेच देता है पाशो तिनके की भान्ति कभी इधर, कभी उधर। "पाशो मानो व्यक्ति नहीं, चीज है, पशु है – जिसे जो मन हो सो उठाकर ले जाये, जहाँ है वहाँ उसका घर संभाले, बिस्तर गर्म

---

[1] त्रिभुवन सिंह – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ0 – 83

करे और वंश चलाने के लिए सन्तान दे..... और पाशो है कि पिछले को छाती से चिपकाये जहाँ है वही की खैर मानती रहे, मर्दों की हलचल – भरी ज़िन्दगी को अपनी नस–नस में जीती रहे... चाहे वह दिवान जी की मौत हो या खालसों की अंग्रेजों से लड़ाई..... उसे तो बांदी, बीबी या बहन कुछ भी बनकर रहना है और कभी जान बचाने के लिए पशु की तरह इस घर से उस घर भागना है या फिर खरीदी–बेची–छीनी जाकर एक दूसरे को सौंपें जाना है। जहाँ है उसे ही नियति मानकर स्वीकार करने की कोशिश में वह सिर्फ़ बीते सम्बन्धों में कृतार्थ भाव से जीती है.... ।''[1] इस प्रकार पाशो के अपने परिवार की शाखा से बिछुड़ जाने से उसके जीवन में एक के बाद एक पुरुष उसकी ज़िन्दगी में आते हैं। पर उसे प्यार किसी का भी नहीं मिल पाता है। अन्त में वह फिरंगियों से भी नहीं बच पाती है। उसे उनकी वासना का शिकार होना पड़ता है। अन्त में अनेक परिस्थितियों से गुजरती हुई अपने परिवार से मिल जाती है। इस उपन्यास में यह चित्रित किया है कि सामाजिक प्रथाओं से विमुख होने पर केवल स्वयं को ही प्रायश्चित नहीं करना पड़ता है बल्कि उसके कारण सन्तान को भी यातनाएँ सहन करनी पड़ती है। इस प्रकार पाशो के जीवन की दुःखमय गाथा को चित्रांकित किया है।

**मित्रो मरजानी** - 1967 में प्रकाशित पारिवारिक उपन्यास है। 'मित्रो मरजानी' शीर्षक से ही स्पष्ट है कि यह मित्रो के जीवन पर आधारित बहुचर्चित उपन्यास है। साथ में गुरुदास के संयुक्त परिवार का चित्रण भी किया गया है। गुरुदास और धनवन्ती दोनों पति–पत्नी हैं। उनके तीन बेटे और तीन बहुएँ हैं। सबसे बड़ा बेटा बनवारी है और उसकी पत्नी सुहाग है। मंझला सरदारी लाल है उसकी पत्नी मित्रो है। छोटा बेटा गुलजारी है उसकी पत्नी फूलां है। मित्रो इस परिवार की केन्द्र बिन्दु है। मित्रो काम–पीड़ित नारी है। उसमें शारीरिक भूख अधिक है। पति सरदारी लाल से असन्तुष्ट मित्रो अपनी देह की प्यास बुझाने के लिए विद्रोह करती है। पति, सास, ससुर, जेठ, जिठानी, देवर, देवरानी सबसे अपने अधिकार की माँग करती है। मित्रो हिन्दी कथा–साहित्य की एक अकेली ऐसी नारी है जो सदियों से औरत पर लादे परम्परावादी

---

[1] राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ0 – 40

मूल्यों, रूढ़ियों और संस्कारों को नकारती हुई अपनी मूलभूत आवश्यकता को अपनी जुबान में लाती है। इसी कारण वह विवादास्पद रही है। यह यौन की भूख मित्रो में ही नहीं बल्कि उसकी माँ बालो में भी पाई जाती है। मित्रो की माँ बालो भी अनेक पुरुषों को भोग चुकी है। वह निरन्तर नये पुरुषों का भोग करती है। ऐसे संस्कारी वातावरण मे पली मित्रो सरदारी लाल से विवाहित होने के उपरान्त भी अन्य पुरुषों के जीवन की कामना करती है। ससुराल में मित्रो के विषय में फैली अफवाहों को सुनकर उसकी सास उसे उसकी माँ के घर भेज देती है। वहाँ माँ के सहयोग से वह अपनी माँ के प्रेमी को समर्पित हो जाने के लिए तैयार हो जाती है। जैसे ही वह उसके पास जाने लगती है उसकी माँ वापिस बुला लेती है। उसी समय मित्रो के मन में शंका पैदा होती है कि कहीं माँ अनेक पुरुषों से अस्वीकृत होने पर उसके पति के साथ भोग करे। उसके भीतर एक तड़फ उठती है और वह बुरी राह छोड देती है। वह माँ को देखकर कि अनेक पुरुषों से जुड़ने के पश्चात् वह अकेली रह जाती है। मित्रो अनुभव करती है कि पति ही उसके लिए सब कुछ है। उसके मन में दबा हुआ पत्नीत्व जाग उठता है। वह अपने पति के प्रति समर्पित हो जाती है। वह अन्य पुरुषों के लालच में अपने पति को खोना नहीं चाहती है।

**यारों के यार** - 1968 में प्रकाशित कृष्णा सोबती की यह सशक्त विवादाग्रस्त रचना मानी जा सकती है। यह कहानी जगत की 'बोल्ड' रचना है। 'बोल्ड' इसलिए है कि इसमे दफ्तरी ज़िन्दगी के भीतर चलने वाले लेन–देन, शाही धन्धों की परतों को नंगा करके प्रस्तुत किया है। उपन्यास में बड़े बाबू एक सदगृहस्थ हैं, जो अपने बेटे के एक्सीडेंट की खबर पाकर भी दफ्तरी फाइलों में उलझे रहते हैं। बेटे के पास सही वक्त पर नहीं पहुँच पाते हैं। मध्यम वर्ग के लोग अपनी और अपने परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए दिन भर काम करते रहते हैं, लेकिन फिर भी वह उनकी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाते हैं। भवानी बाबू भी अपने बेटे की छोटी सी इच्छा को पूरा नहीं कर पाते हैं तो उन्हें उसकी मृत्यु के बाद उसकी याद आती है। क्लर्क जहाँ से अपनी नौकरी शुरु करता है वहीं से रिटायर भी हो जाता है। अपनी इस बेबस स्थिति से जूझते–जूझते उनकी जुबान इतनी गन्दी हो जाती है कि दिल की सारी कड़वाहट गालियों के रूप में निकलती है। ऑफिस में दो वर्ग होते हैं। एक अधिकारी समर्थक और दूसरा

विरोधी। ऑफिस में ये लोग एक दूसरे पर दोषारोपण करते रहते हैं। ऑफिस में घटने वाली गतिविधियों पर ही चर्चा करते रहते हैं। जैसे किसका प्रमोशन हुआ, किसने रिश्वत ली आदि। भवानी बाबू के माध्यम से मध्यम वर्ग के लोगों का चित्रण ही नहीं बल्कि दफ्तरों में होने वाले नारी शोषण को भी चित्रित किया है। 'प्रश्नों के घेरे' में राजेन्द्र अवस्थी ने 'यारों के यार' के बारे में पूछा तो कृष्णा जी का उत्तर था – "व्यक्तिगत रूप से यारों के यार मेरे लेखन के लिए एक बड़ी चुनौती थी.... आँख का पैनापन और कहानी को परत–दर–परत उकेरना और कैमरे की सीध ऐसी कि कहानी का कोई अंश, कोई भी पात्र आउट–ऑफ फोक्स न हो जाए। ऐसा नहीं हुआ – मैं इसके लिए आश्वस्त हूँ और अपने लेखन के प्रति कृतज्ञ भी। हरामजादे, उल्लू के पट्ठे जैसे जाने पहचाने शब्दों को अगर आप 'फुटनोट' या डैश–वैश की मदद से पहचानना चाहें तो हमें क्या एतराज हो सकता है। वैसे इतना हम कह दे कि लेखक के निकट जिन्दा जबान इस्तेमाल कर सकने की उसमें हिम्मत संयम और सामर्थ्य होने की गवाह है।"[1] कृष्णा सोबती ने इस उपन्यास के माध्यम से दिल्ली के सरकारी दफ्तरों के कर्मचारियों की सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति का सहज स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है।

**तिन पहाड़** - 'तिन पहाड़' उपन्यास प्रेम के त्रिकोण पर आधारित है। जया एक अनाथ लड़की है। जिसे श्री दा की माँ ने पाला पोषा है। श्री दा के घर में रहने के कारण वह जया के प्रति आकृष्ट हो जाता है और माँ से जया के साथ गृहस्थी बसाने का आग्रह करता है। श्री दा की बात माँ मान जाती है और श्री दा उसे मँगनी की अंगूठी पहना देते हैं। परन्तु श्री दा को पढ़ने विदेश जाना पड़ता है वहाँ वह एडना से विवाह कर लेते हैं। विवाह की सूचना मिलते ही माँ गुस्से होती है और जया घर छोड़ दार्जिलिंग चली जाती है। वहाँ जया के सम्पर्क में तपन आता है। विदेश से लौटने पर श्री दा और उसकी पत्नी का स्वागत माँ नहीं करती है और श्री दा अपनी पत्नी के साथ उसके पिता रौस के पास आ जाते हैं। जो दार्जिलिंग में ही रहते। वहीं उन्हें जया भी मिलती है। जया को तपन के साथ देखकर श्री दा को बुरा लगता है। श्री दा

---

[1] राजेन्द्र अवस्थी – प्रश्नों के घेरे, पृ0 – 226

तपन का अपमान करते हैं। लेकिन जया यह सब सहन नहीं कर पाती है। जया श्री दा का अन्य स्त्री से विवाह व एक से छूटकर दूसरे से जुड़ना नहीं चाहती है। इसलिए वह जीवन से और सारी व्यथाओं से मुक्ति पा लेती है।

**सूरजमुखी अँधेरे के** - सन् 1972 ई0 में प्रकाशित कृष्णा सोबती के इस उपन्यास में पुरुष की पाशविकता की शिकार रत्ती का चित्रण किया है। जिसके साथ बचपन में ही किसी अज्ञात व्यक्ति ने बलात्कार किया। बलात्कार के कारण रत्ती में ऐसी ग्रन्थि पैदा हो जाती है कि वह पुरुषों से ही घृणा करने लगती है। उसके मन में भय, संकोच और लज्जा के भाव पैदा हो जाते हैं और उनसे इतनी आक्रान्त हो जाती है कि वह एक पूर्ण स्त्री नहीं बन सकी और उसे इस दशा तक पहुँचाने में समाज का भी योगदान रहता है। क्योंकि उसे उसके सहपाठी गन्दी लड़की कह कर पुकारते हैं। उसके जीवन में समय–समय पर विवाहित–अविवाहित अनेक पुरुष आते हैं जो उससे झूठा प्रेम करते हैं क्योंकि वह केवल वासनापूर्ति के उद्देश्य से ही उसकी ओर आकृष्ट हुए। कुछ के प्रति रत्ती स्वयं आकृष्ट हुई पर समर्पण के अवसर पर वह कठोर हो जाती थी। क्योंकि उसके मन में जो पुरुषों के प्रति बचपन की स्मृति थी वह साकार हो उठती है। अन्त में दिवाकर उसकी पीड़ा को समझता है और उसके अंतस् में झाँककर उसके मन की व्यथा को जानता है। जो उसे सम्पूर्णता देता है। अमानवीय व्यवहार ने उसके जीवन को अंधकार युक्त बना दिया था, परन्तु वहीं पुरुष के संवेदनामय अपनत्व ने उसके अंधकार को दूर कर जीने के लिए उत्साहित किया। परिणामस्वरूप रत्ती ने उसके प्रेम को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उसके अँधेरे जीवन में सूरजमुखी के फूल खिल उठे।

**ज़िन्दगीनामा** - सन् 1979 में प्रकाशित ज़िन्दगीनामा 'ज़िन्दा रुख' कृष्णा सोबती की बहु प्रशंसित कृति है। उनकी ज़िन्दगी का दस्तावेज है। "इस उपन्यास में पंजाब के जिस क्षेत्र का चित्रण है, वह अब पाकिस्तान का एक अंग बन गया है। वह पंजाब तथा जम्मू–काश्मीर की

सीमाओं को छूता है। चित्रण बंग–भंग 1907 से लेकर प्रथम विश्व–युद्ध 1914–17 का है।"[1] पंजाब की अविभाजित पृष्ठभूमि पर लिखा यह उपन्यास लेखिका की अपनी भूमि व वतन के प्रति श्रद्धा, विश्वास और आदर का उद्‌गार है। इस उपन्यास पर उन्हें विभिन्न पुरस्कार मिले हैं। इस उपन्यास में शाह परिवार को केन्द्र में रख कर पंजाबी लोकजीवन और वहाँ के वातावरण को सम्पूर्णता से चित्रित करने का प्रयास किया है। हिन्दू–मुस्लिम एकता एवं उनके सम्बन्धों को अंकित किया है। यह उपन्यास गाँव से शुरू होकर अंग्रेजी हकूमत की खिलाफत पर आकर खत्म हो जाता है। ग्रामीण समाज का जीवन्त व शक्तिशाली चित्रण किया है, लेकिन यह समाज बहुत पीछे छूट गया है।

**ऐ लड़की** - सन् 1991 में प्रकाशित 'ऐ लड़की' कृष्णा सोबती का लघु उपन्यास है। यह उपन्यास कभी न मरने वाले सत्य की निरत्त तलाश का महाकाव्य है। बूढ़ी स्त्री 'अम्मू' मृत्यु की प्रतीक्षा में अपने जीवन की पिछली स्मृतियों को अपनी बेटी 'ऐ लड़की' को सुनाती है। 'ऐ लड़की' माँ का अपनी बेटी को सम्बोधन है। वह लड़की स्वतन्त्र आत्मनिर्भर जीवन जीने वाली है। वह अपनी माँ की सेवा करती रहती है। मृत्यु–शैय्या पर पड़ी नारी को यह अहसास होता है कि लड़की नाम की ही महारानी है – "पत्नी है, बहू है, माँ है, नानी है, दादी है। फिर..... सब कुछ पोंछ–पाँछ के उसे बिठा दिया जाता है अपनी जगह पर।"[2] मुक्त आकाश की चाहना, पृथ्वी के ठोस यथार्थ को भोगने वाली निर्भय और जीवन की इच्छा रखने वाली स्त्री का महाकाव्य है। इस उपन्यास में उसकी विडम्बना, उसकी सुख–दुःख की स्थिति का वर्णन किया है। यह कथा अपनी स्मृति में पूरी तरह डूबी स्त्री का, जगत् को छोड़ते हुए, अपनी बेटी को दिया निर्मोह का उपहार है।

---

[1] चन्द्रगुप्त विद्यालंकार – ज़िन्दगीनामा तीन प्रतिक्रियाएं साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 23–29 दि0, 1979

[2] कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, पृ0– 76

170801
H. P. University Library
Shimla

**दिलो-दानिश** - 1993 में प्रकाशित कृष्णा सोबती का उपन्यास दिलो–दानिश शाश्वत प्रेम के त्रिकोण पर आधारित नवीनतम उपन्यास है। इसमें दिल्ली के उच्चमध्यवर्गीय परिवार के वकील कृपानारायण के जीवन और उनकी दुहरी जिन्दगी का वर्णन किया है। यह रचना 19–20 वीं शती के मध्य दिल्ली के हवेली में रहने वालों के रहन–सहन, परम्पराओं रूढ़ियों, जादू–टोने में विश्वास करने वाले, ईर्ष्या–द्वेष उनकी शानों–शौकत की छोटी–बड़ी हस्तियों की कहानी उन्ही की जबानी कह जाती है। कृपानारायण पत्नी कुटुंबप्यारी और रखैल महक के बीच बंटा हुआ जीवन जी रहे हैं। समाज ऐसे लोगों पर अँगुली उठाता है पर वह परवाह नहीं करते हैं। क्योंकि अनेक समर्थ व्यक्ति एक या एक से अधिक नारियों से जुड़े हुए होते हैं। कृपानारायण अच्छे प्रेमी और अच्छे पति बनने की खींचातानी में परेशान तो होते हैं पर उन्हें पाप--बोध महसूस नहीं होता है। दो घरों, दो औरतों और उनकी सन्तानों के बीच कशमकश की जिन्दगी व्यतीत करते जाते हैं। दिलो–दानिश की कहानी दिल्ली वालों के मिजाज, रूआब में जो किसी न किसी रूप में आज भी मौजूद है। कृष्णा सोबती ने एक समृद्ध समर्थ परिवार के संयुक्त परिवार की भीतरी जिन्दगी को चित्रित किया है और पुरुष के मनोविज्ञान को उभारा है।

### 1.2.3 **कहानी साहित्य**

19 वीं शती के बाद कहानी सामाजिक यथार्थ की ओर मुड़ी। कहानी में जीवन के एक पक्ष की झलक या एक क्षण का मार्मिक जीवन दृश्य दिखाया जाता है। जीवन की अभिव्यक्ति अधिक जीवन्त और सजीव रूप में होती है।

कृष्णा सोबती आधुनिक भावबोध की प्रमुख कहानी लेखिका है। उनकी कहानियों में पंजाब प्रदेश की मिट्टी की गन्ध समायी हुई है। कृष्णा सोबती का अब तक एक ही कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' 1980 ई0 में प्रकाशित हुआ है। उनकी पहली कहानी 'लामा' (1944) और 'नफीसा' (1944) हैं। 'बादलों के घेरे' नामक संग्रह में इनकी कुल चौबीस कहानियाँ हैं। ये सभी कहानियाँ एक निश्चित तथ्य को लेकर लिखी गई हैं। कृष्णा सोबती की कहानियों के अलग स्वरूप के विषय में सरिता कुमार का कहना है कि "कृष्णा सोबती की

कहानी के स्वरूप को पहचानने और परखने के लिए इनकी उन कहानियों की विकास–यात्रा से अवगत होना आवश्यक है जिनमें प्रेम का स्वरूप रोमांटिक बोध में परिणत हो जाता है।"[1] कृष्णा सोबती वैयक्तिक मूल्यों की कहानीकार हैं। उन्होंने प्रेम, वासना और वात्सल्य मूल्यों को अभिव्यक्ति दी है। सोबती जी ने अपनी कहानियों में नारी मन की परतों को सूक्ष्मता से उघाड़ा है। सोबती जी की कहानियों का संक्षिप्त परिचय द्रष्टव्य है –

**बादलों के घेरे** - 'बादलों के घेरे' कहानी में मन्नो क्षय रोग से ग्रस्त है। रवि मन्नो को अपनी बुआ के घर देखता है। वह उसके चेहरे और बीमारी के गिर्द चक्कर काटने लगता है, उसे प्यार करने लगता है। मन्नो भी उसके निकट आने लगती है। लेकिन रवि की शादी मन्नो से नहीं मीरा से होती है। वह मीरा के साथ अपनी गृहस्थी बसाता है और मन्नो को लगभग भूल जाता है। परन्तु दस साल के सुखमय गृहस्थ जीवन बिताने के पश्चात् मन्नो को याद करता है। वह मीरा की उपेक्षा मन्नो को सगी समझता है। पत्नी से अलग हो बादलों के घेरे में भटकता रहता है। इस तरह रवि की विविध सूक्ष्म मनः स्थितियों को चित्रित किया गया है।

**दादी अम्मा** - इस कहानी में मेहराँ की सास बहुत तेज और तीखी निगाह वाली है। समय बीतने के साथ–साथ बच्चों की दादी अम्मा बनकर रह जाती है। घर की दादी अम्मा का स्थान अब उसकी बहू मेहराँ ले लेती है। "मेहराँ की गोद से इस परिवार की बेल बढ़ी है। ..... उसकी बहुएँ जब उसके सामने झुकती हैं तो क्षण–भर के लिए मेहराँ के मस्तक पर घर की स्वामिनी होने का अभिमान उभर आता है।..... ऐसे ही, बिल्कुल ऐसे ही वह भी कभी सास के सामने झुकती थी।"[2] जब मेहराँ घर की मालकिन दादी अम्मा का स्थान लेती है तो दादी अम्मा को दुःख होता है। बुढ़ापे में दादी अम्मा अकेली पड़ी रहती है। लेकिन हमेशा दादी अम्मा परिवार के

---

[1] सरिता कुमार – महिला कथाकारों की रचना में प्रेम का स्वरूप–विकास, पृ0 – 102

[2] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 31

सदस्यों को कुछ न कुछ कहती रहती है। उसे लगता है कि मेहराँ की बहुएँ आ जाने पर मेहराँ अपनी सास का ख्याल नहीं रखती है। पीढ़ियों के अन्तराल को मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। इस कहानी में दर्शाया गया है कि बुढ़ापा आदमी को कितना लाचार और बेबस बना देता है।

**भोले बादशाह** - भोले बादशाह कहानी में एक पागल नवयुवक को चित्रित किया गया है। उसका नाम भोला है। वह विवाह करना चाहता है। गली–मुहल्ले वालों से हमेशा अपनी शादी के बारे में कहता है और लोग भी उससे मजाक करते हैं। लेकिन उसकी शादी की इच्छा पूर्ण हुए बिना ही दुनिया से जाना पड़ता है।

**बहनें** - इसमें तीन बहनों का चित्रण किया गया है बड़ी, मंझली और छोटी। जो बचपन में साथ–साथ खेली पली और बड़ी हुई। लेकिन शादी के बाद तीनों अपनी–अपनी गृहस्थी में व्यस्त हो जाती हैं। बड़ी बहन की स्थिति दोनों से अच्छी है। मंझली बहन विधवा हो जाती है व छोटी मातृत्व से वंचित है। एक दिन बड़ी बहन के बेटे की शादी में इकट्ठी होती हैं और अपने सुख–दुःख सुनाती हैं। दोनों बहनें बड़ी के बेटे धर्म को भी अपने बेटे की तरह मानती हैं क्योंकि उन दोनों के कोई औलाद नहीं है। बड़ी उन दोनों की सहायता करना चाहती है लेकिन वह अपनी गृहस्थी में इतनी व्यस्त हो जाती है कि चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती है। अब उनके घर–परिवार, नाते–रिश्ते एक नहीं रह गये। अब वे अलग–अलग किनारों से जुड़ी हुई हैं चाहकर भी एक नहीं हो पाती हैं।

**बदली बरस गयी** - इस कहानी में कल्याणी अपनी माँ के साथ आश्रम में रहती है। कल्याणी के पिता की मृत्यु हो जाने के बाद परिवार वाले उसकी माँ को तंग करते हैं और एक दिन वह घर छोड़कर आश्रम में आ जाती है। कल्याणी की माँ सन्यासिन बन जाती है। कल्याणी भी अपनी माँ के साथ रहती है। लेकिन उसे (कल्याणी) आश्रम में रहना अच्छा नहीं लगता है। वह अपनी माँ को यह बात बताती है तो उसकी माँ कहती है कि तुम महाराज के निवास को बुहारा

करो। उपवास किया करो तुम्हें शान्ति मिलेगी। लेकिन कल्याणी एक दिन विद्रोह कर झूठी जंजीरों को तोड़ वहाँ से निकल आती है।

**गुलाबजल गँडेरियाँ** - इसमें विवश, असहाय नारी का चित्रण किया है। धन्नों एक वेश्या है। वेश्या की ज़िन्दगी गुजारते हुए उसने यौवन में बड़े सुख देखे। पर कभी–कभी सोचती है किसी अच्छे सेठ के घर बैठ जाए। एक दिन एक दम्पत्ति को देखकर ठिठक जाती है वह सोचती है कि मैं भी अपनी काली चमड़ी उतार फैंकू, लेकिन कपड़ों की तरह चमड़ी को नहीं बदला जा सकता है। समय के साथ–साथ उसकी देह भी ढीली पड़ जाती है। देह की मांसलता खत्म होने के साथ–साथ उसकी जिन्दगी भी विकृत होती गयी। अन्त में थोड़ी सी ठण्डक पाने की उम्मीद में मर जाती है।

**कुछ नहीं–कोई नहीं** - शिवा और रूप दोनों पति–पत्नी हैं लेकिन वह आनन्द से प्यार करती है। वह रूप को छोड़कर आनन्द के घर चली जाती है। लेकिन आनन्द का साथ पाकर वह रूप के संसर्गों को भुला नहीं पाती है। इस तरह शिवा अतीत को भुला नहीं पाती है। इसमें शिवा के असफल प्रेम और मानसिक दशा को चित्रित किया गया है।

**टीलो ही टीलो** - इसमें बच्चों के मनोविज्ञान को उभारा है। दूध–पतरीवाली और कोयले के टुकड़े नामक दो टोलियों के माध्यम से टीलो ही टीलो खेल का वर्णन किया है।

**अभी उसी दिन ही तो** - इसमें नारी के एकाकीपन को चित्रित किया गया है। सकुन्ती की माँग की सिन्दूरी रेखा पुँछ जाती है और अपने आप को अकेला महसूस करती है। वह बच्चों के सहारे जिन्दगी व्यतीत करना चाहती है लेकिन बच्चे शादी–शुदा होने के कारण अपने–अपने परिवार में व्यस्त रहते हैं। समय बीतने के साथ–साथ उसे नया वर्ष भी फीका लगने लगता है। आखिर ऐसी स्थिति आ जाती है कि सकुन्ती को नया वर्ष भी अन्तिम वर्ष लगने लगता है। अपने भरे–पूरे परिवार के होते हुए भी स्वयं को अकेली समझने वाली औरत की कहानी है।

**दोहरी साँझ** - जया और महेन साथ–साथ जीवन जीने का स्वप्न लेते हैं। लेकिन उनका यह स्वप्न पूरा नहीं हो पाता है। जया की शादी कहीं ओर हो जाती है। उसका एक बेटा अविनाश है। अविनाश छाया से प्यार करता है और उसी से शादी करना चाहता है। लेकिन जया चाहती है कि अविनाश छाया से शादी न करे। क्योंकि छाया के परिवार का अच्छा–बुरा भी साथ आएगा। लेकिन एक दिन जया छाया के घर उससे मिलने जाती है। वहाँ उसकी मुलाकात महेन से होती है। महेन से मिलकर उसकी पुरानी स्मृमियाँ ताजा हो जाती हैं और ऐसा महसूस करती है कि – "बीच की लम्बी अवधि जैसे छाया और अविनाश में बँधी खड़ी रह गयी है।"[1] जया को ऐसी अवस्था में जीवन की दोहरी सांझ का अनुभव होता है जिसमें नयी पुरानी और बिछुड़ी स्मृतियाँ उस दोहरी साँझ में विलीन हो जाती हैं।

**डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा** - इसमें साम्प्रदायिक दंगों को उभारा गया है। इसमें एक राजकुमार किसी की रक्षा करने का प्रण लेता है। लेकिन वह प्रण किए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वह मरते–मरते भी धीमे से कहता है डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

**जिगरा की बात** - इस कहानी में अमरो एक साहसी नारी है जो बेटे की गलत हरकतों को सहती है। गाँव वाले जब उसके बेटे के बारे में कहते हैं तो वह उन्हें भी डाँटती हैं। यहाँ तक की जब उसके बेटे को पुलिस ले जाती है तो भी वह नहीं घबराती है। पुलिस वाले भी उसके साहस को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

**खम्माघणी, अन्नदाता !** - बदले इतिहास और युग की कहानी है। लेकिन महाराज को लगता है कि वह अपने राज से वंचित हो रहे हैं। वह सोचते हैं –"यह कैसी विडम्बना है? राजा का राज्य क्या बस यों ही चला जायेगा ? सत्ता का अधिकार और अधिकार का प्रभुत्व सब–कुछ

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 –104

बदल जायेगा? बिना किसी विरोध के, रक्तपात के?"[1] जनता अब राजा का राज नहीं चाहती है। इस कहानी में यही दर्शाया गया है कि राजाओं का राज खत्म होता है और जनता का शुरू होता है।

**सिक्का बदल गया** - शाह और शाहनी गाँव के लोगों से प्रेम पूर्वक रहते हैं। लेकिन विभाजन के कारण सदियों से साथ रहने वाले हिन्दू और मुस्लिम लोगों की मनः स्थिति में परिवर्तन आ जाता है। शाहजी की मृत्यु के पश्चात् शाहनी अकेली रह जाती है। शेरा की माँ की मृत्यु हो जाने के बाद शाहनी शेरा को पालती है। लेकिन शेरा में प्रतिहिंसा की भावना पैदा होती है कि शाहजी हमारे भाइयों से सूद लेकर सोने–चाँदी की बोरियाँ तोला करते थे। वह शाहनी के कत्ल की योजना बनाता है पर वह ऐसा कर नहीं पाता है। शाम के समय हिन्दू परिवारों को लेने ट्रकें आ जाती हैं। शाहनी बुझे हुए मन से गाँव वालों से विदा लेती है। वह पुरखों की धरती छोड़कर अन्जान जगह की ओर चल देती है। कहानी में करुणा, मानवीय सम्बन्धों की स्थिति, अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

**आज़ादी शम्मोजान की** - शम्मोजान एक वेश्या है। इसमें वेश्या नारी की आज़ादी का और देश की आज़ादी का चित्रण किया है। "बाहर झण्डे हवा मे लहरा रहे थे, चिराग हल्के–हल्के जल रहे थे, लोग आज़ादी से गले मिल रहे थे और अन्दर शम्मोजान अपनी पुरानी आज़ादी बाँट रही थी, जो उसके पास शायद अभी भी बहुत थी.... बहुत थी।"[2]

**कामदार भीखमलाल** - दूसरों को भीतर तक भेदने की तीखी नजर रखने वाले कामदार भीखमलाल का चित्रण किया है। कमर उनकी झुकने लगी है परन्तु फिर भी चलते समय चारों तरफ देखते रहते हैं कि क्या हो रहा है? उनकी परख इतनी तेज थी कि बहुत गहरे से भी कुछ

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे पृ0 – 114

[2] वही – वही पृ0– 131

खोज लेते हैं। जब वह काम पर जाते हैं तब भी उनकी नजरें चौकस होती हैं कि आस–पड़ोस में क्या हो रहा है। "महलों की खोज–ख़बरों के साथ–साथ राज के हरएक महकमे के जरूरी हालात, उन हालातों से उलझे नाम और नामों से जुड़े चार पीढ़ियों तक के इतिहास, शहर में बनते–बिगड़ते, नये–पुराने नाते–रिश्तों से उपजते नये झगड़े और मित्रताएँ–कुछ भी उनसे भूला नहीं था। उनकी परख कुछ ऐसी तेज थी कि बहुत गहरे से चीजों को कुरेद लाती थी। सुबह काम पर जाते–जाते उनकी आँखें कुछ–न–कुछ जाँचने में जरूर सफल हो जातीं।"[1]

**पहाड़ों के साये तले** - यह कहानी पत्र के रूप में लिखी हुई है जिसमें यह धारणा दृढ़ की गई है कि "अतीत को कोई लौटा नहीं पाता। केवल मन के द्वार पर खड़ी स्मृतियाँ कभी–कभी उन्हें पुकारकर रह जाती हैं।"[2] पत्र के द्वारा व्यतीत किए हुए दिनों को चित्रित किया गया है।

**न गुल था, न चमन था** - इसमें जया माधुरी और नादिरा दस्तूर दो नारियों के जीवन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण को उभारा है। उन दोनों के जीवन के प्रति भिन्न–भिन्न विचार हैं।

**एक दिन** - धर्मपाल अपनी पहली पत्नी शीला को छोड़कर दूसरी पत्नी श्यामा के साथ रहता है। शीला सब कुछ सहन करते हुए दुःखी जीवन व्यतीत करती है। लेकिन कुछ दिनों के लिए श्यामा अपने बीमार भाई को देखने के लिए मायके जाती है। पत्नी के चले जाने के बाद धर्मपाल अकेला रह जाता है तब उसे शीला की याद आती है। उसे अपनी भूल का अहसास होता है कि उसने इतने दिनों तक शीला की कोई ख़बर नहीं ली। वह उसी क्षण शीला के पास चला जाता है। शीला अपने पति के सहवास में सफलता पाकर आनन्द विभोर हो उठती है। पति–पत्नी के आपसी सम्बन्ध परिस्थितियों के कारण फिर स्थापित हो जाते हैं। शीला के

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0–132–133

[2] वही – वही पृ0 – 138

वेदनामय जीवन, नये जीवन की शुरुआत आदि का परिचय दिया गया है। इस तरह 'एक दिन' कहानी में समस्त दृश्य एक दिन में ही बदल जाता है।

**नफीसा** - अस्पताल में मौत और ज़िन्दगी से जूझ रही सात साल की बच्ची की मार्मिक दशा का वर्णन किया गया है। वह अपने माँ–बाप, भाई–बहन से दूर अस्पताल में दाखिल है। वह सोचती है कि मेरे माँ–बाप कैसे हैं जो मुझे यहाँ अकेला छोड़कर चले गये हैं। लेकिन वह नहीं जानती है कि उसकी अम्मी उसे देखकर जाती है तो कैसी बेबसी से छटपटाती है। इस तरह एक बच्ची की मनोदशा को चित्रित किया गया है।

**मेरी माँ कहाँ···** - यह कहानी विभाजन से उत्पन्न मार्मिक परिस्थितियों के साथ मनुष्य चरित्र के परस्पर विरोधी पक्ष का चित्रांकन भी करती है। यूनस खाँ ने असंख्य लोगों को मौत के घाट उतारा। लेकिन सड़क पर पड़ी मूर्च्छित बच्ची को देखकर ठिठक जाता है। उस बच्ची को वह अस्पताल ले जाता है ताकि वह ठीक हो जाए। लेकिन बच्ची की आँखों में उसके प्रति डर, घृणा और आशंका है, क्योंकि अपने परिवार के साथ घटी दुर्घटनाओं को वह भुला नहीं पाती है। यूनस खाँ ही उसके परिवारजनों की हत्या करने वाले वर्ग का प्रतिनिधि है। इसी कारण खाँ की हमदर्दी और करुणा उसे द्रवित नहीं कर पाती है और काफिर यूनस खाँ परिस्थिति की इस विडम्बना के सामने अपने आपको बेबस और असहाय पाता है।

**लामा** - बच्चों के भोलेपन का चित्रांकन इस कहानी में किया गया है। झुकी हुई कमर, कानों में बड़े बाले, हाथों में छोटा–सा ढोल, गले में झोला लटकाये, रूखे बाल, फटे पुराने चिथड़े में जब बूढ़ा लामा आता है तो बच्चों में हलचल सी शुरू हो जाती है। उसे चिढ़ाने के लिए 'मर जा' शब्द का प्रयोग करते हैं। उसके मरने की कामना करते हैं। एक दिन जब बच्चों ने सुना कि लामा मर गया तो वे बहुत खुश होते हैं। बच्चे जीवन, मरण को भी खेल ही समझते हैं। लेकिन

उसके मरने पर उसके वापिस लौटने की प्रतीक्षा करते हैं कि जब लामा वापिस आएगा तो उससे नयी–नयी कहानियाँ सुनेगें। लेकिन कई महीने बीत गये लामा वापिस नहीं आया।

**दो राहें : दो बाँहें** - यह एक ऐसी कहानी है जिसमें मीनल, रोहित और हरेन तथा कुन्तल, शोभन और गुप्ता के प्रेम सम्बन्धों को चित्रित किया है। इनमें तीसरे व्यक्ति के आने से सम्बन्धों में उष्मा और गरिमा विलुप्त हो जाती है।

### 1.2.3 संस्मरण साहित्य

जीवन का कोई रोचक प्रसंग जब लिखित रूप प्राप्त कर लेता है तब वह संस्मरण कहलाता है। कृष्णा सोबती ने हशमत के लिबास में अपने समकालीन चरित्रों को परखने परोसने की दावत दी है। किसी को मिलना, उसे निचोड़ना, वसूल करना एक कला है जिसका आनन्द कृष्णा सोबती ने हशमत लिख कर लिया है। उन्होंने भीड़ में अटके चेहरे और भीड़ में खटके चेहरों की चर्चा की है। "इन चेहरों में प्रसिद्ध लेखक, पत्रकार, बुद्धिजीवी और पेशेवर अजीज मित्र हैं और इनमें से बहुतेरे आपके परिचित हैं। पार्टियाँ और दावतें आपने भी देखी होंगी। लेकिन टैक्सी ड्राइवर और नानबाई जैसे लोगों के बारे में आप शायद न जानने का भाव दिखायें, जबकि हकीकत में इन्हें भी जान रहे हैं। किसी भी मोड़ पर किसी भी समय इनसे आपकी मुलाकात होती रहती है। ये सारे चेहरे हैं जिनसे हशमत मिलता है, जो एक दूसरे से अलग होकर भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा उसी व्यापक जीवन प्रवाह के अंग हैं जिसमें हम और आप और सारे लोग बह रहे हैं.....।"[1] हम हशमत की जुबान में अपना संस्मरण लिखने वाली कृष्णा जी अपनी जिन्दगी में निहायत सरल और सादगी से भरी हैं। ऐसी विशिष्ट लेखिका के जीवनानुभव और रचना अनुभवों को सुनना निस्संदेह एक घटना होगी।

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0 – आवरण पृष्ठ से

**निर्मल वर्मा** - हशमत की मुलाकात निर्मल वर्मा के साथ अचानक ही दिल्ली के एक रेस्तरां के सामने हो गई। हशमत निर्मल वर्मा को लगातार पढ़ते रहे हैं। हशमत के अनुसार – "निर्मल की अधिकाँश रचनाओं में उनकी अपनी अन्तरंग अनुभूतियों और चरित्रों के स्तर पर गहरा तारतम्य है।"[1] निर्मल ने साहित्य को जो योगदान दिया है वह अनूठा है, बेजोड़ है। "परिन्दे' से लेकर 'लालटेन की छत' तक निर्मल वर्मा ने अपने अनोखे एकान्त में समाज से, आस–पास फैले विद्रूप से अलग–थलग इसी के साक्षात्कार को निभाया है।"[2] निर्मल वर्मा उन हिन्दी के विरले साहित्यकारों में से हैं जो लेखन के अलावा चित्रकला, संगीत, स्थापत्य तथा फिल्म में भी गहरी रुचि रखते हैं।

**रमेश पटेरिया** - हशमत अपने दोस्त चित्रकार सुधीर पन्त से मिलने जाते हैं वही उनकी मुलाकात रमेश पटेरिया से भी होती है। उसमें उन्होंने एक अनोखा फक्कड़पन पाया और उसे बरकरार रखने की सलाह दी। "मगर अजीज दोस्त, इस बाहर के नशे को नहीं, इस फक्कड़पन को सलामत रख।"[3]

**भीष्म साहनी** - एक शाम भीष्म से फोन पर वक्त तय कर हशमत रेस्तरां में उनसे मिलने गए। हशमत की भीष्म साहनी से पहली मुलाकात थी। हशमत इन्तजार करते–करते थक गए तो वेटर को बाहर बरामदे में देखने के लिए कहा। साथ वाली मेज से आवाज आयी – "तो हशमत साहब आप ही हैं। इधर आइए, मुझे भीष्म साहनी कहते हैं।"[4] भीष्म पेशे से अंग्रेज़ी पढ़ाते हैं और साहित्य लेखन हिन्दी में करते हैं। भीष्म साहनी को 'तमस' के लिए अकादमी पुरस्कार तथा भाषा विभाग से साहित्य शिरोमणि पुरस्कार मिला है। "तमस ज़िन्दगी की

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0 – 12
[2] वही – वही पृ0 – 26
[3] वही – वही पृ0 – 13
[4] वही – वही पृ0 – 26

छोटी–बड़ी लड़ाईयों की कहानी नहीं। यह विभाजन जैसी ऐतिहासिक घटना का, संघर्ष का वह महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जिसमें एक साथ लाखों लोग अपने–अपने ठिकानों से उखड़े थे।''[1]

**मियाँ नसीरुद्दीन** - हशमत ने मियाँ नसीरुद्दीन की छप्पन किस्म की रोटियाँ बनाने के हूनर का वर्णन किया है। जब हशमत ने पूछा कि किस्म–किस्म की रोटियाँ बनाने का इल्म कहाँ से पाया तो मियाँ नसीरुद्दीन ने आँखें तरेर कर कहा, –''हम घर से न निकले कि कोई पेशा अख्तियार करेंगे। जो बाप–दादा का हुनर था वही उनसे पाया और वालिद मरहूम के उठ जाने पर आ बैठे उन्हीं के ठीये पर।''[2]

**कृष्ण बलदेव वैद** - कृष्ण बलदेव वैद से हशमत की अपने ही घर में मुलाकात होती है। उसी का चित्रण इसमें किया गया है। वैद का लेखन क्रान्तिकारी है। हशमत के अनुसार – ''वैद का लेखन बुनियादी तौर पर उस 'हाई इन्टेन्सिटी' की अभिव्यक्ति है जो दिमाग से दिल का और दिल से दिमाग का 'नोटेशन' कर डालने की सामर्थ्य रखता है।''[3]

**सरदार जग्गासिंह** - सरदार जग्गासिंह एक टैक्सी ड्राइवर है। हशमत ने उस टैक्सी ड्राइवर का इन्टरव्यू लिया है। उसी को ही इसमें चित्रित किया है।

**शीला सन्धू** - शीला सन्धू में हशमत ने एक ऐसी दोस्त से मुलाकात करवायी है जो न लेखक है, न नाटककार, न कवि, न आलोचक बल्कि एक प्रकाशक है। प्रकाशक न लेखकों का दोस्त होता है न दुश्मन। ''दोस्ती और दुश्मनी की इन्ही बंदिशों में उलझा यह रिश्ता अजीबो–गरीब ढंग से अपने–अपने मतलबों को सहेजता है, समेटता है और उतराव–चढ़ावों

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0 – 28–29

[2] वही – वही पृ0 –33

[3] वही – वही पृ0 –56

के बाद कहीं–न–कहीं जाकर अटक जाता है।''[1] बीच में शीला के पति हरदेव साहिब से भी मिलाया गया है।

**युवराज सिंह** - युवराज सिंह एक वेटर है। वेटर के भेष में बहुत कुछ है। ''साहिब अपने तरीके से अपनी काबलियत के मुताबिक जितना कुछ कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। चाहता हूँ – जितना सोचता हूँ, कम–से–कम उससे आधे को अंजाम दे सकूँ।''[2] युवराज सिंह ज़मींदार परिवार से सम्बन्ध रखता है जो ज़िन्दगी में कुछ बड़ा बनना चाहता है।

**अमजद भट्टी** - अमजद भट्टी से उनकी मुलाकात अमृता प्रीतम के घर होती है उसी का वर्णन किया है। अमजद साहिब पंजदरिया के एडीटर हैं। इस मुलाकात में अपने वतन को याद किया है। ''अच्छा बादशाहों जाओ अपने वतन को आबाद रखो। याद रह जाय तो हमारा सलाम कह देना..... कभी हम भी वतनी थे उसी वतन के ..... ।''[3]

**दावत में शिरकत** - एक शाम हशमत 'दावत में शिरकत' करने जा पहुँचे जहाँ राजधानी के मशहूर, कम मशहूर और ज्यादा मशहूर लेखक एक साथ लॉन में उपस्थित थे। दावत में शिरकत होकर हशमत ने सभी से मुलाकात का मजा लिया।

**महेन्द्र भल्ला** - महेन्द्र भल्ला 'दूसरी तरफ' के मशहूर लेखक हैं। वे कई कामयाब, अच्छी और चौंकाने वाली कहानियाँ लिख चुके हैं। वे हिन्दुस्तानी प्रवासी हैं और अपने से भी पराये हो चुके लेखक हैं। इंग्लैड़ से लौटने के बाद महेन्द्र भल्ला ने अपना नया उपन्यास 'दूसरी तरफ' के नाम से लिखा है। इनकी पहली चर्चित किताब 'एक पति के नोट्स' है। हशमत विदेश के

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0– 65–66

[2] वही – वही पृ0– 86

[3] वही – वही पृ0– 99

बारे में पूछते हैं तो महेन्द्र भल्ला हशमत को बताते हैं – "जिनकी जमीन में, धरती में, इतनी हरियाली है दोस्त वे लोग दिल से इतने क्यों सूखे हैं? ..... दोस्त, गैर मुल्क में किसी भी प्रवासी के हारने के, हार जाने के कोई अर्थ नहीं होते। वह वहाँ जीत सकता ही नहीं।"[1]

**रतीकान्त झा** - श्री रतीकान्त झा मैथिल ब्राह्मण हैं। यह उत्तर बिहार के जोगियार के रहने वाले हैं। हशमत की मुलाकात एक लायब्रेयरी के स्टैक रूम में होती है। हशमत को पूछने पर पता चलता है कि उत्तर बिहार से नौकरी के लिए यहाँ आए हुए हैं। वह अपने साथ गाँव की खास किस्म की सादगी व्यवहार में अपनापन भी साथ संजो लाए हैं।

**ख्वाब भी देखा तो ऐसा** - एक दिन दिल्ली महानगर में बिजली बंद हो गयी। लेकिन घंटो बाद बिजली के आने पर हशमत मियाँ ने किताब बंद कर दी और पंखे के नीचे ठण्डी हवा में सो गए। सोते ही ख्वाब देखा। ख्वाब में देखते हैं कि डी0 टी0 सी0 की बसों की सफाई, बसों में पंखे, न धूल आदि दिखती है। कण्डक्टर भी बड़ी शाइस्तगी से बात करते हैं। लेकिन जब यथार्थ में देखते हैं तो बसों में वही खींच–मींच हाथापाई, जेबों की कटाई, धूल और गन्दगी पाते हैं।

**एक शाम** - 14 जून 1975 शीला और भीष्म साहनी के घर साहित्य गोष्ठी होती है। उसमें मुअज्जिज मेहमान जनाब पी0 ए0 बारान्निकोव थे। मौजूद दोस्त श्री और श्रीमती श्रीकान्त वर्मा, श्री और श्रीमती राजेन्द्र यादव, श्री और श्रीमती अजितकुमार, श्री निर्मल वर्मा, श्रीमती उषा प्रियम्वदा, श्रीमती मीरा कालिया, श्री रोमी खोसला, श्रीमती कल्पना खोसला उन दोनों के साहबजादे मार्तण्ड बहादुर और मार्तण्ड साहिब और वरुण साहनी। उस गोष्ठी में होने वाली बातचीत का ब्यौरा हशमत ने प्रस्तुत किया है।

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0– 120–121

**इन्कलाब ख्वाब नहीं** - हशमत ने उस ख्वाब का वर्णन किया है जो गाँव से शुरू होता है। हशमत दिल्ली के देहात की फोटो उतारने के लिए एक गाँव जाते हैं। वहाँ देखते हैं कि हिन्दुस्तान का देहात सचमुच ही तरक्की कर रहा है। जहाँ अब वीरवाणी ट्रैक्टर चलाती है। गाँव में घूम कर हशमत ने लोकतन्त्र का नया रूप देखा। "कौन कहता है अपने देश में लोकतन्त्र कामयाब नहीं हुआ ? लोकतन्त्र की धुरी तो पंचायत है पंचायत।"[1] पंचायत के जरिए गाँव का विकास होता है।

**समाजवादी किट्टी-पार्टी** - समाजवादी किट्टी–पार्टी का वर्णन किया गया है। यह पार्टी हिन्दी फिल्म की रिहर्सल के समान थी। यह पार्टी उन औरतों द्वारा की गई है जो आज की तरक्की पसन्द औरतों में आती हैं। पार्टी में वह किस तरह सज–धज कर आती हैं और कैसी–कैसी बातें करती हैं।

**खान गुलाम अहमद** - खान गुलाम अहमद शिमला के बस अड्डे पर सामान ढोने वाला एक कुली है। 'हशमत' जब दिल्ली से शिमला आते हैं तो उनकी मेजबानी के लिए आए हुए के साथ खान भी सामान उठाने के लिए आता है। खान पैसा कमाने के लिए अपने वतन से इतनी दूर आया है। खान दिल के बड़े और तबीयत के साफ होते हैं। उसके घर में सब कुछ है परन्तु परदेश में वह कुली है।

**नितिन सेठी** - नितिन सेठी से हशमत की मुलाकात स्वर्गीय बलराज साहनी के घर पर उनकी जन्मतिथि पर जुटी उनके दोस्तों की भीड़ में होती है। नितिन सेठी लम्बे अरसे से रंगमंच से जुड़े हैं। मगर वे मस्तमौला नहीं हैं। इसमें नितिन द्वारा खेले नाटक और अभिनय का जिक्र किया है। साथ ही हशमत ने उनके दोस्त सत्ती साहब का भी जिक्र किया है।

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ० –150

**गोबिन्द मिश्र** - हशमत की मुलाकात गोबिन्द मिश्र से हुई। गोबिन्द मिश्र अपनी नस्ल के विरुद्ध हैं और अपनी नस्ल के साथ भी हैं। गोबिन्द मिश्र लिखित रचनाओं के कुछ अंशों को उभारा है।

**जोशी मनोहर श्याम** - हशमत ने जोशी मनोहर श्याम के उपन्यास 'कुरु कुरु स्वाहा' का उल्लेख किया है। यह उपन्यास एक पूरी पीढ़ी की मानसिकता से गुँथा उसके खिचड़ी संस्कारों का इतिहास भी है। मानसिक षड़यन्त्र के पूरे पचड़े को व्यंग्य भाव से उभारा है।

**एक ज़िन्दा ज़ालिम चंगा ए** - इसमें हशमत की मुलाकात नागार्जुन से होती है। नागार्जुन संस्कृत, मैथिली, बंगला और हिन्दी भाषा के विद्वान हैं। हशमत ने उनके साहित्य को उभारा है। नागार्जुन एक घुमक्कड़ किस्म के इन्सान हैं। नागार्जुन ने हशमत को कुछ अपने यात्रा प्रसंग भी सुनाये हैं। श्रीलंका प्रसंग के दौरान उन्होंने बौद्ध धर्म से सम्बन्धित भी सुनाया है। नागार्जुन की कविता का संसार सर्वहारा जनता का संसार है। नागार्जुन जनता के कवि हैं।

**मुलाकात हशमत से सोबती की** - हशमत ने स्वयं से मुलाकात की है। इसमें सोबती जी की ज़िन्दगी की झलक दिखाई देती है, –"मेरे जैसी आँख रखनेवाला आदमी ही पहचान पाता कि मैं वैदिक ऋचाओं की रोहिणी नहीं हूँ – मैं तो चनाब के पानी और मिट्टी से बनी हाड़–मांस की लड़की हूँ। उसकी रेत पर खेली हूँ। उसकी लहरों में नहायी हूँ। तैरी हूँ। स्वभाव में वही रवानी है। तासीर में वही अनोखा पानी है। सच तो यह है, सिर्फ चनाब ही चनाब का सानी है।"[1] हशमत अपने को ज़िन्दादिल समझती है। वह गम की लकीरे अपनी कलम से नहीं खींचते हैं। इसमें पंजाबी परिवार, वातावरण का भी उल्लेख किया है। कृष्णा सोबती किसी बाहरी दबाब या प्रेरणा से नहीं लिखती। उसी वक्त लिखती हैं जब लिखने के सिवाय कोई

---

[1] कृष्णा सोबती – हम हशमत, पृ0– 255

चारा नहीं रह जाता है। अपने अन्दर–बाहर, आगे–पीछे घटित होने वाले लम्हों को भी कागज पर उतारती जाती हैं। इसमें उन्होंने अपनी कृतियों को भी उभारा है।

1.2.4 **विविधा**

'सोबती एक सोहबत' नाम से लिखी यह विविधा 1989 में प्रकाशित उनका महत्वपूर्ण संग्रह है। "यह कृति उनके बहुचर्चित कथा–साहित्य, संस्मरणों, रेखाचित्रों, साक्षात्कारों और कविताओं से एक चयन है। उनके कुछ विचारोत्तेजक निबंधों को भी इसमें रखा गया है।"[1]

**उपन्यास अंश** - इसमें सोबती जी ने 'ज़िन्दगीनामा–2 : कुछ अप्रकाशित अंश' के द्वारा 'दिलो–दानिश' उपन्यास के कुछ भाग को चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार', 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'ज़िन्दगीनामा–1' आदि उपन्यासों के कुछ अंशों को उभारा है।

**कहानियाँ** - इस शीर्षक के माध्यम से उन्होंने 'गुलाबजल गँडेरियाँ', 'भोले बादशाह', 'टीलो ही टीलो', 'दादी अम्मा', 'बादलों के घेरे' आदि कहानियों को चित्रांकित किया है।

**हम हशमत** - इसमें इन्होंने हम हशमत से चुने हुए कुछ अंश और इसके अतिरिक्त नए अंशों को दर्शाया है। नए अंश निम्न हैं।

**दावत में शिरकत** - हशमत एक शाम राजधानी के लेखकों के साथ एक लॉन में दावत में शिरकत करने जा पहुँचे। "लिबास अलग, चेहरे अलग। मिजाज अलग। अंदाज़ अलग। हाँ, एक बात जो करीब–करीब सबमें एक जैसी थी – वह यह कि हर लेखक दूसरे लेखक द्वारा

---

[1] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, पृ0 – आवरण पृष्ठ से

पहचान लिए जाने की कोशिश में, खाने–पीने में कुछ भोलेपन से मसरूफ था कि देखनेवालों को इस सादगी पर न हँसी आए न रोना। सिर्फ हैरत ही हो ! हशमत इस मसले पर गौर करने लगे तो खुद–ब–खुद राज़ खुलते चले गए।''[1] उस दावत में आए सभी लेखकों का परिचय हशमत ने करवाया है।

**बावरा अहेरी** - इसमें हशमत ने अज्ञेय जी और उनकी कविताओं के कुछ अंशों के बारे में बताया है। ''अज्ञेय ने अपने इर्द–गिर्द कभी कोई भीड़ इकट्ठा न की थी। वह न भीड़ की पौद थे।..... उनके यहाँ साधारण कुछ भी नहीं था। उनके शब्दों के मुखड़े म्यूजियम में की प्रस्तुति का उगार लगते रहे।..... दूसरों से अलग। दूसरों से दूर।''[2]

**मगर हूँ...** - इसमें श्रीकान्त जी की कविताओं 'मगध' को उभारा है। श्रीकान्त एक कवि--राजनीतिज्ञ हैं। ''मगध' की कविताएँ अपनी वैचारिक प्रौढ़ता में शब्दों के संतुलन और मँजाव में एक ऐसी काव्य--भाषा प्रस्तुत करती हैं जो आज के मूल्य–संकट को तरंगित कर सकने में समर्थ हैं।''[3]

**सत्येन + मंजूर** - सत्येन कुमार और मंजूर से हशमत की भेट भोपाल ताल में होती है। उसी का वर्णन इसमें किया हुआ है।

**क्योंकि मंटो जिंदा है** - इसमें लेखक के 'मंटोनामा' का उल्लेख किया है। ''मंटो के लेखन से साक्षात्कार करना एक बालिग लेखक की सोहबत में वक्त गुजारना है। यह सिर्फ मंटो की शैली और शिल्प का ही चमत्कार नहीं, यह जादू मंटो की आँख का है।..... जोड़ बंद की

---

[1] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, पृ0– 183

[2] वही – वही पृ0– 265–266

[3] वही – वही पृ0 –271–272

पुख्तगी--चुस्ती से पेश करने की दो टूक अदा--कथ्य में तल्खी और तराश और मासूम लगने वाले तिरछे पैंतरे से इंसान के दु:ख--दर्द ग़म मजबूरियों को फरोलकर एक नई पहचान सामने रख देने की सामर्थ्य भी।"[1]

**हमेशा सही-सलामत हैं बेदी** - इसमें बेदी जी और उनकी कृतियों का उल्लेख किया है। 'सिर्फ एक सिगरेट', 'एक चादर मैली सी', के कुछ अंशों को चित्रित किया है। नारी हो या पुरुष वह अपने पात्रों को बड़ी बखूबी उभारते हैं। "वैष्णों देवी की छाँह में बसे गाँव कोटला को पन्नों पर उगाकर रानो जैसी बेटियों को पहचान देकर जो कलम उन्हें भीड़ में खड़ा कर दे – उसी का लेखक बेदी कहलाता है।"[2]

**दिल्ली : नई–पुरानी** - इसमें हशमत ने नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली का चित्र प्रस्तुत किया है कि पहले दिल्ली कैसी थी। अंग्रज़ों और मुगलों का राज था और अब "गाँव पालम की क्या छटा उभरी ! जो एक छोटा गाँव था, आज जहान--भर की दूरियों को समेटे हुए दिल्ली का हवाई अड्डा है।"[3] अब दिल्ली में पहले से ज्यादा फर्क आ गया है लेकिन –"कुछ बात थी साहिब, जो पुरानी दिल्ली के पास है, वह नई दिल्ली के पास कहाँ। जो नई के पास है वह पुरानी दिल्ली की तबीयतदारी से दूर ही दूर।"[4] इस तरह नई–पुरानी दिल्ली को दर्शाया है।

**कविताएँ** - इसमें 'प्यारे खास' और 'गलबँहियों–सी उमड़ती' नामक कविताओं को उभारा गया है।

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| [1] कृष्णा सोबती | – | सोबती एक सोहबत, | पृ0 –314 |
| [2] वही | – | वही | पृ0– 325 |
| [3] वही | – | वही | पृ0– 327 |
| [4] वही | – | वही | पृ0 –340 |

**मैं और मेरा समय** - इस शीर्षक के माध्यम से उन्होंने 'ज़िन्दगीनामा', 'मित्रों मरजानी', 'सूरजमुखी अँधेरे के' और अपनी रचना–प्रक्रिया के बारे में बताया है।

कृष्णा सोबती का कहना है कि – "मैं वही हूँ जो आप हैं। मुझमें ऐसा कुछ नहीं जो आप में न हो। ऐसा भी कुछ नहीं जो एक रत्ती – भर ज्यादा होने से किसी को विशिष्ट बना देता है। मिट्टी के साँचों में अक्सर एक सादा–सी बराबरी होती है।..... जबान अलग हो, कारोबार और पेशे अलग हों – तो भी कहीं एक समानता इंसान को इंसान की बड़ी बिरादरी से जोड़े रखती है।"[1] वह स्वयं को आम आदमी की तरह ही मानती हैं औरों से भिन्न नहीं। वह अपने बचपन के बारे में बताती हैं कि – "घर के खुले लचकीले अनुशासन ने जहाँ हमें खुलने पनपने का मौका दिया, वहाँ इसकी कड़ी व्यवस्था ने हमारे चुनावों को भी तय किया। उन दिनों हमारी खरीद नंबर एक थी किताबें और नंबर दो स्टेशनरी।..... हमारी पसंद को मोड़ देनेवाली थीं रात के खाने के बाद वाली बैठकें, जिसमें हमें एक से एक किताबें पढ़कर सुनाई जातीं। यही हमारा साहित्य से पहला परिचय था। वह गहरा था और खरा था।"[2]

सोबती जी का कहना है कि रात को 9 बजे कमरे की बत्ती बुझा दी जाती थी और हम इन्तजार करते थे कि पिता जी गहरी नींद में कब सोते हैं और रात के अँधेरे में ही बड़ी दुनिया हमारे दिमागों में शोर मचाने लगी।

कृष्णा सोबती का मानना है कि ऐसी कहानियाँ, उपन्यास कभी नहीं लिख सकती, जिसका कथानक लिखने से पहले मालूम हो क्योंकि खोज करने, संघर्ष करने की गरमी मर जाती है। लेखन को वह जोखिम भरा मानती हैं।

सोबती जी ने नैतिक मूल्यों के विघटन को भी दर्शाया है –"आज हमारे जीवन में – भारतीय सोच में जो अदल–बदल और परिवर्तन हो रहे हैं हमारा साहित्य उन्हें चौकन्नेपन से अंकित करता रहा है। इन परिवर्तनों का बाहरी खोल हमारे क्रिया–कलापों में लक्षित होता है। परिवर्तन जब भी होते हैं अचानक नहीं होते। वे इतनी खामोशी से भी नहीं होते कि उनके

---

[1] कृष्णा सोबती — सोबती एक सोहबत, पृ0– 394

[2] वही — वही पृ0–406

बदलाव–टकराव आप एक साथ सतह पर और सतह के नीचे महसूस न कर सकें।''[1] साहित्य में सामाजिक–राजनीतिक, जुड़ने–भिड़ने सभी स्थितियों को अंकित किया जाता है। इन मूल्यों का विघटन वैज्ञानिक और औद्योगिक अर्थव्यवस्था के कारण हुआ है।

सोबती जी ने ज़िन्दगीनामा और उसकी भाषा के बारे में बताया है। ''बरसों बाद उसी टुकड़े को हमसे अलग हो जाना था और पलटकर ज़िन्दगीनामा बन जाना था। मेरे निकट ज़िन्दगीनामा का मौसम लेखन के दूसरे सब मौसमों से लम्बा था।''[2] ज़िन्दगीनामा उनके अपने वतन के लगाव के अहसासों की एक व्यापक जबान है।

ज़िन्दगीनामा में सोबती जी ने ज़िन्दगीनामा को लिखने की प्रेरणा को स्पष्ट किया है — ''वतन की गंध। वतन की माटी। वतन का पानी।..... वही वतन इतिहास के किसी जालिम मोड़ पर वतनवालों से छूट भी जाते हैं। फिर नया सफर शुरु होता है। नई पौद। नई जड़े। नए रुक्ख। ज़िदा रुक्ख।''[3] साथ ही भाषा पर प्रकाश डाला है –''ज़िन्दगीनामा की जमीन को समेटने के लिए बोलियों के नजदीक जाना जरुरी था। लोक भाषाएँ, बोलियाँ अपनी ताकत धरती से सोखती हैं और अपने ठेठ पुख्तापन से जीवन का सामना करती हैं। लोकमानस को अपने सोंधे साँवलेपन से सींचती रहती हैं और साहित्य का अंग बनाकर रहती हैं।''[4] लोक भाषा संस्कार को भाषा में बरकरार रखा है। उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं की भी चर्चा की है।

'मित्रो मरजानी' लिखने से पहले कुछ मालूम नहीं था के बारे में बताया है– ''वह किस तस्वीर का नैगेटिव थी या उस नैगेटिव से कौन–सी तस्वीर उभरेगी, तब तक कुछ मालूम नहीं था। डूँगर के पास, सिर पर बोझा उठाए वह जीती–जागती काया हरियाली क्यारी–सी दीखी। आँखों में ललक, आँचल तले उभार। लहँगे और ओढ़नी में मढ़ा हुआ गेहुँआ

---

[1] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, पृ0– 402

[2] वही – वही पृ0– 409

[3] वही – वही पृ0 –373

[4] वही – वही पृ0 – 376

गदराया बदन। हाड़–मांस की अनोखी देह रूपहले पानी में कसी हुई।..... ठेकेदार को पास आते देखा तो उठाकर कांकरी मार दी .... इधर तो देखना मत ठेकेदार जी, लहंगडू की मांद में अट गए तो गए काम से।"[1] मित्रो ने पुरानी नैतिकता के छद्म को उजागर किया है और औरत होने के अधिकार को, मर्यादा को जताया है।

इस प्रकार सोबती जी का कृतित्व अधिक नहीं है किन्तु कृष्णा सोबती ने जो लिखा है वह हिन्दी साहित्य जगत में प्रख्यात कर देने में काफी है क्योंकि वह कम लिखना ही अच्छा लेखन मानती हैं। सोबती जी ने अपनी हर रचना को तन्मयता और आत्मीयता के साथ लिखा है। कृष्णा जी ने लोकापवाद की चिन्ता किए बिना ही समाज के यथार्थ को अपने कथा–साहित्य का विषय बनाया है। कृष्णा सोबती ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने परिमाण में कम लिखा है, किन्तु प्रत्येक शब्द अनुभूति की प्रामाणिकता से सम्पन्न है।

---

[1] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, पृ0 –386

# द्वितीय अध्याय : चेतना : सामान्य परिचय

सामान्य रूप से चेतना शब्द को 'बोध' या 'चेत्य' के समानार्थक शब्द के रूप में ग्रहण किया गया है। चेतना मानव बुद्धि में प्रस्फुटित होती है, अतः इसका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से है। मानव एक चेतन प्राणी है। इसलिए वह अपने मस्तिष्क द्वारा हमेशा ही कुछ न कुछ सोचता अथवा चिन्तन–मनन करता है, इसी चिन्तन मनन के अन्तर्गत सैकड़ों विचार उसके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध कर लुप्त हो जाते हैं। उनमें से कुछ एक विचार जो अत्यधिक प्रभावशाली होते हैं, अपनी गहरी छाप मस्तिष्क पर हमेशा के लिए छोड़ जाते हैं। यह विचार अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जब हम किसी अच्छे विचार को व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित करते हैं, जिसमें हमें मानसिक सन्तुष्टि मिलती है। परन्तु जब हम किसी बुरे विचार को कार्यरूप देने लगते हैं तभी मस्तिष्क में ग्रहण और त्याग का संघर्ष आरम्भ होता है। इस संघर्ष के पीछे जो तत्त्व कार्य करता है वही चेतना है। चेतना के द्वारा ही मनुष्य अपना अच्छा या बुरा समझ सकता है। चेतना के द्वारा ही मनुष्य पशुओं से भिन्न हो जाता है। पशु जैसा चाहते हैं, वैसा ही करते हैं, उन्हें परिणाम की चिन्ता नहीं होती। "पशुओं के जीवन में इस प्रकार नियन्त्रण नहीं रहता, अतएव जैसा वे चाहते हैं वैसा करते हैं। मनुष्य चेतना युक्त प्राणी है, अतएव कोई भी क्रिया करने से पहले वह उसके परिणाम के बारे में भली प्रकार सोच लेता है।"[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि भले बुरे की पहचान कराने वाला तत्त्व ही 'चेतना' है।

चेतना वस्तुतः विविध इन्द्रियों को प्रभावित करके एक निश्चित प्रकार की चितवृत्ति उत्पन्न करती है। इसे मनुष्य में निहित वस्तुगत यथार्थ का सर्वोत्कृष्ट प्रतिरूप माना जाता है। यह उन मानसिक क्रियाओं का समग्र स्वरूप है जो वस्तुगत विश्व के साथ अपने को सक्रिय रूप में समझने में सहायक होती है। यथार्थ में चेतना अथवा विचार प्रधान चिन्तन को मानस की आन्तरिक गतिशीलता को समझने और निरीक्षण करने की क्रिया माना जा सकता

---

[1] रामप्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्वकोशः भाग चार, पृ0 – 282

है। इसी के माध्यम से व्यक्ति निरीक्षण, चिन्तन, शंका, तर्क और इच्छा से सम्बद्ध मानसिक स्वरूपों से परिचित होता है और निश्चित समय में अपने मानस में चलने वाले घात–प्रतिघातों को परख सकता है। चेतना में व्यक्ति के ज्ञात और अज्ञात स्वरूपों का बोध निहित रहता है। चेतना सजीव शक्ति, स्थिति दशा अथवा क्षमता है। उसका स्थान मन या मस्तिष्क। उसका सम्बन्ध है व्यक्ति के अपने विचारों, अनुभूतियों, संकल्पों और प्रभावों से।

कहा जा सकता है कि चेतना मनुष्य की वह शक्ति है जो उसके विषयों एवं व्यवहारों की जानकारी प्रदान करती है, प्रत्येक अच्छे अथवा बुरे कार्य का ज्ञान करवाती है। चेतना शक्ति से ही मनुष्य जीवित रहने में समर्थ है, बिना चेतना के मनुष्य, मनुष्य नहीं रह जाता। चेतना ही मनुष्य को मनुष्य के रूप में अभिव्यक्त करती है।

## 2.1 **चेतना : शाब्दिक अर्थ**

चेतना शब्द बड़ा ही व्यापक है। चेतना शब्द की उत्पत्ति 'चित्त' शब्द से हुई है। इसका अभिप्राय 'चित्त' या 'मन' है। अतः चेतना का शाब्दिक अर्थ चित्त या मन के विशेष भाव या अनुभूति से है। सामान्यतः चेतना का अर्थ होश में आना या बुद्धि विवेक से काम लेना अर्थात विषय व्यवहारों का ज्ञान होना है। बृहत हिन्दी कोश में – "चेतना का अर्थ चैतन्य, ज्ञान, याद, बुद्धि, चेत, जीवनी शक्ति, बुद्धि–विवेक से काम लेना सोचना विचारना आदि दिया गया है।"[1] यही चेतना के पर्यायवाची शब्द के रूप में आत्मा, जीव परमेश्वर, मनुष्य, प्राणी मन, प्राणयुक्त चैतन्य विशिष्ट आदि शब्दों को समाविष्ट किया गया है। "नालन्दा शब्द सागर में इसका अर्थ ज्ञान, स्मृति, सुधि, संज्ञा बताए गए हैं।"[2]

आधुनिक हिन्दी शब्दकोश के अनुसार –"चेतना मन की वह वृत्ति है जो जीव को अंतर और बाह्य का ज्ञान करवाती है, वह स्थिति जो प्राणी के चेतन होने का प्रमाण देती

---

[1] सं0 कालिका प्रसाद – बृहत हिन्दी कोश, पृ0– 439

[2] सं0 नवल जी – नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ0– 388

है।"[1] धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार, "मानस का यह भाग हमारी जागृत अवस्था में क्रियाशील रहता है। यह यथार्थ से संचालित होता है। विचारशील है। विवेक, तर्क, ध्यान, संवेदना तथा प्रयत्न इसकी प्रतिक्रियाएँ हैं।"[2] चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है। चेतना की विशेषताएँ निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह। रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार -- "चेतना प्राणीमात्र में रहने वाला वह तत्त्व है जो उन्हें निर्जीव, जड़ पदार्थों से भिन्न बनाता है, और उन्हें चैत्य सम्पन्न बनाकर जीवधारी सिद्ध करता है। चेतना स्वयं को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।"[3] मानक हिन्दी शब्दकोश के अनुसार – "चेतना मन की वह शक्ति है, जिससे जीव या प्राणी की आन्तरिक अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि और बाह्य घटनाओं, तत्त्वों या बातों का अनुभव होता है।"[4] हमारा मस्तिष्क बाह्य परिस्थितियों से टकराता है और इस टकराहट से जो बोध पैदा होता है वह चेतना है। संस्कृत हिन्दी कोश में इसे, "संज्ञा, ज्ञान, प्रतिबोध, समाज, प्रज्ञा, जीवन, प्राण, सजीवता, बुद्धिमता, विचार–विमर्श"[5] के अर्थ से लिया गया है। अभिनव पर्यायवाची कोश में "चेतना को संज्ञा स्त्रीलिंग बताया गया है। जिसके समानार्थी शब्दों में चेत, होश, ज्ञान, बोध आदि की गणना हुई है और क्रिया के रूप में इसका अर्थ – समझना विचारना, दिया गया है।"[6]

अंग्रेज़ी में चेतना का समानार्थक शब्द 'कान्शसनेस' है जो मस्तिष्क की जागृत अवस्था, किसी वस्तु के विषय में ज्ञान, जानकारी आदि को द्योतित करता है। किसी आन्तरिक मनोविज्ञान अथवा आध्यात्मिक तथ्य के प्रति जागरुक होना अथवा अन्तरात्मा द्वारा किसी

---

[1] गोविन्द चातक – आधुनिक हिन्दी शब्दकोश, पृ0 –321

[2] धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 –289

[3] रामप्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्वकोश : भाग चार, पृ0– 282

[4] रामचन्द्र वर्मा – हिन्दी मानक कोश : भाग दो, पृ0– 274

[5] वामन शिवराम आप्टे – संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ0 –386

[6] सत्यपाल गुप्त व श्यामकपूर – अभिनव पर्यायवाची कोश, पृ0 –28

आन्तरिक ज्ञान की प्राप्ति 'चेतना' है। किसी बाह्य पदार्थ को आन्तरिक रूप में ग्रहण करना चेतना है। विचारों, दृष्टिकोणों अथवा काल विशेष में जागरूक हो उसे चेतना के अन्तर्गत लिया जा सकता है। 'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसज' में "चेतना का अर्थ जागृति या तत्काल बोध होने वाला अनुभव है तथा यह मन की वह दशा है जिसे व्यक्ति बिना किसी विघ्न डालने की प्रक्रिया के अभाव में अनुभव करता है।"[1]

विज्ञान की शब्दावली में चेतना को मानव द्वारा अर्जित अभिगामी आवेगों का तुरन्त या कुछ समय बाद अर्थ लगा लेने वाली शक्ति एवं गुण बतलाया गया है। यह एक अनुभूति है। यही अनुभूति मानव मस्तिष्क में पहुँचाने वाले अभिगामी आवेगों का अर्थ ग्रहण करती है। अर्थ ग्रहण की यह प्रक्रिया भी दो प्रकार की स्वीकार की गई है। कभी–कभी विचार धरोहर के रूप में अपने लिए जगह बना लेते हैं। मस्तिष्क सदैव चिन्तन–मनन करता ही रहता है। मानव मस्तिष्क धीरे–धीरे सारी अनुभूतियों को अर्थ प्रदान करने का कारण बनता है।

मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार 'कान्शसनेस' से तात्पर्य है, –"वह तत्त्व या शक्ति जो अपने से भिन्न अन्य पदार्थों का ज्ञान या संवेदन कराती है।"[2] समाज विज्ञान कोश के अनुसार "कान्शसनेस' वह मानसिक क्षमता है जिसमें व्यक्ति अपनी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के बारे में सजग हो जाता है और अपने आपको एक व्यक्ति के रूप में तथा समूह के सदस्य के रूप में पहचानने लगता है।"[3]

मनोविज्ञान में भी चेतना के बारे में एक विशेष पद्धति द्वारा विचार–विमर्श किया गया है। 'चेतना' को मानव शरीर में एक महत्वपूर्ण तत्त्व की संज्ञा दी गई है। इसी तत्त्व अर्थात चेतना के द्वारा मानव–मस्तिष्क में विविध प्रकार की अनुभूतियाँ जन्म ग्रहण करती हैं। यह चेतना तत्त्व ही मानव को संवेदनशील एवं संवेगशील प्राणी बनाता है। अगर चेतना का तत्त्व

---

[1] आ0 ए0 सेलिगमैन – इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसज – वाल्यूम 19 पृ0– 213

[2] नगेन्द्र – मानविकी पारिभाषिक कोश, पृ0– 55

[3] ओम प्रकाश गावा – समाज विज्ञान कोश, पृ0– 52

मानव मस्तिष्क में विकसित न हुआ होता तो वह कदापि संवेदनशील प्राणी न बन पाता। उसे किसी भी प्रकार की जीवनानुभूति प्राप्त न होती।

चेतना मानव–मस्तिष्क का वह विशिष्ट गुणधर्म है, जिसके द्वारा सभी प्रकार की अनुभूतियाँ एवं ज्ञान होता है चेतना मनुष्य की वह विवेक शक्ति कही जा सकती है जो प्राकृतिक एवं उच्छृंखल मन पर नियन्त्रण रखती है। मनुष्य चेतना की प्रेरणा से ही किसी कार्य को करने में सक्षम होता है। चेतना के द्वारा ही उसे स्वयं को तथा अपने आस–पास के वातावरण एवं परिवेश को समझने का ज्ञान प्राप्त होता है। चेतना शून्यता की अवस्था में मानव कुछ भी करने में असमर्थ होता है।

## 2.2 चेतना : परिकल्पना एवं स्वरूप

सामान्यतः सम्पूर्ण सृष्टि के समस्त पदार्थों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह कह सकते हैं कि सृष्टि के समस्त पदार्थ दो रूपों में व्याप्त हैं, जड़ तथा चेतन। जड़ पदार्थ निर्जीव होते हैं। इनमें किसी भी प्रकार की संवेदना, इच्छा और सजग क्रियाओं का अभाव है। इसके विपरीत इच्छा, संवेदना और सजग–क्रिया सम्पन्न पदार्थ चेतन माना जाता है। मानव मन की प्रमुख विशेषता चेतना है। चेतना के द्वारा हमें सभी प्रकार के भावों का अर्थात क्या अच्छा है, क्या बुरा है, क्या सत् है और क्या असत् है आदि का बोध होता है। इसी गुण के कारण मनुष्य को जीवधारियों से पृथक माना जाता है। मनुष्य कोई कार्य करता है तो कार्य को आरम्भ करने से पहले यह अवश्य सोच लेता है कि उसका दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। अतः मनुष्य को कोई भी कार्य करने या उसे कार्य से विरत करने की प्रेरणा चेतना ही देती है।

चेतना मानव मस्तिष्क में रहने वाला वह तत्त्व है "जिसमें ज्ञान की, भाव की और व्यक्ति अर्थात क्रियाशीलता की अनुभूति है। हम किसी पदार्थ को जानते हैं तो उसके स्वरूप का ज्ञान हमें होता है और उसके प्रति प्रिय अथवा अप्रिय का भाव पैदा होता है और उसके प्रति इच्छा पैदा होती है, जिसके कारण या तो उसे समीप लाते हैं अथवा उसे अपने से

दूर हटाते हैं।[1] अतः चेतना से हमें ज्ञान, भाव और क्रियाशीलता की अनुभूति होती है। मनुष्य को किसी वस्तु या पदार्थ के करीब लाने या दूर ले जाने के पीछे चेतना ही कार्य करती है।

भारतीय अध्यात्म में आत्मा को चेतना का आधार माना गया है। आत्मा चेतना के समस्त घटकों की पृष्ठभूमि में निरन्तर विद्यमान रहती है। यह चेतना को प्रकाशित करती है पर स्वयं कभी चेतना का विषय नहीं बनती है। चेतना का सम्बन्ध चित्त से है। चित्त मन की वह वृत्ति है जो पूर्वकालीन अनुभव या ज्ञात विषय तक ही सीमित रहती है। आरम्भ में मन को आत्मा के अन्तर्गत और फिर उसका समानार्थी मान लिया गया पर बाद में उसे स्वतन्त्र मान लिया गया। इस प्रकार मन और आत्मा को पृथक नहीं, अपितु समान और स्वतन्त्र स्वीकार कर लिया गया। चेतना और मन का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए राधाकृष्णन ने लिखा है कि, "मन चेतना की अपेक्षा क्षेत्र में अधिक विस्तृत होता है। चेतना मानसिक जीव का केवल एक पक्ष है, आत्मिक जीवन की एक अवस्था है न कि स्वयं जगत की एक अवस्था है। यह बिल्कुल तथ्य है जिसे अब पश्चिम विद्वान भी धीरे–धीरे मानने लगे हैं।"[2] आत्मा के परिमाण को लेकर भी पर्याप्त मतभेद हैं। "वेदान्त आत्मा को विभु मानता है। न वह अणु परिमाण है, न मध्यम परिमाण, आत्मा महत्व परिमाण अर्थात आकाश की भान्ति सर्वगत और निरवयव है। अतएव आत्मा व्यापक और नित्य है। वह अखण्ड ज्ञानात्मक सत्ता है।"[3]

चेतना के उद्‌भव एवं स्वरूप पर सर्वप्रथम विचार दार्शनिकों ने किया। मनुष्य एक चेतन प्राणी है इस विषय में सभी दार्शनिक एक मत हैं, परन्तु चेतना के स्वरूप के विषय में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। आदर्शवादी दार्शनिक चेतना का मूल कारण ब्रह्म को मानते हैं जिसका एक अंश मानव शरीर में विद्यमान रहता है। इस अंश को ही आत्मा का नाम दिया गया है। चेतना को दैवी–शक्ति से सम्बद्ध होने के कारण उसे अजर तथा अनश्वर समझा जाने

---

[1] रामप्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्व कोश : भाग चार, पृ0 –283

[2] सर्वपल्लि राधाकृष्णन – भारतीय दर्शन, पृ0– 236

[3] यामिनी गौतम – सावित्री और कामायनी की चेतना का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0–21

लगा। मानव–चेतना ईश्वर से सम्बद्ध होने के कारण उसकी उत्पत्ति दैवी कारणों से मानने के परिणाम स्वरूप इस पर अद्‌भुतता एवं आलौकिकता का पर्दा पड़ गया है। मनुष्य के सब कार्यों का कर्त्ता–धर्त्ता ब्रह्म को स्वीकार करने के कारण व्यक्ति को उसके कार्यों के दायित्व से मुक्त कर दिया। चेतना की आदर्शवादी व्याख्या से मानव–चेतना के अध्ययन का मार्ग अवरुद्ध हो गया और इसे एक आलौकिक अदृश्य एवं रहस्यमय शक्ति स्वीकार कर लिया गया।

भौतिकवादियों ने स्थूल शरीर को प्रमुखता प्रदान करते हुए पदार्थ को अन्तिम सत्य स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार सृष्टि का जन्म पदार्थ से हुआ है और कोई भी ऐसी बाहरी शक्ति नहीं है जो इसका संचालन करती है पदार्थ ही अन्तिम सत्य है। इस प्रकार भौतिकवादियों ने चेतना विषयक धारणा को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया। चेतना को इन्होंने भौतिक आधार पर अवस्थित किया।

जीववैज्ञानिकों ने भी चेतना के स्वरूप के विषय पर अध्ययन किया। जीववैज्ञानिकों के अनुसार चेतना जीव का एक अविभाज्य अंग है। कोई भी जीव चेतना शून्य नहीं है। इन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि चेतना का विकास मस्तिष्क से होता है। मनुष्य अपने मस्तिष्क से सोचता–विचारता है। इसलिए चेतना को अनिवार्य रूप से मस्तिष्क से सम्बद्ध मान लिया। इस प्रकार जीववैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि चेतना का सम्बन्ध स्नायुतन्त्र से है। जिन जीवों में मस्तिष्क का विकास नहीं होता उनमें भी स्नायुतन्त्र क्रियाशील रहते हैं। इस प्रकार जीववैज्ञानिकों ने चेतना को शुद्ध शारीरिक उत्पादन या शारीरिक अवयवों की उपज स्वीकार कर लिया।

मनोविज्ञान में भी चेतना के सम्बन्ध में व्यापक विचार हुआ है। मनोविज्ञान के एक सम्प्रदाय व्यवहारवाद के अनुसार "चेतना एक कल्पना है इसके अस्तित्व को किसी भी वैज्ञानिक प्रमाण से प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। वे मानते हैं कि मानसिक क्रियाएँ चेतना, आत्मा, मन आदि केवल शब्द हैं और इनका कोई अस्तित्व नहीं। व्यवहारवादियों का निश्चित मत है कि मनोविज्ञान ने चेतना को अपना विषय बनाकर भूल की है और वह भूल चेतना और

अन्तर्दर्शन को पूर्णतया बहिष्कृत कर सुधारी जा सकती है।''[1] इसके विपरीत जेम्स चेतना को मनोविज्ञान की वस्तु मानकर मनोविज्ञान पद्धति के रूप में वे अन्तर्दर्शन को स्वीकार करते हैं। चेतना को उन्होंने सतत प्रवाह माना है। ''चेतना का प्रथम गुण उसकी वैयक्तितता है। चेतना में 'स्व' का अनुभव निहित है किन्तु यह 'स्व' अनुभव की इकाई है, उस 'स्व' का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं। चेतना का दूसरा गुण है – परिवर्तनशीलता। चेतना की कोई दशा एक क्षण से अधिक नहीं ठहरती। चेतना का महत्वपूर्ण गुण है उसकी प्रवाहशीलता। अतः चेतना एक सतत प्रवाह है जो कभी नहीं रुकता। चेतना का चौथा गुण है चेतना की वस्तुपरकता। विचार सदा किसी अन्य वस्तु का होता है, चेतना की चेतना नहीं होती। चेतना का अन्तिम गुण है कि चेतना सदा निर्वाचन करती है।''[2] जेम्स ने चेतना को मनोविज्ञान की विषयवस्तु माना है।

फ्रायड तथा उसके सहयोगियों ने चेतना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसे तीन भागों में बांटा है – चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतन। अचेतन को मनुष्य की चेतना का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार किया है। मानस का यह अचेतन भाग चेतन भाग से कहीं अधिक विस्तृत एवं शक्तिशाली होता है। अचेतन में मानव की मूलवृत्तियों और दमित वासनाओं की उपस्थिति रहती है। यह मानव की आदिम वृत्तियों का प्रतीक है। अचेतन में रहने वाली बातें मानव मन में अनेक ग्रन्थियों का निर्माण करती हैं और समय–समय पर चेतना के स्तर पर आकर अपने को व्यक्त करने का प्रयास करती रहती हैं। अचेतन हमारे नित्यप्रति के कार्यों को सबसे अधिक प्रभावित करता है लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से। चेतन मन को भी दो भागों में बाँटा गया है। चेतन मन द्वारा उन सब कार्य–व्यापारों का संचालन होता है जो हम जानबूझकर जागृतावस्था में करते हैं। इस प्रकार चेतना विषयक ज्ञान में वृद्धि हुई। चेतना में ही मनुष्य का अहम् रहता है और तर्क–वितर्क उद्‌भूत विचारों का संगठन होता है। चेतन में हम नित्य प्रति सोचते–समझते तथा दैनिक कार्यों में लिप्त रहते हैं। अर्द्धचेतन में वे भाव तथा विचार रहते हैं जिनके प्रति हम

---

[1] रामशुक्ल पाण्डेय – मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय, पृ0– 67–69

[2] यामिनी गौतम – सावित्री और कामायनी की चेतना का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0– 21

थोड़े बहुत जागरुक या सचेत रहते हैं। अर्थात अर्द्धचेतन में वे बाते रहती हैं जिन्हें हम भुला चुके हैं और यत्न करने पर भी हमें याद नहीं आती हैं लेकिन विशेष प्रक्रिया के द्वारा उन्हें याद कराया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने इड, अहम् तथा इदम् में चलने वाले संघर्ष को मूलतः चेतना का संघर्ष स्वीकार किया है।

एक अन्य मनोविज्ञान शास्त्री टिचनर चेतना की रचना और चेतना के कार्यों के अध्ययन दोनों को ही स्वीकारते हैं। टिचनर ने चेतना के मूल तत्त्वों के रूप में तीन मानसिक क्रियाओं को स्वीकार किया है, ये तीन प्रारम्भिक क्रियाएँ हैं – संवेदना, भाव और प्रतिमा। संवेदना प्रत्यक्षीकरण का मूल तत्त्व है। दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और गति के रूपों में संवेदना पाई जाती है। संवेगों के मूल तत्त्व के रूप में भाव हैं। प्रेम, घृणा, हर्ष, शोक आदि के रूप में प्रतिमाएं पाई जाती हैं। चेतना के कार्यों को जानने के लिए चेतना की रचना को जानना आवश्यक है। इस प्रकार मनोविज्ञान में चेतना का विचार उसके कार्यों के वर्णन और उसके अंगों के विश्लेषण के रूप में ही मुख्यतः हुआ है। मनोविज्ञान की दृष्टि से "चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। चेतना के कारण ही हम देखते, सुनते, समझते और अनेक विषयों पर विचार करते हैं। इसी कारण हमें सुख–दुःख की अनुभूति होती है और हम इसी के कारण अनेक प्रकार के निश्चय तथा अनेक पदार्थों की प्राप्ति के लिए चेष्टा करते हैं।"[1]

मनोवैज्ञानिकों ने चेतना को आनुवंशिक प्रभावों एवं वातावरण से प्राप्त अनुभवों से जोड़ा है। मनोवैज्ञानिक मन तथा मस्तिष्क अर्थात चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतन मन की पारस्परिक क्रिया तथा सामजस्य को सन्तुलित चेतना के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं।

जहाँ तक चेतना के विकास का सम्बन्ध है इनमें मतभेद हैं। आदर्शवादी दैवी शक्ति को सर्वप्रथम मानते हैं जबकि भौतिकवादी चेतना के विकास के लिए वातावरण के अधिक से अधिक प्रभावों को ग्रहण करना आवश्यक मानते हैं। जीव वैज्ञानिकों ने इसके लिए

---

[1] रामप्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्वकोश : भाग चार, पृ0– 282

स्नायुतन्त्र व मस्तिष्क का अधिक से अधिक सहयोग चाहा है जबकि मनोवैज्ञानिकों ने इसके लिए मन मस्तिष्क अर्थात चेतन, अर्द्धचेतन, अचेतन मन की पारस्परिक क्रिया व सामजस्य को आवश्यक माना है।

चेतना का निर्माण कार्य विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से चलता रहता है। इन्द्रियों के माध्यम से असंख्य प्रभाव तथा संवेदनाएँ मानव मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। मानव मस्तिष्क अपनी क्षमता के अनुसार अधिकाधिक प्रभावों तथा संवेदनाओं को ग्रहण करता चलता है। यह सम्भव नहीं होता कि हर प्रभाव ग्रहण किया जा सके। स्वीकृत संवेदनाएँ हमारी चेतना का अंग बन जाती हैं। हर नया अनुभव चेतना के विकास में योगदान देता है। मनुष्य अपने जीवन, रहन–सहन निजी शक्तियों, सम्भावनाओं के सन्दर्भ में चिन्तन–मनन कर समय–समय पर उसे अभिव्यक्त करता आया है। यह उसकी चेतनता का प्रमाण है। चेतना के द्वारा व्यक्ति स्वयं अपने बारे में तथा अपने सामाजिक वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है। चेतना का स्वरूप सदा एक–सा नहीं रहता।

## 2.3 चेतना : परिभाषाएँ

चेतना को सम्यक् रूप से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार, –"चेतना में नाना भांति की मानसिक क्रियाएँ शामिल हैं – जैसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अवधारणा, चिन्तन, अनुभूति और संकल्प। इस तरह यह मन, बुद्धि और अहंकार का संश्लेष है। इसे 'चित्ति' भी कह सकते हैं। चेतना एक चिन्तनात्मक अभिवृद्धि का द्योतक है, जो व्यक्ति को स्वयं के प्रति तथा विभिन्न कोटि की स्पष्टता तथा जटिलता वाले पर्यावरण के प्रति जागरुक करता है।"[1] वैज्ञानिक तथ्यों द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि, "चेतना मानव मस्तिष्क में निवास करने वाला वह तत्त्व है जिसके द्वारा मनुष्य को स्वयं अपने बारे में तथा सारे विश्व के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार चेतना के लिए मस्तिष्क ही नहीं, वस्तुओं, पदार्थों आदि का होना भी जरूरी

---

[1] स0 नामवर सिंह – आलोचना– रमेश कुन्तल मेघ, पृ0– 21

है, जिससे मनुष्य का मस्तिष्क प्रभावित हो सके।"[1] सर विलियम हेमिल्टन ने चेतना को अपरिभाषेय बताते हुए कहा है,– "चेतना की परिभाषा नहीं की जा सकती है। हम केवल यह अनुभव कर सकते हैं कि चेतना क्या है। लेकिन चेतना को समझते हैं, जैसा अनुभव करते हैं, बिना किसी उलझन के दूसरों को नहीं बता सकते हैं।"[2] दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि चेतना का अपने आप में स्वतन्त्र अस्तित्व है एवं यह सहज या प्रत्यक्ष अनुभव है और यह अनुभव या बोध ही मनुष्य का उचित मार्ग दर्शन है। इसके द्वारा ही मनुष्य अपनी नैतिकता को कायम रख सकता है।

चेतना एक ऐसा साधन है जिसके कारण हम देखते सुनते, समझते एवं अनेक विषयों पर चिन्तन करते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा 'चेतना' को जीवन व विश्वबोध का वाचक स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं –"चेतना का प्रवाह जीवन का द्योतक है। अहम् इस चेतना की अभिव्यक्ति है। एक ओर यदि चेतना जीवन के भार को वहन करती है, तो दूसरी ओर वह जीवन प्रसंग में सक्रिय भाग भी लेती है। सक्रिय भाग का आशय निष्क्रियता नहीं है, और न ही उसका यह लक्ष्य है कि चेतना केवल ऊर्ध्वमुखी हो, अन्तर्मुखी न हो। ऊर्ध्वमुखी होने में ही यह निहित है कि जीवन का अस्तित्व अन्तर्मुखी भी है, विकास का क्रम भी अपने वैज्ञानिक अर्थ में यह स्थापित करता है कि विकास किसी एक बिन्दु अथवा किसी एक स्थिति से होगा।"[3] चेतना और मानव–चरित्र में मौलिक सम्बन्ध होता है तथा वह एक विशेष गुण है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण चरित्र संगठित रहता है और जीवित रहने की वास्तविकता अभिव्यक्ति के साथ–साथ जीवन के विभिन्न कार्य सम्पादित होते रहते हैं। रामप्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं कि "किसी मनुष्य की चेतना और चरित्र केवल उसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होते ये बहुत दिनों के सामाजिक प्रक्रम के परिणाम होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम को स्वयं प्रस्तुत करता है। वह विशेष प्रकार के संस्कार पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में पाता है। वह इतिहास को स्वयं में निरूपित करता

---

[1] अर्चना जैन – प्रेमचन्द के साहित्य में सामाजिक चेतना, पृ0 –15–16

[2] रत्नाकर पाण्डेय – हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना, पृ0– 160

[3] लक्ष्मीकान्त वर्मा – नयी कविता के प्रतिमान, पृ0 –224

है, क्योंकि उसने विभिन्न प्रकार की शिक्षा तथा प्रशिक्षण को जीवन में पाया है। इसके अतिरिक्त वह दूसरे लोगों को भी अपने द्वारा निरूपित करता है, क्योंकि उनका प्रभाव उसके जीवन पर उनके उदाहरण, उपदेश तथा अवपीड़न के द्वारा पड़ा है।''[1]

चेतना एक अनवरत प्रक्रिया है जो मनुष्य समाज और समय से कभी अलग नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से –''चेतना मानव–अस्तित्व के सहज रूप–स्वरूप के उद्घाटन में सहायक है उनका उद्देश्य अस्तित्व की धारणा बनाना नहीं, अस्तित्व के सजीव अनुभव को प्रभावपूर्ण ढंग से पकड़ना है।''[2] मुक्तिबोध के अनुसार, –''मानव चेतना वस्तुतः मानव सम्बन्धों से निर्मित तथा उनसे उद्गम चेतना है। ये मानव समाज के विकास के साथ–साथ परिवर्तित होते रहते हैं तथा समाज की विशेष स्थितियों की उनमें विशेषताएँ प्रकट होती रहती हैं। विशेषता – संयुक्त ये मानव–सम्बन्ध मानव–चेतना की मूलभूत नीवें हैं।''[3] मानवीय सम्बन्धों से यहाँ तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों से है।

मनोविज्ञान के अनुसार, – ''चेतना मानव में उपस्थित वह महत्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके कारण उसे विविध प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं। इस तत्त्व का यदि अभाव हो, तो मानव संवेगहीन हो जाए और वह जीवनानुभूतियों से वंचित भी। अनुभूतियों से वंचित मानव, मानव नहीं वह कुछ ओर बन जाएगा। इसे भाव या मानस अनुभव कहा जाता है। सुख–दुःख की अनुभूतियाँ चेतना की ही देन हैं, जिनकी उत्पत्ति बाह्य परिणामहीन होने पर बहुधा हमारी चेष्टित प्रवृत्तियों से सम्बद्ध रहती हैं''[4] मनुष्य की चेतना उसके अवचेतन मन पर अपना नियन्त्रण रखती है। मनुष्य चेतना युक्त प्राणी है वह प्रत्येक क्रिया करने से पूर्व उसके परिणाम के बारे में सोच लेता है। चेतना एक मानसिक स्थिति है उस स्थिति को परिभाषा में अर्थ प्रदान

---

[1] रामप्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्व कोश : भाग चार, पृ0– 182

[2] नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ0– 78

[3] मुक्तिबोध – नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ0– 69

[4] बैजनाथ प्रसाद शुक्ल – भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ0 –7

करना दुष्कर कार्य है। चेतना के विस्तृत अर्थ को मानव अपनी बुद्धि की सचेतना, मानसिक क्रियाओं द्वारा अनुभूति के स्तर पर ग्रहण करता है। लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार –''चेतना भी जीवन से पृथक कोई ईश्वरीय देन नहीं है। वह प्रसंग है, सम्पूर्ण भाव–बोध के क्रमिक विकास में व्याप्त अनुभूति का।''[1] चेतना की परिभाषा देते हुए इन्साइक्लोपीडिया वर्ल्ड यूनिवर्सिटी में लिखा है –''वह शक्ति जिससे मस्तिष्क को अपने आपके अस्तित्व और मानसिक घटना–प्रक्रियाओं और स्थितियों के प्रति बोध होता है। यह चेतना की उस स्थिति को व्यक्त करती है, जिसमें व्यक्ति अपने आपके अस्तित्व और मानसिक घटना प्रक्रियाओं और स्थितियों के प्रति जागरूक रहता है।''[2] चेतना व्यक्ति को उसके अस्तित्व और मानसिक क्रिया–कलापों के प्रति सचेत रखती है, इसी कारण चेतना को जागृत बुद्धि के अर्थ में भी स्वीकारा जा सकता है जो व्यक्ति को उसके कर्म के प्रति विवेक प्रदान करती है। चेतना व्यक्ति को निर्जीव पदार्थों से ही भिन्न नहीं करती, अपितु पशु–पक्षियों से भी पृथक करती है। चेतना की यह ज्ञानात्मक मनोवृत्ति ही व्यक्ति को उसकी पाशविक वृत्तियों के प्रति भी सचेत रखती है। जिसे व्यक्त करते हुए नगेन्द्र लिखते हैं –''बीसवीं शताब्दी में चेतना को मन का छोटा सा द्वीप समझा जाने लगा, जिसमें मन की तुलना एक बड़े सागर से की है, जिसमें चेतना एक छोटा सा द्वीप है। चेतना विचारशील है, तर्कयुक्त है और नीति–अनीति का भाव इसमें सदा रहता है, इसकी इच्छायें, आकांक्षायें अनुभूतियाँ विचारगम्य होती हैं।''[3] नगेन्द्र ने चेतना को सही अर्थों में विश्लेषित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। मन रूपी सागर में स्वार्थान्धता, धनलिप्सा एवं काम वासनाओं के ज्वार भाटे आते रहते हैं जो व्यक्ति चेतना रूपी टापू पर पहुँच जाता है, तामसी वृत्तियों के ज्वारभाटे उसे कदाचित् उद्वेलित नहीं कर पाते, चूँकि चेतना अन्तरात्मा की विवेकपूर्ण वैचारिकी है, जो मनुष्य की इच्छाओं आकांक्षाओं को वैयक्तिकता की परिधि से निकालकर समाज सापेक्ष विचारों से सम्बद्ध करती है। व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन में जिन सच्चाईयों

---

[1] लक्ष्मीकान्त वर्मा – नयी कविता के प्रतिमान, पृ0– 69

[2] इन्साइक्लोपीडिया वर्ल्ड यूनिवर्सिटी भाग चार, पृ0– 1265

[3] नगेन्द्र – मानविकी पारिभाषिक कोश, पृ0– 50

को अनुभव के स्तर पर झेलता है, उन्ही का प्रतिबिम्ब रचनाकार के अन्तर्मन में एक बिम्ब–निर्माण करता है। मानव इतिहास में आदि मानव से लेकर आज के मानव का जो निरन्तर विकासोन्मुखी विकास हुआ है – वह मानव की चेतना के निरन्तर विकसित और परिवर्तित रूपों के कारण ही सम्भव हुआ है। चेतना सम्पन्न प्राणी ने अपनी चिन्तन शक्ति के द्वारा अपने से भिन्न संसार के साथ संघर्ष करते हुए अपने इतिहास को विकसित किया है।

चेतना की परिभाषा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा अपने–अपने अनुरूप अर्थग्रहण में निहित रहती है। यही कारण है कि विभिन्न व्यक्तियों की चेतना का स्वरूप भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है। जो उनके व्यवहार, आचार–विचार कार्यों और बातों से अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर रहता है। अपनी चेतना के निजत्व गुण के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी व्यक्तित्व निर्मित होता है। जो उसे शेष लोगों से पृथक धरातल प्रदान करता है। संक्षेप में यह भी कह सकते हैं कि 'चेतना' वह उपस्थिति है जो मानव को अपने और अपने से भिन्न संसार का अर्थ बोध कराती है, परन्तु चेतना का विकसित स्वरूप एक अर्थ की प्रतीती नहीं करता अपितु प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव व कार्यक्षेत्र के अनुकूल ही उसकी चेतना भिन्न–भिन्न धरातलों पर विकसित होती रहती है। चेतना एक ऐसा साधन है जिसके कारण हम देखते, समझते एवं अनेक विषयों पर चिन्तन करते हैं। चेतना संवेदनात्मक सृजनात्मक शक्ति की भी द्योतक है। चेतनाविहीन सृजन निरर्थक एवं मृतप्रायः है।

## 2.4 कृष्णा सोबती के साहित्य में नारी-चेतना

समाज का विकास सतत प्रक्रिया एवं गतिशीलता का परिणाम होता है। समाज के बदलते हुए मापदण्ड तथा नवीन आदर्श नारी स्थिति के उत्थान पतन के लिए उत्तरदायी रहे हैं। देवेश के अनुसार –"नारी की मर्यादा का भाव आधुनिक काल में ही मुखर हुआ है।"[1] आधुनिक काल से पूर्व की नारी–चेतना का इतिहास अत्यन्त विचित्र रहा है। वैदिक काल में नारी का अपूर्व महत्व था। वैदिक कालीन आर्य समाज में नारी को पुरुषों के सभी

---

[1] देवेश – प्रसाद के नारी चरित्र, पृ0 – 21

अधिकार प्राप्त थे। वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति जितनी अच्छी थी उतनी बाद में कभी नहीं रही। सूत्रकाल और महाकाव्य काल में नारी सम्बन्धी विचारों में बड़ा अन्तर्विरोध मिलता है कहीं उनके उज्जवल पक्ष को उद्‌घाटित किया है तो कहीं असहाय एवं पतनशील रूप में चित्रित किया है। देवेश का मत है–"नारी की सामाजिक स्थिति के ह्रास का प्रथम प्रत्यक्ष चरण सूत्रकाल से प्रारम्भ होता है।"[1] यह क्रम पौराणिक युग में अत्याधिक हो गया। पौराणिक काल के पश्चात् भारतीय सामाजिक जीवन में बहु –विवाह, सती – प्रथा, अशिक्षा आदि कुरीतियों का प्रचलन हो गया था। नारी की स्वतन्त्रता का मार्ग रूक गया। रामायण काल में स्त्रियों का सम्मान होता था। महाभारत काल में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक थी लेकिन धीरे–धीरे ह्रास होना शुरु हो गया था। सामन्तवादी समाज में नारी को अबला बना दिया। मुसलमान शासकों के काल में नारी पुरुष की भोग्या और सम्पत्ति के रूप में सामने आयी। अंग्रेज़ों के आगमन पर नारी की दशा और भी खराब हो गयी। 19वीं शती में समाज सुधारकों के प्रयत्नों से नारी जागरण आन्दोलन प्रारम्भ हुए। सामाजिक प्रथाओं को दूर कर शिक्षा का विकास कर आधुनिक काल में नारी–चेतना का निरन्तर विकास हुआ। इस विकास का स्वरूप कथा–साहित्य में दृष्टिगत होता है।

कृष्णा सोबती का रचनाकाल स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आरम्भ होता है। अब एक ओर अंग्रेज़ों से देश को मुक्ति मिल चुकी थी और दूसरी ओर विभिन्न समाज सुधारकों के रचनात्मक प्रयासों से समाज में परिवर्तन और विकास के चिन्ह भी दिखलाई पड़ने लगे थे। नारी की सामान्य स्थिति में भी पर्याप्त सुधार हो चुके थे। नारी जीवन सम्बन्धी परम्परागत गार्हस्थ्य एवं पतिव्रत के परिवेश में कुण्ठित नारी, उच्च शिक्षा और नारी–स्वातन्त्र्य के प्रभाव में सबला बनकर पुरुष के समक्ष अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा की।

कृष्णा सोबती ने नारी मन के अन्तरंग को पूर्ण ईमानदारी और सच्चाई से एक विशेष खुलेपन के साथ अंकित किया है। अधिकांशतः साहित्य में नारी लेखकों की दृष्टि में शोषण एवं पराधीनता की पात्र रही है। उसे सचेत एवं जाग्रत होने का अवसर कम

---

[1] देवेश – प्रसाद के नारी चरित्र, पृ0– 37

कथा–साहित्य में मिला है। किन्तु कृष्णा सोबती के साहित्य में नारी के जीवन्त रूप दृष्टिगत होते हैं। वास्तव में कृष्णा सोबती की सारी चेतना उनके परिवेश पर केन्द्रित रही है। कहीं नारी के दर्दनाक चित्र हैं, तो कहीं घुट– घुटकर जीवन जीने वाली नारी की दर्दनाक करुण कथा है ओर कहीं प्रगतिशील सचेत नारी के आक्रोश भरे चित्र मिलते हैं।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास का कथाचक्र मित्रो के इर्द–गिर्द घूमता है। मित्रो जिस स्वच्छन्द वातावरण में पली है उसके कारण वह परम्परागत नियमों और रूढ़ियों को स्वीकार नहीं करती है। वह रूढ़ि मुक्त होकर सोचती है – "जिन्द–जान का यह कैसा व्यापार? अपने लड़के बीज डालें तो पुण्य, दूजे डालें तो कुकर्म।"[1] वह न तो घूँघट, न परदा, न नीची नज़र और न ही गुम सुम रहना स्वीकार करती है। सरदारी लाल ने पूछा –"नज़र नीची करती है कि नहीं? मंझली बहू ने ऐसा सब कुछ नहीं किया। बड़ी–बड़ी भूरी आँखों घरवाले का सामना किए रही।"[2] मित्रो नई पीढ़ी की नारी है जो किसी सामाजिक विधान से नहीं डरती है।

'जिगरा की बात' की अमरो एक साहसी महिला है। सिपाही जब उसके बेटे के बारे में पूछने घर आता है तो वह उससे डरती नहीं है। सिपाही पूछता है..... "अरे ओ..... है कोई यहाँ सरदारा.....?" सिपाही को देखते ही हाथ फैलाकर बोली, "अरे कुछ होश कर, मालिक उसकी उम्र बढ़ी करे, अभी तो मेरा बेटा जीता–जागता है और तुम उसी के दरवाजे पर आकर पूछने लगे, है कोई यहाँ सरदारा..... ।"[3] सिपाही को बुढ़िया से ऐसी उम्मीद नहीं थी कि बुढ़िया इतनी तेज होगी। वह बिगड़ कर कहती है – "मुझ पर अपनी थानेदारी न झाड़। मैंने भी दुनिया देखी है। वह दूध पिता बच्चा नहीं जिसे झोली में छिपाकर रक्खूँगी।"[4] सिपाही करीमबक्श हैरानी से अमरो को देखता है कि बुढ़िया कितनी घाघ है नहीं तो औरत सन्तरी के नाम से डर जाती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0– 61
[2] वही – वही पृ0– 11
[3] वही – बादलों के घेरे, पृ0– 110
[4] वही – वही पृ0 –110

सोबती जी विधवा नारी के पुनर्विवाह की पक्षपातिनी रही हैं। वे जानती हैं कि असहाय विधवा समाज की चारदीवारी में घुट–घुटकर दम तोड़ती है। उनकी नारियाँ उससे बचने के लिए पुनर्विवाह करती हैं। 'जिन्दगीनामा' की चाची महरी का पहला पति तीन साल बाद ही मर जाता है। विधवा होने के बाद उसकी गणपतशाह से भेंट हो गयी और स्नेह बन्धन में बंध गए।

बरकती अपने पति की मृत्यु हो जाने के बाद तारेशाह से प्यार करती है। उसका एक बच्चा भी है। बरकती के परिवार वाले इस बात का विरोध करते हैं। लेकिन बरकती भाग कर शादी कर लेती है।

विधवा ब्राह्मणी लखमी नीच जाति के लड़के से प्यार करती है। शाहनी उसे समझाती है कि तू ब्राह्मण है और वह नीच जाति का है। तेरे भाई तुझे जिंदा नहीं छोडेंगे। शाहनी कहती है –"विधर्मी के संग अंग भेट तेरी मति भ्रष्ट हो गई। मल्ला ज़रा सोच के देख। क्या उसके चौके में खाए–चुगलाएगी। अरी, तू जन्म की ब्राह्मणी, मलेच्छ को मुँह मारने दिया!"[1] लखमी अवैध मातृत्व धारण करती है। लखमी कहती है –"ऊपरवाले को हाज़िर–नाज़िर जान के कहती हूँ, वही मेरे तन–मन का साथी है।"[2] लखमी चेतनाशील नारी है। वह जात–पात के बन्धन को नहीं मानती है।

फतेह शेरा से प्रेम करती है। फतेह एक जीवन्त नारी है। फतेह और शेरा को एक दिन शाह आलिंगनबद्ध में देख लेते हैं तो वह डरती नहीं। शेरे से कहती है– "तुम्हे सौंह है अल्लाह पाक की जो तू कौल से मुड़ा। तुम्हें मार डालूँगी और आप दरिया में डूब मरुँगी।"[3] फतेह शेरा से प्रेम विवाह करती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0 –233

[2] वही – वही पृ0– 233

[3] वही – वही पृ0 –196

राबयाँ भी जाग्रत नारी है। राबयाँ बड़े शाह को प्रेम करती है। वह अपने मन की भावना को रोक नहीं पाती है। तो वह इन शब्दों में स्पष्ट कहती है –"शाह साहिब, मैंने आपको दिल में ऐसे धार लिया जैसे भगत मुरीद अपने साईं को धार लेते हैं।"[1]

कृष्णा सोबती की नारी का एक वर्ग शिक्षित और जागरूक है। उन्हें अपने भले बुरे का सम्यक ज्ञान है। इसी कारण अपने व्यक्तिगत जीवन को वे अपनी इच्छानुसार जीना चाहती है। उसमें वह किसी का भी हस्तक्षेप पसन्द नहीं करती है। 'सूरजमुखी अँधेरे के' की रत्ती एक पढ़ी लिखी है। रोहित रत्ती को प्यार करता है और वह उसे पाना चाहता है। लेकिन रत्ती उसके प्यार को अस्वीकार करती है। वह अस्वीकारात्मक विद्रोह रूप में प्रत्येक पुरुष के संसर्ग को नकारती रहती है। पुरुषों के प्रति उसके पास एक जबरदस्त इन्कार है, क्योंकि पुरुष की चाहत में उसे दर्प दिखाई देता है। रत्ती रोहित से प्यार नहीं करती है वह कहती है, –"सिर्फ अपने चाहने से दूसरों को पा नहीं लिया जाता।..... पाने के लिए दोनों को एक दूसरे को चाहना होता है रोहित।"[2] रत्ती के सम्पर्क में जो भी पुरुष आता है उसे वह नकार देती है।

'यारों के यार' की तमन्ना और तमाशा दोनों पढ़ी–लिखी हैं। दोनों ही नौकरी करती हैं। उनमें आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता अपने आप में पैदा होती है। क्योंकि वह अपने पाँव पर खड़ी है। तमाशा बैंक में स्टेनों लगी हुई है। नारी को आत्मनिर्भर होने की क्षमता से समाज में प्रतिष्ठा मिलने लगी है। वह जानती है कि यदि उसे पुरुष की आवश्यकता है तो पुरुष को भी नारी की उतनी ही आवश्यकता है। वह अपने आप को पुरुष से कम नहीं समझती है।

'डार से बिछुड़ी' में पाशो की विधवा माँ मेहर, शेख जाति के पुरुष से प्यार करती है। उसके परिवार वाले क्षत्रिय होने के कारण इसका विरोध करते हैं लेकिन पाशो की माँ स्वेच्छा से शेखजी को पति रूप में स्वीकार कर लेती है। वह घर से भागकर शेखजी की हवेली में चली जाती है। फिर से अपना गृहस्थ जीवन शुरू करती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – जिन्दगीनामा, पृ0 –370

[2] वही – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0 –70

'तिन पहाड़' में जया की सगाई श्री दा से होती है। सगाई के बाद श्री दा विदेश चले जाते हैं। वहाँ उनकी भेंट एडना से होती है और दोनों शादी कर लेते हैं। जब जया को उनकी शादी का पता चलता है तो वह घर छोड़ देती है। वह दार्जिलिंग में आ जाती है। उसकी तपन के साथ मुलाकात होती है। वह तपन के साथ वहाँ घूमती है। श्री दा विदेश से आते हैं तो उन्हें पता चलता है कि वह दार्जिलिंग गयी है तो वह मिलने दार्जिलिंग में आते हैं। श्री दा उसे घर चलने के लिए कहते हैं तो वह मना कर देती है। "श्री अनजाने ही कठोर हो उठे। नितान्त अपरिचित तपन की बाँह पर जया का हाथ सह न सकने से उठ खड़े हुए और कठोरता से बोले–

"इतना अधिकार तो रखता हूँ कि पूछ सकूँ,"

"नहीं श्री दा, नहीं..... ।"[1]

श्री दा के कहने पर भी वह नहीं मानती है और घर जाने के लिए मना कर देती है। जया के साथ तपन को देखकर श्री दा को जलन होती है। वह कहती है, – "श्री दा , आज जो मेरे सबसे अपने हैं, उन्ही का अनादर करेंगे ।"[2] तपन जया को ऐसा बोलते सुन चकित हो जाता है कि वह बार–बार रोने वाली लड़की का ऐसा गर्वीला स्वर, इतनी साहसी।

'ऐ लड़की' में अम्मू एक जागरूक सचेत नारी है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि लड़की के पैदा होने पर जननी प्रसन्न नहीं होती है। लेकिन पुत्र होने पर खुश होती है। अम्मू ऐसी औरत है जो लड़का–लड़की में भेदभाव नहीं समझती है। वह बेटी को अपनी समरूपा समझती है। वह अपने आप को पुरुष से कम नहीं समझती है।

सूसन ऐसी नारी है जो पहले पढ़ लिख कर नौकरी करना चाहती है। उसके बाद शादी करेगी। वह आत्मनिर्भर होना चाहती है क्योंकि आत्म निर्भरता स्वयं में अपने पृथक अस्तित्व का बोध कराती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – तिन पहाड़, पृ0 –119

[2] वही – वही पृ0 –119

'ऐ लड़की' की लड़की भी एक सचेत नारी है। वह किसी के अधीन नहीं रहना चाहती है। स्वाधीन है। शिक्षित है। शिक्षित होने के कारण ही स्वाभिमानी है।

'दिलो–दानिश' की छुन्ना विधवा है। उसके परिवार वाले उस पर तरह–तरह के अंकुश लगाते हैं। लेकिन छुन्ना इन पुराने रीति–रिवाजों को नहीं मानती है। वह सोचती है– "अपने से उम्मीद यही की जाती है कि पूजा–ध्यान में दिल लगाएँ। व्रत करें। तीर्थों को जाएँ। अपने अन्दर–बाहर की तरंगों को शान्त कर भक्ति–भाव से विधवा बन जाएँ। पहनने ओढ़ने की मुमानियत। ..... जो हुआ सो अपने हाथ में न था। सन्यासिन बनकर मथुरा जी में बैठने से रहे।..... हाँ बच्चों का स्कूल खोल ले।"[1] छुन्ना सामाजिक रूढ़ियों एवं समाज के दकियानूसी विचारों को नहीं स्वीकारती है।

महक कृपानारायण की रखैल होने के कारण उनकी सारी पाबन्दियाँ सहती रहती है। एक दिन महक पड़ौसी वकील खान साहब के परिवार के साथ घूमने चली जाती है तो वकील साहिब उस पर शक करते हैं। वकील साहब मासूमा की शादी अपनी मर्जी से तय करते हैं तो महक को लगता है कि उसे किनारे पर छोड़कर बच्चों को वकील ने अपनी तरफ कर लिया है। महक को हर बार नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। उसे हर बार सहन करना पड़ता है। जब पानी सिर से गुजरने लगता है तो महक के भीतर की विद्रोहिणी नारी सिंहनी की भान्ति हुंकार कर उठ खड़ी होती है, –"हमारी माँ के ज़ेवर हमें आज शाम तक मिल जाने चाहिए वकील साहिब।..... कुछ भी हो, ज़ेवर पहले और शादी बाद में।"[2] गहनों को पाकर महक को अपनी जीत दिखाई देती है और उसका खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आता है। वह सोचती है –"आज से पहले तो हम औरत भी नहीं थे। ओढ़नी थे, अंगिया थे, सलवार थे।..... जूती अपनी थी और पाँव किसी को सौंप रखे थे।"[3]

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो– दानिश, पृ0 –56

[2] वही – वही पृ0 –171

[3] वही – वही पृ0– 175

'बदली बरस गयी' में कल्याणी अपनी माँ के साथ आश्रम में रहती है। लेकिन उसे आश्रम में रहना अच्छा नहीं लगता है। वह अपनी माँ से कहती है –"साध्वी माँ, आश्रम में मन नहीं लगता.....।"

"उपवास करो।"

नहीं, साध्वी माँ.....।"[1]

कल्याणी को आश्रम में अच्छा नहीं लगता है और वह आश्रम छोड़कर अपनी गृहस्थी बसाना चाहती है। वह आश्रम छोड़कर आ जाती है।

'न गुल था, न चमन था' की माधुरी, नादिरा दस्तूर 'दो राहें : दो बाँहें' की मीनल, कुन्तल और श्यामली पढ़ी लिखी नारियाँ हैं। इसी कारण वे व्यक्तिगत जीवन को अपनी इच्छानुसार जीना चाहती हैं। वह अपने जीवन में किसी का भी हस्तक्षेप पसन्द नहीं करती हैं।

कृष्णा सोबती का कथा–साहित्य नारी–चेतना का साहित्य है। उन्होंने अपने साहित्य में अधिकतर चेतनशील नारी का चित्रण किया है। उनकी नारियाँ स्वछन्द प्रेम, प्रेम–विवाह, पुनर्विवाह, विवाहित होते हुए भी दूसरे पुरुषों से सम्बन्ध बनाए रखने में उन्मुकता दर्शाती हैं। सोबती जी ने विधवाओं को सम्मान दिया है। समाज के सामने उसे प्रतिष्ठा दी है। जिसके फलस्वरूप पुरातन समाज को करारी चोट देकर नयी सामाजिक आधारशिला रखी है। उनकी विधवाएँ चेतना सम्पन्न हैं। वे नहीं चाहती हैं कि नारी समाज में उपेक्षित और नारकीय जीवन जीने को मजबूर हो। इसलिए पुनर्विवाह को महत्व दिया है। आज नारी प्राचीन की भान्ति त्याग, तप का जीवन व्यतीत न करके व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की ही सर्वाधिक आकांक्षा रखती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 –64–65

170801
C. P. University Library
Shimla

# तृतीय अध्याय : कृष्णा सोबती पूर्व महिला कथाकारों के कथा-साहित्य में नारी-चेतनाः एक विहंगम दृष्टि

प्रत्येक साहित्यिक रचना अपने समय तथा युग की सम्यक् चेतना की संवाहिका होती है। अतः रचना का प्रत्येक घटक अपने समय तथा युग की समसामयिक चेतना का प्राकृतिक अंग होता है। समय तथा समय के साथ–साथ युग जैसे बदलता जाता है वैसे–वैसे चेतना भी अपना स्वरूप बदलती जाती है। साहित्यिक विद्याओं के विकास में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। युग जीवन की नवीन–दृष्टि सदैव अपने समय के चेतना–बोध की निश्चित चौखट को छिन्न–भिन्न करती, अपना मुहावरा खोजती चली जाती है। कहीं–कहीं तो यह प्रक्रिया इतनी तीव्र होती है कि क्षण भर, युग के समस्त चेतना बोध पर ही सन्देह हो जाये। हिन्दी कथा–साहित्य का आज तक का समस्त विकास ही नहीं, अपितु केवल मात्र हिन्दी की महिला कथाकारों की रचनाओं में उत्कीर्ण युगीन–चेतना का विकासात्मक आलेख इस सत्य को स्पष्ट करता है।

साहित्य में नये युग की शुरूआत तब तक नहीं होती, जब तक कि उस युग की चेतना किन्हीं विश्वासों अथवा अविश्वासों में परिणित नहीं होती। जब तक कुछ बने हुए विश्वास चेतना को अनुप्राणित करते हैं तब तक पिछले ह्रासोन्मुख युग के बीतने की अवधि समाप्त नहीं होती। एक तरफ विकासकालीन महिला–लेखिकाओं की रचना–दृष्टि क्षीण पड़ने लगी थी अर्थात अविश्वासों में परिणिति हो रही थी ओर दूसरी तरफ एक समाप्त प्रायः और एक आरम्भ होने, इन दो युगों के बीच संघर्ष काफी मुखर हो उठा है।

कृष्णा सोबती पूर्व महिला कथाकारों के कथा–साहित्य में उद्घाटित 'नारी–चेतना' का स्वरूप तथा स्तर क्या था, कृष्णा सोबती द्वारा उद्घाटित नारी–चेतना अपने पूर्ववर्ती महिला–कथाकारों से किस स्तर पर जुड़ी हुई है और किस प्रकार से भिन्न है। पूर्ववर्ती महिला कथाकारों की उस चेतना–परम्परा को समझे बिना, कृष्णा जी के स्वर को समझ पाना असम्भव होगा।

हिन्दी की उन महिला कथाकारों को क्रमसंगत लिया जा सकता है जिन्होंने नारी चेतना को उजागर किया है। इतिहास क्रम की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरम्भ इ0 स0 1857 की स्वतन्त्रता संग्राम की क्रान्तिकारी घटना से माना जाता है। नारी रचित कथा–साहित्य का इतिहास लगभग छह–सात शताब्दी पुराना है। जिन महिला कथाकारों ने अपनी रचनाधर्मिता के अनुरूप नारी–चेतना का परिष्कार कर उसे निश्चित सीमा तक पहुँचाने में सहयोग दिया उन कथाकारों को सम्मिलित करना युक्ति संगत होगा। इनमें सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, उषादेवी मित्रा, कमला चौधरी, शिवरानी देवी, होमवती देवी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, कमला त्रिवेणीशंकर, तेजरानी पाठक, कंचनलता सब्बरवाल, तारापांडे, रजनी पनिकर मन्नू भण्डारी तथा उषा प्रियंवदा आदि हैं।

किसी महिला–लेखिका का अलगाव अपने सहयात्रियों से उस समय उभर कर ज्यादा मुखर होता है जब वह व्यापक सन्दर्भों में से खास किस्म के सन्दर्भ चुनती है और उन्ही से जूझती है। चुनाव की यह प्रक्रिया उसकी अपनी संवेदनशीलता के कारण सम्पन्न होती है। किन्तु इस जगह वह व्यक्तिगत होती है और चुने हुए सन्दर्भों को रचना के स्तर पर रूपायित करने के बाद रचना का 'वह' समय, समाज एवं युग का सम्वेत तथा सापेक्ष्य स्वरूप 'नारी–चेतना' के नाम से ही अभिहित किया जा सकता है।

हिन्दी की आरम्भिक लेखिकाओं में बंगमहिला ही प्रमुख लेखिका है जिनका नाम हिन्दी–साहित्य में आदर के साथ लिया जाता है। बंग महिला का महत्व इसलिए अधिक है कि उन्होंने अनेक बंगला कहानियों का अनुवाद करने के अतिरिक्त मौलिक कहानियों की रचना की है। उनकी मौलिक कहानियाँ दो हैं– 'दुलाई वाली' तथा 'भाई बहिन'।

"श्रीमती उषा देवी मित्रा ने अपने उपन्यासों के अतिरिक्त शताधिक कहानियों की रचना करके हिन्दी–कथा–साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है।"[1] उषादेवी की रचनाओं में विशेष रूप से नारी–जीवन में प्रेम और विवाह की समस्या का निरूपण हुआ है। स्वयं नारी होने के कारण उन्होंने नारी हृदय का अच्छा अध्ययन किया है। वह नारी होने के

---

[1] उर्मिला गुप्ता – हिन्दी कथा–साहित्य के विकास में महिलाओं का योग, पृ0–154

नाते अनमेल विवाह के फलस्वरूप नारी की यातनाओं को अधिक निकट से जानती हैं और उसकी कामनाओं को पहचानती है। उनके 'नष्ट नीड़' में उन रूढ़ियों का विरोध किया है जो नारी जीवन में बाधक बनकर आती हैं। इन्होंने अनेक कहानियों की रचना की है जिसमें नारी की मूल समस्या पुरुष और नारी के आपसी सम्बन्ध की है। उषादेवी ने अपनी सभी रचनाओं में एकाध ऐसी नारी का चित्रण भी किया है जो वस्तुतः स्त्री–स्वातन्त्र्य की भावना भारतीयता पर आधारित है। इसलिए वे सहज ही मर्यादावादी है। सुनंदा मनीश के घर अपने विचार प्रकट करती हुई कहती है –''हमारी भारतीय सभ्यता का आधार ही व्यक्तिगत स्वाधीनता है। भारत का संदेश है – स्वाधीन रहो।..... मानव मंत्र स्वतन्त्र एवं स्वयं दृष्टा हुआ करता है। मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है – स्वतन्त्रता।''[1] विशेषतः उन्होंने समाज और व्यक्ति की आलोचना के धरातल पर जितनी भी रचनाएँ लिखी हैं, उनमें किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति करवाई है। इनकी प्रेरणा का बिन्दु प्रायः सामयिक समस्याएँ तथा सामयिक स्थितियाँ रही हैं।

हिन्दी कहानी को विकास पथ पर बढ़ाने में सुभद्रा जी का योगदान रहा है। सुभद्रा जी नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पक्षपातिनी थी। उनका सिद्धान्त था कि नारी की अपनी इच्छाएँ आकांक्षाएँ हैं, उनकी पूर्ति का उसे पूर्ण अधिकार है। उनका कथन है –''मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है, फिर चाहे वह स्त्री शरीर के अन्दर निवास करती हो, चाहे पुरूष शरीर के अन्दर। इसी से पुरूष और स्त्री का अपना–अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।''[2] सुभद्रा कुमारी ने 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी', 'सीधे साधे चित्र', कहानी संग्रहों की रचना की है। इनकी कहानियों में प्रायः आदर्शोन्मुख यथार्थ को स्थान मिला है। मानव भावनाओं और सामाजिक रूढ़ियों के मध्य संघर्षमय वातावरण की सृष्टि करते हुए इन्होंने समस्या समाधान की दिशा में स्वस्थ एवं मर्यादापूर्ण संकेत प्रस्तुत किए हैं। इन्होंने परम्परा का बोझ ढ़ोने वाली असहाय, पीड़िता आदर्शपत्नी आदि को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने ऐसी नारियों को उभारा है जो शिक्षित हैं और अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं।

---

[1] उषादेवी मित्रा – नष्ट नीड़, पृ0 – 8

[2] सुभद्रा कुमारी चौहान – उन्मादिनी, पृ0 – निवेदन पृष्ठ से

कमला चौधरी बहुमुखी प्रतिभा–सम्पन्न लेखिका हैं। आधुनिक कथा–साहित्य को विकासोन्मुखी करने में जिन महिलाओं ने योगदान किया है, उनमें उनका विशिष्ट स्थान है। नारी होने के नाते भारतीय नारी के मनोभावों तथा समस्याओं को लेखिका ने समझा और उन्हीं के सजीव एवं यथार्थ चित्र अपनी रचनाओं में अधिकाशतः उतारे हैं। कमला जी ने अपने कथा–साहित्य में वैवाहिक समस्या, पति–पत्नी की अतृप्त प्रेम समस्या को पर्याप्त महत्व दिया है। उनकी रचनाओं में हिन्दू–समाज के कुचक्र में फँसी हुई पतित, दुःखी विधवा की कसक भरी करूण कथा है, दूसरी ओर जागरूक समाज के व्यक्तियों द्वारा पुनर्विवाह करा विधवा समस्या का समाधान सम्मुख रखा है। समाज की रूढ़ियाँ, पति का तिरस्कार तथा अपमान यहाँ तक उसका घर से निकल जाने की धमकी भी साहसी नारी के मार्ग में बाधक नहीं बनती। सम्पूर्ण कठिनाईयों को सहन करती हुई वे अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती हैं। जैसे 'त्याज्या' की सावित्री। पंडित जी से तिरस्कृत सावित्री पति के पैरों पर नहीं पड़ती वरन् विद्रोही स्वर में रमेश से कहती है –''जरा ठहरो, मैं भी चलती हूँ। कुत्तों की भान्ति केवल रोटी के लिए अब मैं इस घर में नहीं रहूँगी। मेरे कारण तुम्हारे माथे पर कलंक तो लग ही गया, सम्भव है, मुझे साथ ले चलने में वह कालिमा कुछ और गहरी हो जाय। जो कुछ भी हो, तुम्हें सहना होगा। किन्तु तुम्हारे साथ रहकर, मैं तुम्हारे घर की शान्ति भंग नहीं करूँगी। मेरे लिए पड़े रहने के स्थान की व्यवस्था कर दो, दूसरों की चाकरी करके पेट पालन कर लूँगी।''[1] मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि एवं मौलिक सूझ–बूझ के बल पर उन्होंने नारी के अन्तर्जगत का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण किया है। स्त्री–चरित्रों, विशेषतः युवतियों के मन की अस्पष्ट अनुभूतियों को उभारने में उन्हें विशेष सफलता मिली है। इनकी कृतियों का मूल उद्देश्य यथार्थ के आधार पर आदर्श की स्थापना है।

आधुनिक हिन्दी कहानी के उन्नायक प्रेमचन्द जी की पत्नी शिवरानी देवी ने भी अनेक कहानियों की रचना करके हिन्दी कथा–साहित्य की समृद्धि में अपना योगदान दिया है। इनके कथा–साहित्य में एक ओर पुरानी रूढ़ियों व परम्पराओं का पालन करने वाली नारी है, दूसरी तरफ सामाजिक, राजनीतिक जागरूकता प्राप्त नारी है। 'सौत' की रूपा, 'आँसू' की राधा आदि नारियाँ पति की उच्छृंखलता तथा पति के अत्याचार से पीड़ित हैं। पति के अनाचार

---

[1] कमला चौधरी – यात्रा, पृ0 – 224

के विरुद्ध विद्रोह करना उनके लिए संभव नहीं है। युगों से त्रस्त भारतीय नारी जब पुरुष की दासता से मुक्त हुई तो उस समाज के प्रति उसके अर्धचेतन मन में घृणा का होना स्वाभाविक था, जिसने युगों से दासी बनाकर शोषण किया है। अतः आधुनिक युग में शिक्षित नारी वैवाहिक संस्था के प्रति विद्रोह के लिए तत्पर हुई। विवाह को उसने पुरुष प्रधान की दासता समझा। 'प्रेम' कहानी की प्रेमा शिक्षित है और आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है। विवाह की बात सुनते ही उसके अहम् को चोट पहुँचती है। वह शादी को पुरुष की दासता समझती है। शिवरानी नारी के अधिकारों की सच्ची समर्थिका रही है। उनके कथा–साहित्य में विद्रोही नारी के दर्शन होते हैं। 'वरयात्रा' की रामेश्वरी उन नारियों का प्रतिनिधित्व करती है जो पति से तिरस्कृत एवं अपमानित होने पर परम्परागत हिन्दू नारी की भान्ति गिड़गिड़ाती नहीं, न अस्तित्वहीन मूक प्राणी की भान्ति समर्पण करती है और न दुःखी एवं निराश हो आत्महत्या करती है वरन् पति की जाती हुई बारात को रोक लेती है और उसे चुनौती के स्वर में कहती है– "तुम विवाह करने नहीं जा सकते। या तो रोक लूँगी या प्राण दे दूँगी।"[1] यद्यपि रामेश्वरी का स्वाभिमानी चरित्र मानवीय भूमि की उपेक्षा करता है लेकिन इसी से उसकी दृढ़ता का परिचय मिलता है। शिक्षित एवं स्वावलम्बी नारी में अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी, पति वरण को अपना अधिकार समझा, मूक पशु के समान अपनी बलि देना उसे स्वीकार नहीं था। शिवरानी जी की कहानियों का केन्द्र बिन्दु नारी है। नारी स्वतन्त्रता, स्वाभिमान की भावना की तीव्रता, नारी शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलनों ने नारी में सामाजिक एवं राजनीतिक जागरुकता भर दी थी। किन्तु शिवरानी जी द्वारा चित्रित नारी पूर्ववर्ती या समकालीन वह भारतीय नारी नहीं है जो पुरुष अत्याचार को मौन भाव से स्वीकार करती हो। बल्कि उचित अवसर पाकर अत्याचार का सक्रिय विरोध करती हुई दिखाई देती है।

हिन्दी की महिला–लेखिकाओं में होमवती देवी का विशिष्ट स्थान है। इनकी रचनाओं में नवीन शिक्षिता नारियाँ आत्मविश्वास, दृढ़ता एवं आत्म–निर्भरता के भावों से पूर्ण दिखाई गई हैं। तो दूसरी ओर आधुनिकता के आडम्बरों से बहुत दूर सीधे–सादे भारतीय

---

[1] शिवरानी देवी – नारी–हृदय, पृ0 – 60

मर्यादाओं को मानने वाली, कर्त्तव्यों की ओर जागरूक देवी–देवता तथा भाग्य पर आस्था रखने वाली हैं। 'त्याग' की विभा देशभक्त राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने वाली नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। लेखिका ने नारी के मनोविज्ञान को समझा और उसका विश्लेषण किया है। नारी के कठोर अभिमान उसकी ममता और उसका आत्मदान सब होमवती जी की कहानियों में मिलता है। इनकी कहानियाँ अत्यन्त प्रभावशाली हैं। होमवती जी एक युग प्रतिनिधित्व करने वाली लेखिका है जिन्होंने अपनी लेखनी नारी वर्ग के उत्थान और स्वस्थ जीवन की कामनाओं के लिए उठाई है।

सुमित्रा कुमारी सिन्हा विकास काल की ख्याति प्राप्त लेखिका है। नारी के कष्टों एवं अन्तर्व्यथा का चित्रण तो समय–समय पर अनेक कथा – लेखिकाओं ने किया है, किन्तु सुमित्रा जी की प्रतिनिधि नारी – पात्राओं की मौलिक विशेषता यह है कि वे अन्याय को मौनभाव से ग्रहण नहीं करती। वे अपने हृदय में अत्याचारी समाज एवं पीड़क पुरूष– वर्ग के विरूद्ध अनेक तर्क –वितर्क एवं आरोपों का पोषण करती हैं और अनेक नारियाँ पुरूषों को सक्रिय प्रत्युत्तर भी देती हैं।'विद्रोहिणी' की सरला एक ओर नारी को मात्र उपभोग्य मानने वाले अपने प्रेमी मदन को बुरी तरह दुत्कार देती है और दूसरी ओर जब उसके पति, उसके और अपने प्रेम के विषय में उससे प्रश्न करते हैं तब वह कह देती है कि, "प्रेम समान स्तर पर ही होता है। पुरूष जब अपने को पूज्य समझता है तो नारी दासी की भाँति उससे केवल श्रद्धा कर सकती है, प्रेम नहीं।"[1] यह निर्विवाद सत्य है कि युगों से अनेक संघर्षों के पश्चात् प्राचीन सामाजिक रूढ़ियों में जकड़ी नारी समानाधिकार प्राप्त कर चुकी है, उसे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। 'सफल नारीत्व' की माला पति के अत्याचारों से मुक्त होने के लिए पति–गृह को त्यागकर आर्थिक आत्म निर्भरता प्राप्त करके ही दम लेती है। पति द्वारा तिरस्कृत होने पर वह रो–रोकर अपने जीवन का अन्त नहीं कर देती अपितु अपने आत्मबल, साहस के कारण अर्थोपार्जन कर स्वयं अपनी जीविका कमाती है। सुमित्राजी ने स्त्री–पुरूषों के मानसिक एवं व्यावहारिक जीवन का यथार्थ चित्रांकन किया है। पुरूष के अन्याय, अत्याचारों, आर्थिक एवं सामाजिक बंधनों से नारी को मुक्ति दिलाना लेखिका का मूल उद्देश्य रहा है। सदियों से

---

[1] सुमित्रा कुमारी सिन्हा – अचल सुहाग, पृ0 – 117

परम्परागत शृंखलाओं में पिसती हुई भारतीय नारी के अंतर में कितना विद्रोह एवं कटुता भरी है। यह सब उन्होंने अनावृत करके दिखा दिया है।

मध्यवर्गीय समाज की अन्तरंग समस्याओं एवं नारी मनोविज्ञान की सफल और सूक्ष्म अभिव्यंजना के दृष्टिकोण से चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का नाम उल्लेखनीय है। समाज की कठोर रूढ़ियों नियमों का विरोध कर नारी ने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। विश्वासघाती पति से पीड़ित होकर दुःखी न होती, अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है। राधा दूसरा विवाह करके जागरूकता का परिचय देती है और पुरूष जाति को अच्छा सबक सिखा देती है जो नारी का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं मानते। 'चाय में नींबू' की कौशल्या,'कल्याणी' की कल्याणी आदि ऐसी नारियाँ हैं जो अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अथवा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए परिस्थितियों का वीरतापूर्वक सामना करती हैं। चन्द्रकिरण जी ने नारी–जाति के प्रति अपनी सहानुभूति और संवेदना का परिचय दिया है। सामाजिक चेतना के प्रति जागरुकता के फलस्वरूप उनके पात्र व्यक्तिरूप नहीं, बल्कि समाज–यथार्थ के प्रतिनिधि बनकर अवतरित हुए हैं। नारी की विवशता एवं परवशता तथा नारी पर पुरुष के अत्याचार का बड़ा मार्मिक एवं सफल वर्णन किया है। साथ ही कहीं–कहीं नारी के विद्रोह का प्रभावशाली चित्रांकन हुआ है।'कमीनो की जिन्दगी' में नारी विद्रोह का सबल चित्र प्रस्तुत किया है। बसन्ती अपने पति के अन्याय और अत्याचार को एक सीमा तक बर्दाशत करती है और जब उसका अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँचने लगता है तो बसन्ती उसे छोड़कर दूसरी शादी कर लेती है। चन्द्रकिरण जी आदर्शवादी नहीं यथार्थवादी लेखिका हैं। इसी से उनकी रचनाओं में रूमानी कल्पना, आसमानी चिन्तन और हवाई आदर्श कहीं नहीं मिलते। समाज और जीवन की घोर यथार्थता का वर्णन मिलता है।

नारी के मातृत्व के रूप को सर्वाधिक गौरवान्वित करने में, आलोच्यकालीन लेखिकाओं में कमला त्रिवेणीशंकर सिद्धहस्त मानी जाती हैं। भारतीय नारी की किसी न किसी समस्या का सूक्ष्म एवं मार्मिक चित्रण तथा आदर्श, त्याग, करुणा के आधार पर उसकी पूर्ति की गई है। अधिकाँश नारी पात्र शिक्षित एवं परिस्थितियों का सामना कर अपना मार्ग स्वयं निश्चित करने वाले हैं। शिक्षित महिलाएँ रूढ़िवादी प्राचीन नारी की भान्ति पत्नी की आवश्यकता से अधिक उपेक्षा एवं अवहेलना करे तो पत्नी भी उचित उत्तर देती है। 'अमीर की बेटी' में जब

दहेज कम मिलने के कारण नीलिमा के पति व उनके सम्बन्धी अवहेलना करके उसे मायके भेज देते हैं तब वह अपने पिता से स्पष्ट कह देती है – "पिता जी, आज के युग में स्त्रियाँ सम्बलहीन नहीं हैं। मैं पढ़ूँगी और नौकरी करुँगी। पर ऐसे घर में शायद अब लौटकर नहीं जा सकूँगी, जहाँ के लोगों ने मुझे मिट्टी के खिलौने की भान्ति ठुकरा दिया।"[1] लेखिका ने नारी हृदय की व्यथा के साथ उसके तप, त्याग एवं बलिदान के भावपूर्ण दृश्य अंकित किए हैं।

कंचनलता सब्बरवाल महिला कथाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनके कथा–साहित्य में जीवन और जगत के अनुभूत अनुभवों का ही अंकन मिलता है। लेखिका का स्त्री–सम्बन्धित दृष्टिकोण स्पष्ट ही है। वारुणी, संध्या, मृदुला, बसन्ती सभी अपनी–अपनी सीमाओं में रहकर पतिव्रत्यधर्म का पालन करती हैं। पति से अलग उनका अस्तित्व नहीं परन्तु पति के अत्याचारों को मूकभाव से सहे यह भी उनकी नारियाँ नहीं चाहती। 'मन का सौदा' की सुमन किसी की भी परवाह न करके अपने प्रेमी से विवाह करती है।

हिन्दी की लेखिकाओं में तेजरानी पाठक का महत्वपूर्ण स्थान है। 'लाल कुरता' की सुलोचना, 'गुप्ताकर्षण' की कादम्बरी ऐसी नारियाँ हैं जो स्वयं परिश्रम करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं। 'गुप्ताकर्षण' की विभा सच्ची प्रेमिका है जो प्रेम के लिए आत्मोत्सर्ग तक कर देती है।

तारा पांडे मूलतः कवयित्री थी। 'शुक–पिक' काव्यसंग्रह के अतिरिक्त 'उत्सर्ग' नामक कहानी संग्रह की भी रचना की है। 'दारोगा की बेटी' में कला राष्ट्रव्यापी प्रभाव तथा अपने दारोगा पिता पर लाठीचार्ज करते देख और अपनी सेविका सखी को देशभक्ति के अपराध में कारावास होते देखकर वह मैदान में कूद पड़ी और एक दिन पुलिस की लाठी का शिकार होकर मातृभूमि के लिए बलि चढ़ जाती है। 'उत्सर्ग' की कहानियों में लेखिका का उद्देश्य नारी–जाति के गौरव को व्यक्त करना रहा है।

रजनी पनिकर एक सफल उपन्यास लेखिका तो हैं ही, साथ ही भारतीय पारिवारिक जीवन की कहानियाँ लिखने वालों में रजनी जी का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वयं नारी होने के कारण रजनी जी नारी के अंतस्थल का चित्रण करने की अद्‌भुत शक्ति रखती हैं। 'नई

---

[1] कमला त्रिवेणीशंकर – जयमाल, पृ0 – 115

पीढ़ी' की मनोरमा के माध्यम से इन भावों की अभिव्यक्ति होती है कि भारतीय नारियों में किस सीमा तक प्रगतिशीलता और सजगता आ गई है। वे समाज कल्याण कार्य में लग जाती हैं इसका उदाहरण दृष्टव्य है, मनोरमा स्पष्ट शब्दों में कहती है, – 'मैं पार्टी में नहीं जाऊँगी। भरपेट खाना यहाँ मिल जाता है। वहाँ आज रात कोई सौ रुपये का खाना फैंका जाएगा। वही अन्न हम पहाड़ियों को क्यों न बांट दे, उन पकवानों को भरे पेट खाने की आपको क्या आवश्यकता है पिता जी ? वह होटल के सामने वाले कुलियों को दे दिजिए, जो शायद सुबह से भूखे हैं।''[1] नारी की सामाजिक वैषम्य से पूर्ण स्थिति को अभिव्यक्ति देने वाली लेखिकाओं में रजनी पनिकर की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। आज के बढ़ते हुए वैयक्तिक भाव के मध्य अब नारी मूक पशु की भान्ति अपने ऊपर किए गए अत्याचारों को सह नहीं पाती। भले ही उसका पारिवारिक जीवन विच्छिन्न हो जाए। 'रंजना और रमन' कहानी की रंजना वर्षों तक अपने पति की कुण्ठित और कलुष प्रवृत्तियों को सहती है और जब उससे यह सब नहीं सहा जाता तो वह वहाँ घुल–घुल कर मरने के लिए नहीं रहती, बल्कि एक दिन अपने पारिवारिक जीवन को छोड़कर चल देती है। शिक्षा के विकास के साथ–साथ अपनी वैयक्तिकता की पहचान की जो प्रवृति इन दिनों महिला वर्ग में पनप रही है, उसे पनिकर जी ने सहज अभिव्यक्ति दी है। 'महानगर की गीता' की गीता कॉलेज में जूनियर लाइब्रेरियन के पद पर काम करती है। घर में पैसों की खास जरूरत नहीं थी फिर भी आर्थिक रूप से स्वतन्त्र रहना चाहती थी। इनकी अधिकाँश रचनाओं में नौकरी–पेशा नारी को आधार बनाया गया है। यह नारी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को स्थापित करने के कारण अर्थार्जन करती हैं।

मन्नू भण्डारी का महत्व इसलिए बहुत अधिक है कि वे पहली साहसी लेखिका हैं, जिन्होंने तरुण नागरिक स्त्री–भावों को सत्य के कठोर और कई अप्रिय लगने वाले स्तर पर खोलने का प्रयत्न किया है। पुरुष की भान्ति आज नारी भी अपने वर्तमान में जीना चाहती है। अतीत की गाथाओं और भविष्य के सपनों पर अब उसकी उतनी आस्था नहीं रह गयी, जितनी पिछले युग में थी। इस सबका कारण आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि और शिक्षा का विकास है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में अधिकांशतः शिक्षित नारी की तथा नारी की वैयक्तिकता को

---

[1] रजनी पनिकर – सिगरेट के टुकड़े, पृ0 –10–11

प्रतिष्ठा दी है। स्वातन्त्र्य की चेतना आज समाज और परिवार में व्याप्त है। मनुष्य को अपने वैयक्तिक जीवन में किसी का भी हस्तक्षेप पसन्द नहीं, चाहे वह माता–पिता हों। 'एक इंच मुस्कान' की रंजना अमर से प्रेम करती है तथा अमर से ही विवाह करना चाहती है, पिता द्वारा अन्यत्र प्रयास किये जाने पर वह अपनी इच्छा को पत्र में स्पष्ट शब्दों में लिख देती है –"उसके विवाह के मामले में घर वाले हस्तक्षेप करना छोड़ दे। वह अपनी इच्छा से करेगी और जब करेगी तो घरवालों को सूचना दे देगी।"[1] 'नकली हीरे' की इन्दु भी अपने माता–पिता की मर्जी के खिलाफ एक साधारण मास्टर जी से प्रेम कर लेती है। 'ईसा के घर इन्सान' की निडर ऐंजिला अन्याय के प्रति विद्रोह करके चर्च और फादर का भांड़ा फोड़ती है। धर्म के नाम पर होने वाले नारी शोषण के विरोध में आवाज उठाती है। 'रानी माँ का चबूतरा' की गुलाबी परम्परा विरोधी है। अन्धविश्वासों से उसे घृणा है। स्वावलम्बन में उसकी गहरी आस्था है। यह नारी अपनी पूरी ताकत के साथ गाँव की जड़ मानसिकता का सामना करती है। शराबी पति को घर से निकालकर दिन भर कठोर परिश्रम करके अपना व अपने बच्चों का पेट पालती है। कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारती है। 'हार' की दीपा राजनीति में रुचि रखने वाली स्वतन्त्र विचारों की महिला है। मन्नू भण्डारी के कथा–साहित्य की नारियाँ प्राध्यापिकाएँ, अध्यापिकाएँ, छात्राएँ तथा प्राचार्य भी हैं। इसके अतिरिक्त घरेलू नारियाँ भी किताबे पढ़ने में रुचि रखती हैं जैसे 'एक कमजोर लड़की की कहानी' की रूप। 'जीती बाजी की हार' की मुरला विवाह संस्कार को बोझ मानती है और दकियानूसी विचारों को स्वीकार नहीं कर पाती।'त्रिशंकु' की नायिका अनाम अपने माता–पिता की इच्छा के विरुद्ध प्रेम विवाह करती है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में –"व्यर्थ के भावोच्छ्वास में नारी के आँचल का दूध और आँखों का पानी दिखाकर उसने पाठकों की दया नहीं वसूली..... वह एकदम यथार्थ के धरातल पर नारी की दृष्टि से अंकन करती है।"[2] मन्नू भण्डारी ने नारी–मनोविज्ञान को बहुत बारीकी से चित्रित किया है। उनके नारी पात्र अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का उद्घोष करते दिखाई देते हैं।

---

[1] मन्नू भण्डारी – एक इंच मुस्कान, पृ0 – 56

[2] वही – प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ0 – 6

उषा प्रियंवदा की गणना उन कथाकारों में है जिन्होंने आधुनिक जीवन की स्थिति को अनुभूति के स्तर पर पहचाना और अभिव्यक्त किया। उषा प्रियंवदा के साहित्य की नारी स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व की स्थापना के लिए विद्रोह कर उठती है। नारी को प्राचीन संस्कारों से जुड़े रहना या आदर्श से चिपके रहना संभव नहीं है। वह पुरानी मान्यताओं को स्वीकार नहीं कर पाती। अत्याचारों के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है। उसे पुरुष या समाज का अत्याचार सहन नहीं है। उषा प्रियंवदा की 'आधा शहर' कहानी में इला को समाज चरित्रहीन कहता है जिस पर वह अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करती है, ''..... आप जानते हैं? त्रिकालदर्शी हैं न ?..... कहाँ क्या घट रहा है, सब आपको पता है ?..... एक पुरुष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है, उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता ? एक स्त्री अगर अकेली सम्मान से जीना चाहती है तो उसको चारों तरफ गिद्ध नोच खाने को तैयार रहते हैं।''[1] नारी को पहले बोलने का अधिकार नहीं था, लेकिन अब नारी विद्रोहिणी बन चुकी है। नारी स्वतन्त्र होने के साथ–साथ आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी भी है। 'शेषयात्रा' उपन्यास में कानूनी तौर पर चाहे अनु को प्रणव ने कचहरी में खड़ा कर दिया, तलाक दे दिया, किन्तु अनु अपनी हार नहीं मानती है। कचहरी से निकलते ही वकील ने उसे शुभकामनायें दी तो अनु के मुँह से ये कड़वे शब्द निकल पड़े –''यह सहानुभूति आप अपने मुवक्किल को ही दीजिये..... उस दिन के बाद मैं एक बार भी नहीं रोई। मालूम नहीं मेरे अन्दर इतना तेज, इतना करेज कहाँ से आ गया। मुझे लगा, मैं कुछ भी बन सकती हूँ।''[2] प्रणव के मिलने पर अनु उसे स्पष्ट करा देती है कि प्रणव यदि तुम मुझे छोड़ सकते हो तो मुझे भी तुम्हें छोड़ने में कोई झिझक नहीं। अच्छा ही हुआ मैंने तुम्हारा साथ छोड़ दिया, नहीं तो मुझे जिन्दगी भर यहाँ आपकी निकम्मी पत्नी बनकर ही रहना पड़ता।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में नारी पुरुष की भोग्या अथवा समर्पिता बनकर नहीं रहना चाहती है, आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बी होकर पुरुष से मुक्त होना चाहती है। 'मोहबंध' कहानी की नीलू राज से कहती है–''तुम समझने की कोशिश नहीं करते, राजन। मैं दायरे में बंध कर नहीं रह

---

[1] सं० अवधनारायण मुदगल – सारिका, 16–31 जुलाई 1984, पृ० – 14

[2] उषा प्रियंवदा – शेषयात्रा, पृ० – 111

सकती,..... मैं घर में रहूँ, कुत्ते पालू, बाग देखूँ और परचर्चा करुँ, जैसे कि सब करते हैं। मुझ से नहीं होता।....."[1] नीलू राजन की भोग्या वस्तु नहीं बनना चाहती वह स्वतन्त्र व्यक्तित्व को महत्व देती है। 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका स्वेच्छापूर्ण जीवन जीना चाहती है। वह विवाह के सम्बन्ध में कहती हैं –"मैं ऐसा संगी चाहती हूँ जिसमें स्थिरता हो, औदार्य हो जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले, मेरे अतीत को झेल ले।"[2] इस तरह वह उन्मुक्त जीवन जीना चाहती है। उषा प्रियंवदा नारी चेतना की कथाकार हैं इनकी नारियाँ आधुनिक परिवेश में जीती हैं। विदेशी सभ्यता, स्वतन्त्रता उन पर इस तरह हावी हो जाती है कि विदेश से लौटने पर भी वह उसी स्वतान्त्रता को लेकर समाज में जीती हैं। वह परिवार से बंधती तो हैं लेकिन पुरुष की दासी होकर नहीं सहगामिनी होकर जीना चाहती हैं।

### 3.1 पचास से पहले : महिला कथाकार और कथा-साहित्य में युग-स्थिति

सन् 1950 से पहले की महिला कथाकार कथा--साहित्य तथा युग स्थिति में जब किसी प्रकार के चेतना बोध की बात करती हैं तो उसका यही अर्थ है कि परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में किसी चरम और विकृत अवस्थाओं की बात को उजागर करना चाहते हैं। इस युग के कथा–साहित्य में नयी निर्मित चेतना के भी दर्शन होते हैं। 'युग' शब्द का अर्थ सामान्यतः काल के आयाम से लिया जाता है। किन्तु वह 'काल' किसी न किसी परिप्रेक्ष्य में तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियों से शासित होता है। किसी भी परिप्रेक्ष्य में युग के अथ से इति के लिए कोई तिथि निश्चित नहीं की जा सकती, क्योंकि एक प्रवृत्ति अधिक समय तक भी चल सकती है और थोड़े समय में भी प्रभावहीन सिद्ध हो सकती है।

साहित्य युगीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब होता है। प्रत्येक साहित्यकार उनसे प्रगावित हुए बिना नहीं रह सकता। परिवर्तनशील युग के साथ–साथ ही व्यक्ति की विचारधारा भी बदलती रहती है और साहित्य उसी युग सत्य को उद्‌घाटित करने के लिए बाध्य होता है। साहित्यकार अपनी कृति के द्वारा एक ओर अपने व्यक्तित्व का परिचय देता है और दूसरी ओर

---

[1] उषा प्रियंवदा – जिन्दगी और गुलाब के फूल, पृ0 – 20

[2] वही – रुकोगी नहीं राधिका, पृ0 – 53

वह युगीन वातावरण एवं परिस्थितियों का भी स्पर्श करता है। इनके कथा–साहित्य में भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक वातावरण की सभी समस्याओं, परिस्थितियों, मनोवृत्तियों का चित्रण हुआ है।

**बंगमहिला (राजेन्द्रबाला घोष)** - लेखिका के समकालीन समाज में राष्ट्र भक्ति की लहर व्याप्त हो चुकी थी। स्वदेशी वस्तुओं का महत्व स्थापना इनकी 'दुलाई वाली' तथा 'भाई बहिन' कहानियों का आदर्श हैं। बंगमहिला ने इन कहानियों में जन जागरण के चित्रण की ओर यथोचित ध्यान दिया है। 'दुलाई वाली' में पत्नी जानकी जब पूछती है कि क्या जरूरी चीज भूल आये हैं तो वंशीधर का उत्तर दृष्टव्य है, –''नहीं, एक देशी धोती पहनकर आना था तो भूलकर विलायती ही पहन आये। नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं न? वे बंगालियों से भी बढ़ गए हैं। देखेंगे तो दो चार सुनाये बिना न रहेंगे। और बात भी ठीक है। नाहक विलायती चीजें मोल लेकर क्यों रुपये की बरबादी की जाय? देशी लेने में भी दाम लगेगा तो सही पर रहेगा तो देश ही में।''[1] 'भाई बहिन' कहानी में भारत की राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है–''इस तरह सूई, डोरा, कंघी, दियासलाई इत्यादि छोटी मोटी चीजों के लिए भी कितने रुपये दूसरे देश वालों को दे देते हैं जिसका लेखा लगाने से छाती दहल जाती है। हम सब अपनी करनी से ही दीन से दीन, गरीब से गरीब, अधम से अधम हो रहें हैं। पर तब भी चेत नहीं होता।''[2] भारतवासी साधारण वस्तुओं को विदेश से अधिक मूल्य में मँगाना छोड़ दे तथा अपने देश के उत्पादनों को कम मूल्य पर बाहर न भेजें। इस कहानी में तत्कालीन सामाजिक स्थिति को उभारा है। पर्दा–प्रथा तथा शिक्षा के अभाव के कारण स्त्रियाँ पुरुषों पर निर्भर थीं।

**उषादेवी मित्रा** - उषादेवी मित्रा के कथा–साहित्य में वर्तमान समाज का चित्रण हुआ है। भारतीय समाज व्यवस्था का आधार संयुक्त परिवार भी है। संयुक्त परिवार का संचालन

---

[1] बंगमहिला – कुसुम संग्रह, पृ0 – 78–79

[2] वही – वही पृ0 – 135

परिवार का मुखिया करता है और उसके निर्णय परिवार के सभी सदस्यों को मान्य होते हैं। निर्धन से निर्धन परिवार अपने इस उत्तरदायित्व को भली–भान्ति पहचानता था। स्वयं नारी होने के कारण नारी हृदय का अच्छा अध्ययन किया है। अन्तर्जातीय विवाह–समस्या, वेश्या समस्या, परित्यक्ता नारी समस्या, विधवा समस्या आदि को चित्रित किया है। विधवा का दयनीय जीवन मध्यवर्गीय समाज में अत्यन्त करुण है। उसे परिवार और समाज की यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। भारतीय समाज में पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी को ही पापिन, अभागिन घोषित किया जाता है। 'मातृत्व' की हशमत ऐसी ही अभागिन है जो दस–वर्षीय विधवा बालिका है। 'मन की देन' की कमला को उसका पति शराब पीकर मारता है परन्तु फिर भी वह राधाप्यारी को उत्तर देती है, –"मारते पीटते हैं, वह भी तो मेरे ही लिए, मुझे वह जिस सुख, आराम से रखना चाहते हैं, वैसा उनसे बनता नहीं। अपनी कमी, अपनी अयोग्यता पर उन्हें क्रोध आता है, दुःख होता है। फिर वह गुस्सा उतारें किस पर। मेरे सिवा उनका है भी कौन? ..... उन्होंने मुझे पत्नी का आसन देकर मेरे नारीत्व का सम्मान किया है न।"[1] अतः भारतीय पत्नी अपने पति को परमेश्वर मानती है वह चाहे जैसा मर्जी सलूक करे।

उस समय देश को अंग्रेज़ों से किस प्रकार मुक्त किया जाए यही मुख्य समस्या थी। देश में दो दल बन गए थे कांग्रेस और मुस्लिम लीग। हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक संघर्ष राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में बाधा डाल रहे थे। उषादेवी मित्रा ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को 'देशभक्त' कहानी में अंकित किया है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को भी अभिव्यक्त किया है। महात्मा गाँधी का स्वदेशी आन्दोलन उस समय चल रहा था। अधिकाँश स्त्री–पुरुष स्वदेशी वस्त्रों को महत्व देने लगे थे। 'वचन का मोल' उपन्यास में मनिका के प्रति डॉक्टर यतीश के ये शब्द दृष्टव्य हैं–"आप जिसे मोटा और खराब कह रही हैं, उसे आदर और सन्तोष के साथ वे नर–नारियाँ भी अपना रही हैं, जिन्होंने पहले सिल्क के सिवाय दूसरे कपड़े छुये तक न थे। केवल यही नहीं – आज वे देश के अभाव, दुःख, व्यथा को दर्द के साथ समझने

---

[1] उषादेवी मित्रा – रागिनी, पृ0 – 88

भी लगे हैं।"[1] यही संकेत उषादेवी मित्रा ने अपनी कहानियों के माध्यम से जगह–जगह व्यक्त किये हैं। वस्तुतः स्वदेशी आन्दोलन का महत्व प्रतिपादित किया है।

**सुभद्रा कुमारी चौहान** - सुभद्रा कुमारी चौहान इस युग की प्रमुख प्रगतिशील समाज सेविका थी। सुभद्रा जी ने अपने साहित्य के माध्यम से समकालीन धरातल पर नारी की विभिन्न समस्याओं, घात– प्रतिघातों को मार्मिकता से चित्रित किया है। विधवा नारी की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। वह समाज में अभिशाप समझी जाती थी। 'किस्मत' की बाल–विधवा किशोरी अत्याचारों की ज्वाला में तिल–तिल मरने के लिए विवश है। 'बिखरे मोती' की भूमिका में उन्होंने संकलित कथाओं के विषय में लिखा है –"समाज और गृहस्थी के भीतर जो घात–प्रतिघात निरन्तर होते रहते हैं उनकी यह प्रतिध्वनियाँ मात्र हैं, उन्हें आपने सुना होगा। मैंने कोई नई बात नहीं लिखी, केवल उन प्रतिध्वनियों को अपने भावुक हृदय की तन्त्री के साथ मिलाकर तालस्वर में बैठाने का ही प्रयत्न किया है।"[2] सुभद्रा कुमारी के जीवन पर राष्ट्रीय आन्दोलनों का अधिक प्रभाव पड़ा था और आजादी की लड़ाई में भाग लिया था। यही क्रान्ति की भावना इनके कथा–साहित्य में पायी जाती है–"देशभक्ति की भावना सम्पूर्ण देश में व्याप्त थी। विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बहुत तीव्र था। गान्धी जी ने जन–मानस को इतनी तेजी से झकझोरा था, उसमें इतना साहस उत्पन्न कर दिया था कि वह स्वतन्त्रता के लिए आकुल हो उठा था।"[3] सुभद्रा जी के साहित्य में जो स्वाभाविक प्रवाहमयी सरलता है – राष्ट्रीय आन्दोलन उसका एक रूप था, उसकी एक अभिव्यक्ति थी स्त्रियों की स्वाधीनता का प्रश्न उसका दूसरा रूप, दलित जातियों का उत्थान तीसरा। इस युग की राजनीतिक उथल–पुथल को अपनी रचना 'अमराई' में प्रस्तुत किया है –"यह उन दिनों की बात है जब सत्याग्रह

---

[1] उषादेवी मित्रा – वचन का मोल, पृ0 – 91

[2] सुभद्रा कुमारी – बिखरे मोती, पृ0 – 25–26

[3] उमेश माथुर – आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएँ, पृ0 – 251

आन्दोलन अपने पूर्ण विकास पर था, सारे भारतवर्ष में समराग्नि धधक रही थी।दमन का चक्र अपने पूर्ण वेग से चल रहा था, अखबारों में लाठी चार्ज, गोलीकाण्ड, गिरफ्तारी और सजा की धूम के अतिरिक्त और कुछ रहता ही न था।"[1] इनकी कहानियाँ हिन्दू–मुस्लिम एकता, पुलिस के अत्याचार, राष्ट्रीयता के उद्‌बुद्ध के उद्देश्य से लिखी गई हैं।

यह निस्सन्देह और निसंकोच कहा जा सकता है कि तद्‌युगीन समाज में प्रचलित रूढ़ियों, परम्पराओं में अंधविश्वास, नारी की दयनीय स्थिति, दहेज प्रथा, विधवा विवाह, राष्ट्रीय आन्दोलन, राष्ट्रीय चेतना का चित्रांकन किया है।

**कमला चौधरी** - स्वातन्त्र्य पूर्व की महत्वपूर्ण महिला कहानीकारों में कमला चौधरी की गणना की जा सकती है। इनके कथा–साहित्य में नारी–जीवन और उसकी भावनाओं को चित्रित किया है। इनकी कहानियों में हिन्दू–विधवा की दुर्दशा को उद्‌घाटित किया है–"मांगलिक कार्यों में विधवा का प्रवेश निषिद्ध मानना उसे स्वच्छ वायु में श्वास लेने की स्वतन्त्रता न देना, अत्यन्त सादा भोजन तथा सामान्य वस्त्र देना, कामी पुरुषों द्वारा अनेक आशाएँ देकर उन्हें भ्रष्ट करने का प्रयत्न करना, गर्भवती होने पर दूध की मक्खी की भान्ति त्याग देना आदि।"[2] इस प्रकार उन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों का चित्रण किया है। स्वतन्त्रता से पूर्व देश की स्थिति शोचनीय थी। समाज चार वर्णों में विभाजित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। 'भिखमंगे की बिटिया' में निर्धन परिवार की अभावग्रस्त परिस्थितियों का चित्रांकन हुआ है। 'पागल' और 'प्रायश्चित' में अछूत परिवारों की समस्याओं का सजीव चित्रण हुआ है। उच्च और निम्न वर्ग की नारी की विवशता का चित्रण 'त्याज्या' में मिलता है, – "उन्नीसवीं सदी की नारियाँ कठिन पर्दे में जकड़ी हुई अपना मान, सम्मान, गौरव, आदर्श, उद्देश्य, अपना धर्म और अधिकार सब कुछ भूल चुकी थी। केवल पुरुष जाति पतिव्रत धर्म की

---

[1] सुभद्रा कुमारी – बिखरे मोती, पृ0 – 94

[2] उर्मिला गुप्ता – हिन्दी कथा–साहित्य के विकास में महिलाओं का योग, पृ0 – 186–187

दुहाई देकर उचित–अनुचित के ज्ञान से अनभिज्ञ नारियों से अपनी गुलामी करवा रहा था।''[1] अतः स्पष्ट है कि सभी वर्ग की नारियाँ विवशता का अनुभव करती हैं।

'समस्या' कहानी में ईसाई मिशनरियों के द्वारा धर्म प्रचार का वर्णन किया है। 'पटापेक्ष' कहानी में गान्धी जी द्वारा 1930 में नमक कानून तोड़ने का चित्रण किया है। राजनीतिक आन्दोलन एवं स्वतन्त्रता संघर्ष–काल की परिस्थितियों का भी अंकन किया है। उस युग के सामाजिक, राजनीतिक वातावरण के माध्यम से कमला जी ने देश में आर्थिक संकट के फलस्वरूप अन्न कष्ट एवं वस्त्र कष्ट से त्रस्त दम घोंटने वाले वातावरण का चित्रांकन किया है।

**शिवरानी देवी** - शिवरानी देवी ने तद्युगीन समाज एवं राजनीतिक समस्याओं का चित्रांकन अपने कथा–साहित्य में किया है। समकालीन समाज की विविध समस्याओं के प्रति उनकी दृष्टि सजग रही है। हिन्दू समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली भी है। संयुक्त परिवार में नारी की स्थिति का चित्र अंकित किया है। सरूपा अपने रोगी ससुर की रात–दिन सेवा टहल करती है परन्तु उसके बदले में मार, गाली ही सुनने को मिलती है। सामाजिक कुप्रथाओं का निवारण करने के लिए नियम बनाए गए परन्तु बुराईयाँ नहीं मिटी। दहेज प्रथा के कारण बालिकाओं के विवाह की समस्या प्रमुख समस्या थी। छोटे–छोटे बालक–बालिकाओं को विवाह के बन्धन में बांध दिया जाता था जो विवाह का अर्थ भी नहीं समझते थे। लेखिका ने तद्युगीन राजनीतिक व्यवस्था को भी उद्घाटित किया है। अंग्रेज़ों को भारतीय जनता का दमन करने के लिए पुलिस का सहारा लेना पड़ता था। इन्होंने पुलिस की क्रूरता की नीति का अंकन किया है। 'माता' के हनुमान, 'हत्यारा' के विनोद अंग्रेजों के दमन और अत्याचार व शोषण के विरुद्ध राष्ट्र के लिए अपने जीवन को न्यौछावर कर देते हैं। हिन्दू–मुस्लिम में साम्प्रदायिक फूट अंग्रेजों की कूटनीति थी। हिन्दू–मुसलमानों में जो विद्वेषाग्नि सुलग रही थी वह प्रायः भीषण दंगों के रूप में भड़क कर जान–माल का नाश कर डालती थी। 'कुरबानी' कहानी में गौहत्या के कारण हिन्दू–मुस्लिम दंगों की आशंका ने सबको भयभीत किया हुआ है– ''कुरबानी करना हमारा

---

[1] कमला चौधरी – यात्रा, पृ0 – 210

मज़हबी हक है, हम सरेबाज़ार कुरबानी करेंगे। अगर सरेबाज़ार पूजा हो सकती है, तो कुरबानी भी हो सकती है।..... अगर तुम गाय की कुरबानी अपना मज़हबी हक समझते हो, तो हम सूअर की कुरबानी करेंगे और सरेबाज़ार करेंगे।"[1] हिन्दू मुसलमानों का यह विरोध विविध रूपों में प्रकट होता था।

भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी ब्रिटिश शासन में किसान उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रहे थे। क्योंकि उन्हें लगान इतना अधिक देना पड़ता था कि कृषि के द्वारा भी उसे पूरा नहीं किया जा सकता था। साहूकारों और जमींदारों का शोषण उनकी स्थिति को ओर अधिक दयनीय बना देता, क्योंकि उन्हें साहूकारों और ज़मींदारों से ऋण लेना पड़ता। 'ऋण' कहानी में कर्ज के भार से दबे किसान की व्यथा गाथा है, जो अपने जीवन काल में ऋण से मुक्त नहीं हो पाता है। शिवरानी जी के साहित्य में युग की वाणी बोलती है। इस युग में समाज सुधारकों का ध्यान नारी की दयनीय स्थिति पर केन्द्रित था। राष्ट्रीय एवं सामाजिक जागरण का युग था। यही स्थिति लेखिका की भी रही है कि उन्होंने उस युग के विभिन्न पहलुओं को अपने कथा–साहित्य में उभारा है।

**होमवती देवी** - होमवती देवी अपने समय की अत्यन्त चर्चित और महत्वपूर्ण लेखिका रही हैं। उनके लेखन की यह विशेषता है कि उन्होंने केवल घर परिवार के घेरे में नारी को केन्द्रित कर ही लेखन नहीं किया अपितु इसके साथ–साथ अपने समय की समस्याओं को भी चित्रित किया है। अन्धविश्वासों एवं परम्पराओं में जकड़े भारतीय समाज में विधवा की दशा अत्याधिक दयनीय थी। पति की मृत्यु हो जाने पर नारी को जीवनमृत की उपाधि दे दी जाती थी। 'पीतल की चूड़ियाँ', 'अंतिम सहारा', 'नारीत्व' आदि कहानियों में उन विधवाओं का चित्रांकन किया गया है जिन्हें रात–दिन सेवा करने के उपरान्त भी अपमान एवं निर्दयतापूर्ण व्यवहार ही सहन करना पड़ा। "पति की मृत्यु के पश्चात् होमवती जी को स्वयं सामाजिक एवं पारिवारिक विकृतियों से संघर्ष करना पड़ा था। इसी से आत्मानुभूति के धरातल पर रचित इन कहानियों में लेखिका को

---

[1] शिवरानी देवी – नारी–हृदय, पृ० – 104

अपूर्व सफलता मिली है।"[1] उत्तराधिकार सामयिक समस्या थी। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है परन्तु इसके अतिरिक्त स्त्री के जीवित होने पर पैतृक सम्पत्ति की रक्षा के लिए, पुत्र की लालसा के नाम पर अनेक स्थितियों में भी विवाह करने की छूट दे दी गई है। असहयोग आन्दोलन, अहिंसा,द्वितीय महायुद्ध के कारण आयी मँहगाई, राशन की तंगी ने जन–जीवन को खोखला बना दिया। लेखिका ने 'स्पेशल परमिट' कहानी में मार्मिकता पूर्ण इस समस्या का चित्रांकन किया है –"ऐसी दुर्दशा तो कभी देखी न सुनी, हाथ में पैसा है न बाज़ार में चीज, जिन्दगी के दिन काटने भारी हो रहे हैं। पेट का गढ़ा पाटने के लिए एजेंसी का नया तुला अनाज और तन ढकने को बड़ी हाय–हाय करके चार छः महीने में मिल गई पांच गज़ कोरी मारकीन, क्या कोई खा ले और क्या पहन ले।"[2] अपने इस प्रकार के वर्णन से लेखिका ने तत्कालीन स्थिति को सजीव करा दिया है। भारत–पाक विभाजन से उत्पन्न समस्याओं, शरणार्थी समस्या, साम्प्रदायिक दंगों आदि को भी अंकित किया है। 'धरोहर' में सामयिक आन्दोलनों और द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् की परिस्थितियों का चित्रण किया है।

उस समय देश में प्रचलित सामयिक आन्दोलनों का जोर था देश के नवयुवक पूर्ण रूप से महात्मा गान्धी के द्वारा बताए गए मार्ग पर चल रहे थे। 'स्वाभिमानिनी' के नायक वेदव्रत के शब्दों में "हम लोगों का जीवन तो हर समय हथेली पर रहता है, न जाने कब असहयोग की आग में कूद जाना पड़े।"[3] इस प्रकार विविध राजनीतिक समस्याओं एवं विचारधाराओं को चित्रित किया है।

**सुमित्रा कुमारी सिन्हा** - सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने नारी की सामाजिक स्थिति को ही विशेषतः उभारा है। पुरुष पर समाज ने कोई बन्धन नहीं लगाया है किन्तु नारी को आर्थिक रूप से पुरुष पर ही निर्भर होना पड़ता है जिस कारण उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उसे कदम–कदम पर पुरुष की स्वीकृति अस्वीकृति का ध्यान रखना पड़ता है। 'वर्षगांठ' में लेखिका

---

[1] उमेश माथुर – आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएँ, पृ0 – 259

[2] होमवती देवी – धरोहर, पृ0 – 50

[3] वही – निसर्ग, पृ0 – 108

ने समकालीन भारत की वह झांकी प्रस्तुत की है। जब जमींदारी प्रथा समाप्त होने को थी और कृषक अपना भला बुरा समझने लगे –"यह उस जमाने की बात थी, जब देश में आन्दोलन मचा था, और जनता जागृत हो चुकी थी..... किसान अपने को एक दूसरे का भाई समझने लगा था। भाईचारे के नाते परस्पर की आवश्यकतायें और कार्यों को यथाशक्ति आपस ही में पूरा कर देते थे नहीं तो कोआपरेटिव बैंक से काम चलाते थे।"[1] उस समय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी उभारा है। समाज में प्रचलित भ्रष्टाचार दिन–प्रतिदिन पतन का कारण बनता जा रहा था।

समाज की जिस समस्या को लेखिका ने उभारा है वह है समाज में प्रचलित अवैध प्रेम समस्या। भारतीय समाज में विवाह युवक–युवतियों की अपनी इच्छा से नहीं होते वरन् परिवार के कठोर नियंत्रण तथा समाज के अनेकों अवरोधों के दमन में सम्पन्न होते हैं।

**चन्द्रकिरन सौनरेक्सा** - चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का साहित्य मध्यवर्गीय हिन्दू परिवारों से जुड़ा हुआ है। जिनसे उनका सम्बन्ध घनिष्ठ रहा है। उनके साहित्य में अनुभूति की सच्चाई और ईमानदारी का परिचय मिलता है। मुख्यतः नारी की शोचनीय स्थिति को ही विषय बनाया है। नारी की असहाय अवस्था, अनमेल विवाह, पुरुष–पति द्वारा सताये जाने के विविध रूप, साम्प्रदायिक दंगों में हुई नारी की दुर्दशा आदि का चित्रण किया गया है। परिवार तीन वर्गों में बंटे हुए थे। उच्च, मध्य और निम्न वर्ग। उच्चवर्ग पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव था। मध्यवर्ग में नारी जीवन अनेक समस्याओं से उलझा हुआ था। मध्यवर्ग की अपेक्षा निम्न वर्ग की नारी की स्थिति अच्छी थी। इस वर्ग की नारी पुरुष के समान काम करके आर्थिक रूप से स्वतन्त्र थी। पर उनके रहन–सहन तथा दिन–रात होने वाले गाली–गलोज, मारपीट को भी उभारा है। दहेज प्रथा के कारण युवती कन्या का विवाह वृद्ध से कर दिया जाता और विधवा नारी के प्रति समाज के दुर्व्यवहार का भी चित्रण किया है। आर्थिक वैषम्य को भी उभारा है। अभिजात वर्ग अधिक सम्पन्न और शोषित वर्ग की दयनीयता का चित्रण भी उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। 'बेजुबाँ' कहानी में निम्नवर्ग का यथार्थ चित्र दृष्टव्य है,–"भीड़ की अधिकाँश रोगिणियों ने,

---

[1] सुमित्रा कुमारी सिन्हा – वर्षगांठ, पृ0 – 41

जो नन्दो जैसी ही लुटते पतझड़–सा यौवन लिए थीं, उसी की भान्ति मैली कुचैली, फटे हुए लहंगे ओढ़नी या चूड़ीदार पैजामें और पैबंद लगे बुरके लादे थी, जिनके हाथ–पाँव और गले में चाँदी और गिलट के घिसे हुए, मैले से काले कड़े–छड़े और हसुलियाँ पड़ी थीं, जिनके बच्चों के सूखे हाथ–पांवों और बढ़े हुए पेट पर ताबीज़ों की मालाएं मढ़ी हुई थीं।''[1] समाज के उस वर्ग को चित्रित किया हैं जो दिन–रात जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करता है।

**कमला त्रिवेणीशंकर** - कमला जी ने नारी जीवन की समस्याओं उच्चमध्यवर्ग एवं संभ्रान्त उच्च वर्ग की समस्या को उभारा है। दहेज प्रथा, अछूतों के प्रति कुलीन वर्ग की घृणा की चर्चा भी की है। 'कर्त्तव्य' में दहेज की पूरी रकम न मिलने पर सुधीर के पिता माया को अधब्याही छोड़ देने का आदेश देते हैं। 'मातृत्व की छाया' में अछूतों के प्रति कुलीन वर्ग की घृणा को व्यक्त किया है। सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त लेखिका ने राष्ट्रव्यापी आन्दोलनों को भी प्रस्तुत किया है। 'समझौता' में बंगाल के अकाल पीड़ितों के लिए चन्दा एकत्र करने का उल्लेख मिलता है। 'अपराध' में अकालग्रस्त बंगालियों की दुर्दशा का हृदय विदारक चित्र अंकित किया है। 'लॉकेट' कहानी में श्रीधर काँग्रेस–आन्दोलन में भाग लेकर अनेक बार जेल जाता है। 'देशभक्त' का नायक विनयकृष्ण भी देशसेवा के समक्ष जेल को तुच्छ समझता है। 'मूक सेवा' कहानी का उदाहरण दृष्टव्य है – ''सन् 30 में जब गान्धी की आँधी चली तभी अजय ने विदेशी वस्त्रों की कसम खाई, चर्खा लाया, सूत काते, नमक बनाया, खद्दर बेचा.....।''[2] स्पष्ट है कि लेखिका ने अपने सामयिक युग की राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा को अपनी कहानियों में उजागर किया है।

---

[1] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा – आदमखोर, पृ0 – 142–143

[2] कमला त्रिवेणीशंकर – जयमाल, पृ0 – 27

**कंचनलता सब्बरवाल** - इनके साहित्य में पारिवारिक जीवन का सजीव चित्रण और दलित पीड़ित मानवता के साथ सहज हृदयता का परिचय मिलता है। इनके कथा–साहित्य का क्षेत्र विस्तृत है, जिसमें मानव जीवन तथा समाज की अनेक समस्याओं को उभारा है। समाज की दशा, युवक युवतियों के जीवन, शिक्षित नारी की मनोस्थिति को अपने साहित्य का विषय बनाया है। इनके सभी उपन्यास सोद्देश्य हैं और उनमें आदर्श की स्थापना की गई है। 'भटकती आत्मा' उपन्यास में सामाजिक–राजनीतिक वातावरण को उभारा है। सन् 1942 में भारत की स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी दलों के संगठन, विभिन्न विध्वंसक घटनाओं, सरकार की दमन–नीति आदि का भी वर्णन हुआ है। भारत की अन्य समस्याओं जैसे गरीबी, बेकारी, शिक्षा की कमी आदि की चर्चा भी की है। 'अनचाहा' उपन्यास में बेकारी की समस्या के विषय में गिरिजा की उक्ति दृष्टव्य है,– "आज जब तक स्वयं ही अपने द्वार पर सुशिक्षित सुसंस्कृत, सभ्य, युवक–युवतियों को घण्टों दीनतापूर्वक अकारण अपनी प्रशंसा करते पाता हूँ नयनों में अतुलित करुणा और याचना भरे हुए केवल एक छोटी–सी नौकरी के लिए–केवल तनिक–सी वेतन वृद्धि के लिए तो सचमुच..... दास युग अभी समाप्त नहीं हुआ।"[1] इस समस्या के अतिरिक्त कहानियों में नारी की सामाजिक परतन्त्रता, दहेज प्रथा समस्या का वर्णन किया है। महामारी जैसे भयंकर रोगों का प्रकोप तथा योग्य डाक्टर के न होने से उनकी अकाल मृत्यु हो जाना, जल के कृत्रिम साधनों का अभाव, वर्षा न होने से खेती का नष्ट हो जाना आदि चित्रित किया है।

**तेजरानी पाठक** - तेजरानी पाठक ने तद्युगीन समाज का सजीव एवं वास्तविक चित्रण अपने कथा–साहित्य में प्रस्तुत किया है। किसानों के प्रति जमींदारों का व्यवहार कैसा था, ज़मींदार किसानों का शोषण करते थे इसकी वास्तविक झांकी 'लाल–कुरता' कहानी में मिलती है। गरीब सुलोचना को रोजाना साढ़े चार आने मजदूरी मिलती है। इस पर दो दिन जरा देर से आने पर उसके नौ पैसे काट लिये जाते हैं और मालिक से विनय करने पर सहानुभूति तो दूर उल्टे खरी–खोटी बाते सुननी पड़ती हैं, मालिक ने गरजते हुए कहा, "चुप

---

[1] कंचनलता सब्बरवाल – अनचाहा, पृ0 – 105

रहो। शोर मत करो। मुझे बहुत परेशान करोगी, तो कुछ नहीं दूँगा। जाओ मरे ऊपर दावा करो। अगर जीतो तो वे नौ पैसे ले लेना। बस, मैं तुम्हें एक पाई भी नहीं दूँगा।''[1] मालिक का यह शोषण उनके जीवन की अनेकों समस्याओं का कारण बनता है। इस युग में मजदूर वर्ग की दशा शोचनीय थी। रात–दिन मेहनत करने के बाद थोड़ी मजदूरी दी जाती थी। उस समय के देशव्यापी आन्दोलनों का उल्लेख भी किया है। असहयोग आन्दोलन, नमक कानून को भंग करना, पुलिस का दमन चक्र आदि की चर्चा करके परतन्त्र भारत की राजनीतिक स्थिति को अंकित किया है।

इनकी कहानियों में उच्चवर्ग की सामयिक समस्याओं को न अपनाकर मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग की समस्या को उभारा है। विवाह, दहेज प्रथा आदि को भी चित्रित किया है।

**तारा पांडे** - तारा पांडे ने अपनी कहानियों में पारिवारिक चित्र और नारी की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट किया है। उस युग में स्त्री को सर्वस्व उत्सर्ग करने पर भी तिरस्कार ही मिलता था और पुरुष इच्छानुसार विवाह करके पूर्व पत्नी का जीवन नरक–तुल्य बना दे तो भी वह पावन ही रहता था। 'जल में मीन प्यासी' कहानी में विवश नारी कर चित्रण अंकित है,– ''हिन्दू ललना के लिए पतिप्रेम से वंचित होना कष्टप्रद होते हुए भी साधारण–सी बात है। क्योंकि समाज का यही नियम है। दुखिया के आँसुओं से समाज का हृदय शीतल होता है।''[2] नारी अनेक यातनाएं सहकर भी पति की सेवा में रत रहती है। 'दारोगा की बेटी' में स्वतन्त्रता–प्राप्ति के प्रयत्न में प्रभात फेरी, राष्ट्रीय झण्डे को लेकर जुलूस निकालना, पुलिस का लाठी चार्ज, गिरफ्तारी आदि घटनाओं के द्वारा समकालीन राजनीतिक स्थिति को उभारा गया है।

---

[1] तेजरानी पाठक – अंजलि, पृ0 – 7

[2] तारा पांडे – उत्सर्ग, पृ0 – 83

**रजनी पनिकर** - रजनी पनिकर के कथा–साहित्य में समाज के विविध वर्गों का चित्रण मिलता है। "श्रीमती पनिकर की कला सूक्ष्म निरीक्षण के साथ–साथ गम्भीर यथार्थवादी समस्याओं को खोलती है और आधुनिक समाज की असंगतियों पर सीधी–सच्ची, किन्तु भावनामयी चोट करती हैं।"[1] समय के साथ–साथ व्यक्ति की समस्याएँ भी बदलती गयी, उन्हें केवल एक सजग साहित्यकार ही पहचान पाता है। 'ठोकर' रजनी जी का पहला उपन्यास है। इसमें समकालीन सामाजिक प्रवृत्तियों का चित्रण मिलता है। शरणार्थियों के पुर्नवास की समस्या को भी उभारा है। शरणार्थी होने के कारण रजनी जी ने अपने उपन्यासों में प्रायः भारत विभाजन की चर्चा की है। 'मोम के मोती' उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज में आजीविका की समस्या को उभारा है कि बदलते युग के साथ बदलते सामाजिक मूल्यों ने नारी को इस क्षेत्र में आने के लिए विवश कर दिया। माया के शब्दों में –"आज हमारे समाज की व्यवस्था बदल गयी है। पहले एक पुरुष परिवार भर की नारियों का भार अपने ऊपर ले लेता था। आज अपना पति भी भार लेने को तैयार नहीं। भाई हो, तो वह भी मुँह चुराता है।"[2] रजनी जी ने अछूत समस्या को उठाया है। 'भगवान जल गया' में चम्पा अछूत होने के कारण भगवान के मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकती है। समाज ने उसे यह अधिकार नहीं दिया है कि वह भगवान की भक्ति कर सके। 'एक लड़की : दो रूप' उपन्यास में वर्तमान समाज के वातावरण और समस्याओं के चित्रण पर विशेष ध्यान दिया गया है। वर्तमान युग उत्तरोत्तर भौतिकता की ओर प्रगति करता जा रहा है फलतः इस युग में 'अर्थ' और 'काम' की समस्याएँ सर्वप्रथम हो गयी हैं। गान्धी जी और विनोबा जी के सिद्धान्तों का प्रभाव इनके कथा–साहित्य में देखा जा सकता है।

वर्तमान युगीन परिस्थितियों एवं प्रतिक्रियाओं को उन्होंने भली–भान्ति पहचानकर अपने कथा–साहित्य में उभारा है। लेखिका ने समकालीन समाज का वर्णन तो किया ही है साथ ही नारी जीवन की समस्याओं को भी उभारा है।

इस युग की लेखिकाओं ने तद्युगीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उथल–पुथल को अपने कथा–साहित्य में प्रस्तुत किया है। यह युग पारिवारिक जीवन की

---

[1] उर्मिला गुप्ता – स्वातंत्र्योतर कथा–लेखिकाएँ, पृ0 – 33

[2] रजनी पनिकर – मोम के मोती, पृ0 – 92

झाकियाँ, दाम्पत्य जीवन की कटु एवं मधुर अनुभूतियाँ, दुःख दग्ध मानवता के प्रति संवेदना, कुछ विशिष्ट वर्गों के प्रति तीव्र व्यंग्य, प्रताड़िता नारियों के विवश अथवा विद्रोही व्यक्तित्व, पात्रों के अन्तरंग तथा बहिरंग का विश्लेषण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किए गए अहिंसात्मक आन्दोलन, हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे, मारकाट, हत्या, शरणार्थियों की समस्या, स्त्रियों के बेइज्जत होने, देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, विधवा–विवाह निषेध, दहेज प्रथा, बाल विवाह, अछूत समस्या आदि कुरीतियों की निन्दा, विवाहिता नारी की विविध समस्याएँ अर्थात सास अथवा जिठानी का बुरा व्यवहार, पति द्वारा उपेक्षा, तिरस्कार, सपत्नी की समस्या, सवर्ण जातियों द्वारा निम्नवर्ग के प्रति घृणा का व्यवहार आदि समस्याओं का युग था। फलतः अधिकाँश लेखिकाओं ने समाज सापेक्ष कथा–साहित्य की रचना की है। क्योंकि कोई भी रचनाकार युगीन परिस्थितियों के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकता है। युग की परिस्थितियों तथा समाज में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव प्रत्येक रचनाकार पर पड़ता है और वह जीवन के निजी अनुभवों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

# चतुर्थ अध्याय : कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी-चेतना : विश्लेषण और विवेचन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन के सभी पहलू आन्दोलित हो उठे तथा बृहद परिवर्तन की प्रक्रिया लक्षित होने लगी। समाज, जीवन और दृष्टिकोण के फलस्वरूप कहानी का अनुभव जगत बदल गया। नयी चेतना का निर्माण होने लगा। कहानी में इस चेतना के साथ–साथ जीवन और जगत के जीवन्त यथार्थ को भी चित्रित किया गया। एक तरफ समाज टूट रहा था और दूसरी तरफ नया बन रहा था अर्थात कुछ मान्यताएँ और धारणाएँ टूट रही थीं और कुछ नयी बन रही थीं। कहीं पर मध्यवर्गीय चेतना उभरती हुई और कहीं नारी जीवन के भीतर उफनती और कसमसाती नयी चेतना, उसकी पीड़ा को उभारा है। कुल मिलाकर कहानी जीवन की बड़ी ही तीखी यथार्थ चेतना है। हर कहानीकार अपने–अपने अनुभव के अनुसार जीवन के सत्य को और बनते–टूटते जीवन मूल्यों को चित्रित करता है। क्योंकि कहानी का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन और समस्याओं से है। कहानी अपने लघु कलेवर के कारण जीवन के समकालीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में सक्षम सिद्व हुई। रचनाकार कहानी के माध्यम से जीवन के अनुभवों और समस्याओं को अभिव्यक्त करता है तो उस पर युगीन सन्दर्भो एवं स्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है।

कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी के जीवन्त रूप दृष्टिगत होते हैं। सोबती जी ने स्त्री मूल्यों की पहचान को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। यथार्थ परिवेश में विशेषकर अभिजात्य वर्ग की आकांक्षाओं और कमजोरियों को चित्रित करने में लेखिका को विशेष सफलता मिली है। कृष्णा सोबती ने नारी जीवन की कुण्ठाओं समस्याओं व उनके अन्दर कसमसाती हुई संघर्ष करती हुई चेतना को अपनी कहानियों में उभारा है। इस विकास यात्रा के कुछ महत्वपूर्ण स्तर हैं जिन्हें रचनात्मक रूप प्रदान किया है। पारम्परिक मूल्यों का विघटन और स्थापित नैतिकता की निरर्थकता साबित करने वाली कहानियाँ इस यात्रा का महत्वपूर्ण स्तर हैं। दूसरे स्तर में परिवारगत सन्दर्भ में स्त्री–पुरुष के बदलते सम्बन्धों को उभारा है। आर्थिक एवं मानसिक स्तर पर मुक्ति पाने की आकांक्षा और स्वावलम्बी बनने का परिचय देने

वाली नारी का चित्रण किया है। उस नारी का चित्रण, जो परम्परागत मूल्यों के भ्रम से मुक्त पर नई दिशा को प्राप्त न कर सकने की नियति के कारण अतीत और भविष्य से कटी हुई जीवन की वर्तमान त्रासदी को भोग रही है एक स्तर और भी है जहाँ सारी विफलताओं के बावजूद भी ज़िन्दगी के रहस्यों को, जिजीविषा के रहस्यों को तलाशती है।

## 4.1 मूल्य विघटन और स्थापित नैतिकता की निरर्थकता

मूल्यों से मानवीय क्रिया–कलापों सामाजिक अन्तः क्रियाओं तथा व्यवहारों को नियन्त्रित किया जाता है। अतः ये 'मूल्य' मापदण्ड होते हैं जिनसे व्यक्ति मर्यादित होता है या यह कहा जा सकता है कि ये मानवीय क्रिया–कलापों के मापदण्ड भी होते हैं, यह समीचीन होगा। वास्तव में मूल्यों का समाज में महत्व है तभी तो समाज इनके अस्तित्व को स्वीकारता है। फिर मूल्यविहीन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ये मूल्य ही व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के विकास में सहायक होते हैं। यह कहा जा सकता है कि 'मूल्यों' की सृष्टि समाज के साथ–साथ हुई, इसलिए मूल्यों का मानव समाज में महत्व है।

समाज एक निरन्तर परिवर्तनशील व्यवस्था है। मनुष्य का जीवन इस समाज रूपी व्यवस्था से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। इस व्यवस्था के कुछ नियम और आदर्श होते हैं जो मनुष्य जीवन को नियन्त्रित एवं अनुशासित रखते हैं। सामाजिक जीवन को अनुशासित करने वाले नियम एवं आदर्श ही मूल्य कहलाते हैं। सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन का कोई निश्चित क्रम नहीं होता है। इनकी गति देश कालानुसार तीव्र–मंद हो सकती है। इसलिए मूल्य 'शाश्वत' नहीं 'परिवर्तनशील' होते हैं। आधुनिकता ने पहली बार मूल्यों को चुनौती दी। आधुनिकता जो पश्चिम की देन है, ने इस बदलाव की प्रक्रिया को तीव्रतर कर दिया है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क से किस प्रकार हमारे जीवन–मूल्य परिवर्तित हुए और इन पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्यों की भारत के आधुनिकीकरण में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नयी जीवन स्थितियों में मनुष्य की रुचियाँ और आत्मीय सम्बन्ध भी परिवर्तित हो जाते हैं। सम्बन्धों में यह बदली स्थिति नये जीवन–मूल्यों की सृष्टि में सहायता करती है।

"समाजार्थिक स्थितियों, औद्यौगिक युग की अनेक विघटनकारी प्रवृतियों, वैज्ञानिक उन्नति, तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी विकास के कारणों से वर्तमान समय में मूल्य परिवर्तन अत्यन्त द्रुत गति से घटित हो रहे हैं।"[1] व्यापक औद्योगिकीकरण और तकनीकी विकास हमारे ज्ञान और तर्क में वृद्धि करने के साथ–साथ सर्वथा नवीन जीवन स्थितियाँ प्रदान करता है। मनुष्य का परिवेश तकनीक के द्रुत विकास से दूषित हो गया है। ज्ञान का नवीन विस्फोट भी मनुष्य की सोच को प्रभावित करता है। जिसके कारण मनुष्य–मनुष्य के बीच, उनके आत्मीय सम्बन्धों के बीच अन्तराल आ गया है। विचारकों ने यांत्रिकी विकास के संकटों से मनुष्य को सचेत किया है। इस प्रकार तकनीकी विकास जीवन–मूल्यों को परिवर्तित करता है।

पुराने विश्वासों, धारणाओं के विरोध में नये विचारों, नयी मान्यताओं का जन्म एक अनिवार्यता है। आज विघटन का युग है। हमारा वर्तमान समाज परम्परित समाज से विलग होता हुआ नयी सभ्यता में प्रवेश कर रहा है। वास्तव में रूढ़िवादी मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों की स्थापना के प्रयास की स्थिति है।

नैतिकता सभी मानवीय समाजों की सार्वभौम विशेषता है। एक समाज के मानदण्ड दूसरे समाज के नैतिक मानदण्डों से अलग हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य के जीवन का कोई न कोई उद्देश्य होता है। उद्देश्य प्राप्ति के लिए उसे कोई न कोई साधन अपनाना पड़ता है। उसके लक्ष्य के लिए जो साधन उचित होता है उसी को वह अपना लेता है। यह उचित–अनुचित का विवेक नैतिकता है। नैतिकता और मूल्य का परस्पर सम्बन्ध व्यक्त करते हुए उर्मिल गम्भीर ने कहा है – "दार्शनिक दृष्टिकोण से मूल्य चिरंजीवी हैं और विश्वास और प्रेम के धरातल पर स्थित हैं। मनुष्य इनके अभाव में नहीं रह सकता, क्योंकि यही उसे सद्‌गति

---

[1] पुष्पपाल सिंह – समकालीन हिन्दी कहानी, पृ0–95

प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करते हैं। नैतिकता और मानव मूल्यों का पालन ही मनुष्य को पशु की कोटि से निकाल कर मानवता के धरातल पर स्थापित करता है।"[1]

आज परम्परागत नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है। मनुष्य के आत्मीय सम्बन्ध, उसके सोचने–विचारने का नज़रिया, उसकी मान्यताएँ एवं विश्वास आदि परिवर्तित हो रहे हैं। आधुनिक युग की नयी तकनीक, औद्योगिक विकास, महानगरीय सभ्यता आदि ने आज की नैतिकता का नियमन किया है। पाश्चात्य संस्कृति, कामोत्तेजक पत्र–पत्रिकाएँ, उत्तेजक सिने चित्र, स्त्री–पुरुष के घर से बाहर सान्निध्य के क्लब बार, डिस्को सभाओं आदि के मिलन स्थान आदि की प्रवृत्ति यौन स्वच्छन्दता को बढ़ावा दे रहे हैं।

परम्परागत मूल्यों का विघटन मानवीय सम्बन्धों में बड़ी तेजी से महसूस होने लगा है, उनमें परिवार एक ऐसी इकाई है जहाँ स्थापित नैतिकता के कई मूल्य खोखले एवं नाकारा साबित हुए। प्राचीन युगीन परिवार का स्वरूप अत्यन्त सहज और सरल था उस समय परिवार प्रायः पितृ प्रधान होते थे। परिवार के सभी सदस्य मिलजुल कर रहते थे और पैतृक कार्यों में हाथ बंटाते थे। आज समय बदल गया है। मानव विकास के साथ–साथ पारस्परिक जीवन में परिवर्तन आया। आज परिवार में नयी परम्पराओं, नयी प्रथाओं का समावेश हो गया है। आर्थिक विषमता दूर करने के लिए स्त्रियाँ भी घर से बाहर नौकरी करने लगी, परिवार का आकार छोटा होता जा रहा है। आधुनिक युग में संयुक्त परिवार विघटित होते जा रहे हैं क्योंकि सास, बहू, देवरानी, जेठानी के बीच होने वाले झगड़े हैं साथ ही व्यक्ति केवल अपनी पत्नी और बच्चों की सुख शान्ति की चिन्ता में लगा रहता है। परिवार के सामूहिक हित की ओर उसका ध्यान नहीं जाता इन सब कारणों से संयुक्त परिवार टूट रहे हैं।

नये कहानीकारों ने स्वातन्त्र्योत्तर जीवन को अपनी कहानियों में स्वर प्रदान किया। साथ ही समसामयिक जीवन–बोध और मूल्यों को अभिव्यक्त किया है। जीवन की बदली भंगिमा और नया परिवेश तथा नये सन्दर्भ नयी कहानी में प्रस्तुत किए।

---

[1] उर्मिल गम्भीर — प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ0– 208

महिला–लेखिकाओं ने नारी सम्बन्धी मान्यताओं और मूल्यों तथा नारी संवेदनाओं को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया। इनमें बदले हुए समय को देखा जा सकता है और परिवर्तन को भी। अतएव यही आज की कहानी का प्रमुख मानदण्ड है कि कहानी में जीवनानुभव को कितनी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है। रूढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों, वर्जनाओं के स्थान पर नयी कहानी नये मानवीय मूल्यों की खोज और उसकी स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। नयी कहानी में मानव–मन के विश्लेषण पर जोर है। कुण्ठा, सेक्स, उदासीनता, निराशा आदि का उसमें समावेश और चित्रण हुआ है किन्तु साथ ही आस्था और आधार की तलाश में है, व्यक्ति और समाज में तादात्म्य स्थापित करना चाहती है। कृष्णा सोबती ने बहुत कम कहानियाँ लिखी हैं। लेकिन जितनी भी लिखी हैं, उनका अपना महत्व है। यथार्थ का चित्रण, परिवेश का सजीव चित्र, गहरी संवेदनशीलता और तटस्थता उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। 'सिक्का बदल गया' कहानी में विभाजन से उत्पन्न मानवीय सम्बन्धों और मूल्यों के विघटन को रूपायित किया है। शाहनी के पास मीलों दूर तक फैले खेत हैं। गाँव की मुस्लिम आबादी और खेतों में काम करने वालों से उसका अपनापन है। किन्तु विभाजन हिन्दू–मुसलमानों की मनः स्थितियों को परिवर्तित कर देता है। शाहनी ने जिस शेरा को पाला वही शाहनी की सम्पत्ति लूटने और उसकी हत्या की योजना बनाता है। किन्तु शाहनी को देखते ही उसका निश्चय डोलने लगता है – "नहीं–नहीं, शेरा इन पिछले दिनों में तीस–चालीस कत्ल कर चुका था। पर.... पर वह ऐसा नीच नहीं.... सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आँखों में तैर गये। वह सर्दियों की रातें – कभी–कभी शाहनी की डाँट खाके वह हवेली में पड़ा रहता था। और फिर लालटेन की रोशनी में देखता था, शाहनी के ममता–भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए 'शेरे, शेरे, उठ, पी ले।"[1] ऐसा नहीं कि शाहनी कुछ नहीं जानती पर वह अनजान बनी रहती है। ट्रकें आ जाती हैं। हिन्दू परिवारों को सीमा से बाहर ले जाने के लिए। थानेदार दाऊद खाँ, पटवारी और शेरा चाहते हैं कि शाहनी जल्दी से हवेली से बाहर निकले। जाते समय दाऊद खाँ शाहनी से कहता है कि अपने पास कुछ नकदी रख ले वक्त

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 124

का कुछ पता नहीं। शाहनी कहती है – " वक्त ? .... दाऊद खाँ, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या में जिन्दा रहूँगी।"[1] अपना घर, खेत तथा गाँव छोड़ शाहनी जब कैम्प पहुँचती है तो कैम्प में पहुँच जमीन पर लेटे–लेटे शाहनी सोचती है–"राज पलट गया .... सिक्का क्या बदलेगा। वह तो मैं वहीं छोड़ आयी।"[2] शाहनी को राज बदल जाने और सिक्का बदल जाने का दुःख नहीं है उसे तो मानवीय सम्बन्धों के निरर्थक हो जाने का दुःख है।

परम्परागत मूल्यों का विघटन मानवीय सम्बन्धों की जिन इकाइयों में हो रहा है उनमें परिवार प्रमुख है। आजकल बड़े–बूढ़ों के प्रति त्याग, सेवा, सम्मान की भावना नष्ट हो गयी है। बेटे, पोते, बहुएँ बड़े बूढ़ों को नाम मात्र का सम्मान देते हैं। वास्तविकता यह है कि संयुक्त परिवार के बूढ़ों को इनकी कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है। 'दादी अम्मा' कहानी में दादी की बात से सम्बन्ध परिवर्तन की स्पष्ट झलक मिलती है – " बहूरानी, इस घर में मेरा इतना–सा मान रह गया है। तुम्हें इतना घमण्ड .... बहू , यह सब तुम्हारे अपने सामने आयेगा। तुमने जो मेरा जीना दूभर कर दिया है, तुम्हारी तीनों बहुएँ भी तुम्हें इसी तरह समझेंगी, समझेंगी क्यों नहीं, जरूर समझेंगी।"[3] दादी अम्मा अपनी बहू मेहराँ को कहती है कि जिस तरह तुम मेरा अपमान करती हो, कल को तुम्हारी बहुएँ भी तुम्हारे साथ ऐसा ही करेगीं।

'बादलों के घेरे' कहानी में पारिवारिक रिश्तों की बदलती हुई स्थिति देखी जा सकती है। मन्नो क्षय रोग से पीड़ित है। जब अपनी चाची के घर आती है तो उसकी चाची चाहती है कि ज्यादा दिन यहाँ न रहे। रवि जब अपनी बुआ के घर आता है तो वह मन्नो को चाहने लगता है लेकिन बुआ उसे सावधान कर देती है और कहती है– "कभी छुट्टी के दिन उसकी बोर्डिंग से आने की राह तकती थी, अब उसके आने से पहले उसके जाने का क्षण

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 126

[2] वही – वही पृ0 – 128

[3] वही – वही पृ0 – 33

मनाती हूँ और डरकर बच्चों को लिए घर से बाहर निकल जाती हूँ ..... जिसे बचपन में मोहवश कभी डराना नहीं चाहती थी, आज उसी से डरने लगी हूँ। उसकी बीमारी से डरने लगी हूँ।"[1]

प्राचीन विवाह ईश्वरीय विधान था जिसे जन्म–जन्मान्तर का सम्बन्ध माना जाता था किन्तु आज ऐसा नहीं है। 'दो राहें : दो बाँहें' की कुन्तल पति शोभन के होते हुए भी गुप्ता की ओर आकर्षित होती है। 'कुछ नहीं–कोई नहीं' की शिवा भी पति रूप को छोड़ आनन्द के साथ घर बसा लेती है। बदलती हुई अर्थव्यवस्था, शिक्षा तथा परिवर्तित चेतना ने वैवाहिक मूल्यों को काफी हद तक प्रभावित किया है।

'बहनें' कहानी में बड़ी, मंझली और छोटी तीनों बहनें है। तीनों ही विवाहित हैं। मंझली जल्दी ही विधवा हो जाती है। मंझली और छोटी दोनों ही मातृत्व सुख से वंचित हैं। बड़ी के एक बेटा है उसकी शादी में तीनों बहनें इकट्ठी होती हैं। छोटी मंझली के बारे में बड़ी से कहती है कि मंझली बिल्कुल अकेली रहती है और उसका दुःख देखा नहीं जाता है। बड़ी एक अर्थपूर्ण दृष्टि से छोटी की ओर देखकर बोली –" छोटी, यह क्या मैं नहीं जानती ? पर भाग्य अपने अपने .... " कहते–कहते बहन के लिए उमड़ी सहानुभूति से बड़ी का स्वर स्वस्थ नहीं रह सका। .... बहनें उसकी हैं पर वह घर, घर का धनी, बेटा–बहू सब उसके बहुत अपने हैं, बहुत सगे हैं। इन सबके सामने ये दोनों बीत गये बचपन की सहेलियाँ – सी लगती हैं।"[2] बड़ी अपनी घर गृहस्थी में इतनी मग्न और मिलजुल गयी है कि उसे अपनी सगी बहनें भी सहेलियों जैसी लगती हैं। उसे ऐसा लगता है कि अपनी बहनों के बजाय उसका पति, बेटा, बहू अपने हैं।

संक्षेप में, मूल्य–विघटन और स्थापित नैतिकता की निरर्थकता का अनेक स्तरीय विघटन कहानियों का कथ्य बन कर रह गया है। कहानियों में विगत मूल्यों की निरर्थकता का ही चित्रण प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि अन्य सन्दर्भ–स्तरों का भी विश्लेषण किया है।

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 17

[2] वही – वही पृ0– 59–60

## 4.2 स्त्री-पुरुष बदलते सम्बन्ध सन्दर्भ

स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के विभिन्न रूप होते हैं – पिता–पुत्री, माता–पुत्र, भाई–बहन, पति–पत्नी, प्रेमी–प्रेमिका और देवर–भाभी आदि। मानवीय सम्बन्धों का क्षेत्र अति विस्तृत है। किन्तु राजेन्द्र यादव का कथन है कि– "व्यक्ति–व्यक्ति के सम्बन्धों में सबसे अधिक जटिल, नाटकीय और अनिवार्य सम्बन्ध स्त्री–पुरुष का आपसी सम्बन्ध है।"[1] स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में पति–पत्नी या प्रेमी–प्रेमिका की ही विविधता पाई जाती है। सभी सम्बन्धों में पति–पत्नी का सम्बन्ध अधिक महत्वपूर्ण है। आशा बागड़ी ने पति–पत्नी के सम्बन्धों के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है, –"पति–पत्नी के सम्बन्ध जगत में खासकर मानव समाज में अप्रतिम हैं। यह कहा जा सकता है कि स्त्रीत्व और पुरुषत्व के इन्हीं दो केन्द्रों पर वह अपनी पूर्ण कलाओं का विस्तार करता है। स्त्री यद्यपि प्रसव कर स्त्रीत्व की एक पृथक प्रतिष्ठा रखती है, परन्तु स्त्रीत्व की कसौटी तो एक मात्र पत्नीत्व ही है। इसलिए ये सम्बन्ध और सम्बन्धों की अपेक्षा वैज्ञानिक है। .....स्त्री और पुरुष का अस्तित्व इन्हीं के लिए है।"[2]

मानव समाज स्त्री–पुरुष का व्यवस्थित समुदाय है। इस समाज रूपी गाड़ी के लिए नर–नारी दो पहियों के समान हैं। दोनों का बराबर महत्व है। इन दो पहियों में यदि एक दृढ़ है और दूसरा भग्नावस्था में है तो परिवार रूपी रथ गन्तव्य तक पहुँचने में असमर्थ रहेगा। एक समय था जब पुत्री अपनी पिता की आज्ञा को मानकर जिससे उसकी शादी करना चाहते थे उसी के साथ कर लेती थी। उसका पति चाहे अच्छा हो या बुरा, अपना भाग्य समझकर उसके साथ सारी ज़िन्दगी बिता देने के अभिशाप को झेलना उसकी मजबूरी थी। समय के अनुसार स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का आधार भी परिवर्तित होता रहा। परम्परागत पातिव्रत्य और सतीत्व की भावना में अन्तर आया। "पति और प्रेमी दो पृथक व्यक्ति हैं, आवश्यक नहीं कि जिससे प्रेम हो, उसी से विवाह भी और जिससे विवाह हो उससे प्रेम भी। प्रेम

---

[1] राजेन्द्र यादव – कहानी स्वरूप और संवेदना, पृ0 – 207

[2] आशा बागड़ी – प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास में पारिवारिक जीवन, पृ0–114–115

और यौन सम्बन्धों को नई नैतिकता प्राप्त हुई, प्रेम के अर्थ और सन्दर्भ बदल गए हैं। प्रेम के क्षेत्र में नारी पुरुष की अपेक्षा भावुक रहती है, किन्तु बदलते जीवन परिवेश में वह अपनी इस भावुक विवशता पर क्षुब्ध भी हो जाती है।''[1] जहाँ वैदिक युग में स्त्री स्वतन्त्रतापूर्वक इच्छित पुरुष का वरण कर सकती थी, वहाँ मध्य युग में स्त्री पुरुष की तृप्ति की वस्तु बन गयी। इस काल में स्त्री के लिए दोहरे मानदण्ड थे – पुरुष के लिए जो मानदण्ड थे वे स्त्रियों के मानदण्डों से भिन्न थे। दोनों के व्यक्तित्व पूर्णत्व की खोज में खण्डित होते जा रहे हैं। ''पति और पत्नी की इकाई को दो अर्द्ध–इकाइयों में बदल दिया है और अब ये अर्द्ध–इकाइयाँ अपने परिवेश से जीवन के संगत मूल्यों और पद्धतियों को चुनकर, साथ–साथ रहते हुए, स्वतन्त्र और परिपूर्ण इकाई बन सकने की दिशा में अग्रसर है।''[2]

स्वतन्त्रता के पश्चात स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आए। ज्ञान–विज्ञान, यौन मनोविज्ञान तथा मानव मन से सम्बन्धित सभी विद्याओं के विस्तार और विकास के परिणामस्वरूप स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों को नयी भूमिका प्रदान की। पर परिवर्तन विवाह पूर्व और विवाहेत्तर दोनों में दिखाई देता है। औद्योगिक सभ्यता, शिक्षा के प्रचार के फलस्वरूप प्राचीन मान्यताओं को झटका लगा। नारी–शिक्षा ने सामाजिक परिवेश को बड़ी तेजी से बदला। घर –परिवार की लक्ष्मण रेखा, चौके चूल्हें की घुटन को छोड़कर नारी की जीवन स्थितियों में बहुत अन्तर आ गया है। घर से बाहर एकाधिक पुरुषों के सम्पर्क में आयी तो उसका अबला रूप समाप्त हो गया।

वर्तमान युग में स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों में बड़ा बदलाव आ गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकसित होने से मूल्य दृष्टि, स्थापित नैतिकता और जीवन परिस्थितियाँ बदल जाने से मानवीय सम्बन्धों के क्षेत्र में नर–नारी के सम्बन्धों में परिवर्तन आना सहज संभावी था। इन परिवर्तित मनःस्थितियों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और जटिलताओं का पैना अंकन कृष्णाजी की

---

[1] ज्ञान आरथाना – बदलते जीवन– मूल्यों में सम्बन्धों की पहचान संचेतना, (मार्च –मई) 1979 पृ0 – 49

[2] कमलेश्वर – नयी कहानी की भूमिका, पृ0– 159

कहानियों में हुआ है जो इनका अपना अकेला निजीपन है जो उन्हें 'नयी कहानी' में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

### 4.2.1 स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में द्वन्द्व

द्वन्द्व शब्द से स्पष्ट है कि दो परस्पर विरोधी वस्तुओं की टकराहट, संघर्ष, कलह को द्वन्द्व कहते हैं। अधुनातन चिन्तन, वैज्ञानिक जीवन दृष्टिकोण और समाज में परिवर्तित मूल्यों के युग में मानवीय सम्बन्धों में दरार उत्पन्न कर दी है। स्वातन्त्र्योत्तर युग ऐसा संक्रमण युग रहा है जहाँ नवीनता के प्रति आकर्षण और परम्परागत के प्रति मोह की भावना रही है। संक्रमणकाल में भारतीय नारी ने अपनी स्थिति को पहचान और घर से बाहर निकल कर स्वतन्त्रता हासिल की और स्वतन्त्र निजी विचारों को अपनाया। पति–पत्नी के सम्बन्धों में तनाव कहीं अर्थ के कारण है तो कहीं अति आधुनिक होने के कारण और कहीं उनके बीच तीसरे की उपस्थिति से है। पति–पत्नी के अतिरिक्त माँ–बेटा, भाई–बहन आदि सम्बन्धों में दरारे आ गई हैं। सम्बन्धों में भावना से अधिक अर्थ का महत्व हो गया है। "सम्बन्धों का आधार मानवीय भावना न होकर स्वार्थ अर्थात आर्थिक धरातल रह गया है। पति–पत्नी, माँ–बेटे, पिता–पुत्री सभी स्वार्थ की दृष्टि से एक दूसरे का मूल्यांकन करने लगे हैं। जो अधिक फलदायी होता है, उसके प्रति विशेष झुकाव रहता है। इस प्रकार सब सम्बन्धों में परम्परागत मर्यादा का अन्त एवं स्वतन्त्रता का प्रादुर्भाव हो चुका है।"[1] अतः आज के युग में सम्बन्धों में कहीं भी स्वच्छता नहीं रह गयी है।

यह स्पष्ट है कि आज का युग वैज्ञानिक युग है, जहाँ परम्परा रूढ़ियों का युग समाप्त हो रहा है और नये विचार पैदा हो रहे हैं। भारतीय समाज ने नारी को स्वतन्त्रता व समानाधिकार दिए पर पुरुष वर्ग की मनःस्थिति इसे स्वीकार न कर पायी। क्योंकि वह नहीं

---

[1] हेमेन्द्र पानेरी – स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ0–197

चाहता है कि उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष की प्रशंसा करे या उससे सम्पर्क बढ़ाए। ऐसी स्थिति में नारी–पुरुषों के सम्बन्धों में तनाव, द्वन्द्व उत्पन्न होता है। कृष्णा सोबती ने नर–नारी के सम्बन्धों मे उदार दृष्टिकोण अपनाया है नारी का पर–पुरुष से सम्बन्ध निन्दनीय नहीं माना है।

नारी पुरुष को स्वतन्त्रता से एक दूसरे को वरण करने का अधिकार है। भारतीय संस्कृति तथा समाज विवाहोत्तर प्रेम को मान्यता नहीं देता। कृष्णा सोबती ने इस प्रकार के सम्बन्धों में नारी की स्थिति का चित्रण किया है। आज की नारी पुरुष के प्रति मानसिक समर्पण के स्थान पर अपनी भावनाओं को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देने लगी है। लेकिन पुरुष शिक्षित एवं आधुनिक होने के कारण भी अपने दर्प को भुला नहीं पाता है। इस स्थिति ने स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में जटिलता पैदा कर दी है। नारी विवाह के पश्चात् अपनी इच्छानुसार रहना चाहती है। वह किसी अन्य पुरुष की ओर यदि आकर्षण अनुभव करती है तो उसे सहज मानकर सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। 'दो राहें : दो बाँहें' कहानी में शोभन और कुन्तल दोनों पति–पत्नी ह। कुन्तल गुप्ता के प्रति आकर्षित होती है। कुन्तल का यह आकर्षण धीरे–धीरे शयन कक्ष तक ले जाता है। जो शोभन के लिए असहनीय हो जाता है – "दबे पाँव बरामदा पार कर ड्राइंगरूम में आ खड़े हुए। कहीं कोई नहीं। न कुन्तल..... न गुप्ता..... पर अतिथि–सत्कार के लिए और कौन स्थान होगा ? ..... क्षण–भर को रुके, फिर गैलरी पार कर बैड–रूम का परदा उठा दिया।.....हाथ खींच परदे के इस पार से जब शोभन लौटे तो शोभन नहीं, बीत गये वर्षों के दिन–रात, घड़ी–पल सब लौट आये..... सब लौट आये.....।"[1] शोभन कुन्तल को अपने सम्मुख गुप्ता को समर्पित होते देखकर विस्मित हो जाते हैं। शोभन कहते हैं कि – "जो प्यार एक दिन उनकी बाँहों में आ लगा था, वह शेष हो गया..... वह शेष हो गया !"[2] इस तरह शोभन और कुन्तल के सम्बन्धों में द्वन्द्व व तनाव पैदा हो जाता है।

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 180

[2] वही – वही पृ0 – 181

'बादलों के घेरे' में रवि मन्नो से प्रेम करता है लेकिन वह मन्नो से शादी नहीं कर पाता है। उसकी शादी मीरा से हो जाती है। लेकिन शादी के बाद भी मन्नो को वह भुला नहीं पाता है। वह मन ही मन मीरा और मन्नो में अन्तर आँकता है – "जिस मीरा को मैंने वर्षों जाना है, वह अब पास–सी नहीं लगती, अपनी–सी नहीं लगती। उसे मैंने छू–छूकर छुआ था, चूम–चूमकर चूमा था, पर मन पर जब मोह और प्यार की उछलन आती है, तो मीरा नहीं मन्नो की आँखें ही सगी दीखती हैं।"[1] रवि मीरा से शादी हो जाने के बाद भी मन्नो को भुला नहीं पाता है। उसकी स्मृति मकड़े के जाले की तरह उसके मस्तिष्क के चारों ओर चक्कर काटती रहती है। विवाहपूर्व के उस आकर्षण के कारण रवि और मीरा के दाम्पत्य जीवन में तनाव पैदा हो जाता है।

मानवीय सम्बन्धों के विघटन, नैतिक मान्यताओं के बदल जाने के कारण स्त्री भी पुरुष के बराबर का स्थान चाहने लगी तो पुरुष के अहम् को ठेस पहुँची। आपसी सम्बन्धों में तनाव और शंका उत्पन्न हो गई।

### 4.2.2 स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में रिक्तता, व्यथा और विसंगति

आधुनिक जीवन स्थितियों की एक बड़ी विद्रूपता है कि पति–पत्नी सम्बन्धों में व्यथा, रिक्तता, विसंगति, निराशा और शून्यता। जिस प्रकार परम्परागत मूल्यों का विघटन हो रहा है उसी प्रकार स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में भी परिवर्तन आ रहा है। इस परिवर्तन में समाज की बदली हुई स्थितियों का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि ज्ञान–विज्ञान, औद्योगिक विकास, पश्चिमी–सभ्यता, सामाजिक, आर्थिक आदि के कारण आधुनिक जीवन में अनेक परिवर्तन आए। दाम्पत्यगत दूरियों, रिक्तता बोध और एकाकीपन के दंश ने अनेक वैवाहिक सम्बन्धों को खोखला और मात्र जीने के लिए मजबूर कर दिया है। दम्पत्ति चुपचाप इस विष को पीने के लिए मजबूर हैं। कहीं यह अलगाव असंतोष और सम्बन्धों में किसी तरह की उपस्थिति के

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 29

कारण है तो कहीं एक दूसरे पर व्यर्थ के शक के कारण है। इन सम्बन्धों की वास्तविकता को कृष्णा सोबती ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ उभारा है।

स्त्री और पुरुष के मध्य चली आ रही पुरानी मानसिकता टूट रही है। पति–पत्नी का परम्परागत रूप क्षीण होता जा रहा है। अब स्त्री पति–परायण, दासी नहीं रह गयी है। नारी का घर से बाहर आना उसके व्यक्तित्व को एक नया मोड़ देता है क्योंकि उनके बीच विवाह–पूर्व या विवाहोपरान्त प्रेम–सम्बन्ध होना स्वाभाविक बन गया है। स्त्री–पुरुष दोनों को इस स्थिति का सामना करना पड़ा। ऐसी स्थिति में सम्बन्धों में रिक्तता आ गयी। 'कुछ नहीं–कोई नहीं' में शिवा रूप की संगिनी है। आनन्द रूप का दोस्त है। वह उनके घर आता–जाता रहता है। शिवा आनन्द से प्रेम करने लगती है। वह रूप की गृहस्थी छोड़कर आनन्द के साथ गृहस्थी बसा लेती है। लेकिन उसकी मानसिकता पत्र द्वारा चित्रित की गई है– "रूप, जो हो ही जाये, उसका फिर कहना–कराना किसके वश होता है। यह नहीं कि तुमसे मोह नहीं था, तुम्हारें दिये घर से प्रीति नहीं थी – पर आनन्द के साथ उठ आये तूफान से जब एक बार घिरी तो डूबकर कहाँ से कहाँ बह गयी।.....एक दिन सब बन्धन, सब सीमाएँ लाँघकर वह बिना देहरी के द्वार पर जा टिका।"[1] शिवा आन्नद के साथ रहकर भी उसे अपना नहीं सकी। वह सोचती है कि मुझे उस दिन रूप ने आने से क्यों नहीं रोका – "रूप, उलाहना नहीं दे रही हूँ, उस तुम्हारे गहरे दर्द का एक क्षण भी अगर उस शाम कुछ और होकर मुझ तक पहुँचता तो अपनी सारी निर्लज्जता समेट मैं तुम्हारे पाँवों पर लौट जाती। एक बार तुम अपना अधिकार तो परखते ! भले ही अपने हाथों मेरी मिट्टी कर डालते।"[2] लेकिन वह मानती है कि शायद भाग्य को ऐसा ही मंजूर था। आनन्द की मृत्यु के पश्चात् वह स्वयं को अकेला महसूस करती है, –"रूप, मैं आज तुम्हारी कुछ नहीं हूँ। आनन्द के बच्चों को आनन्द का सब–कुछ सौंपकर तीन–चार दिन में यहाँ से चली जाऊँगी। फिर न कभी घर देखूँगी..... न घर का सामान, न सामान से लिपटी अतीत की स्मृतियाँ.....। कहाँ रहूँगी, कहाँ जाऊँगी, कुछ पता नहीं।

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलो के घेरे, पृ0 – 81

[2] वही – वही पृ0 – 78

रूप, अब किसे आज जानना है मैं कहाँ हूँ – मैं क्या हूँ ? मैं किसी की कुछ नहीं, कोई नहीं... ।''[1] इस तरह शिवा न रूप की बन सकी और न ही आन्नद के साथ अपना जीवन व्यतीत कर पाती है।

'एक दिन' कहानी में शीला–धर्मपाल पति–पत्नी हैं। लेकिन धर्मपाल शीला को छोड़कर श्यामा से शादी कर लेता है। धर्मपाल शीला के पास आता–जाता नहीं है। शीला पति से अलग रहकर आँसू बहाती रहती है। श्यामा के आ जाने के कारण उनके सम्बन्ध खोखले हो जाते हैं। शीला एक दिन श्यामा के पास आती है तो धर्मपाल भी वहाँ आता है। लेकिन वह शीला से बात नहीं करता है। शीला वहाँ से आ जाती है। शीला सोचती है कि– ''श्यामा कैसे व्यंग से मुस्करायी थी ! जैसे कह रही हो – 'तुम्हारा बड़प्पन आज कितना छोटा हो गया है ।' और वह अन्दर आकर ऐसे ठिठक गये थे जैसे कोई गलत जगह आ गया हो। आदमी कितने बेदर्द होते हैं। बात नहीं, क्या आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे? ..... अपनी बेबसी, पति की निर्दयता और सौत की वह उपहासजनक हँसी आँखों में उतर आयी और अपने हाथों को आँखों पर रखकर शीला सिसकने लगी।''[2] धर्मपाल और शीला के बीच श्यामा के आ जाने के कारण शीला का जीवन व्यथामय हो जाता है।

'बादलों के घेरे' में मन्नो अपने प्रेमी रवि का मीरा से विवाह हो जाने पर स्वयं को अकेली महसूस करती है, और सारी ज़िन्दगी विवाह नहीं करती है। जब उसे पता चलता है कि रवि दूसरी जगह विवाह कर रहा है तो वह उसको अपना स्पर्श भी नहीं करने देती है। वह कहती है –''रवि, जिसे तुम झेल नहीं सकते, उसके लिए हाथ न बढ़ाओ।''[3] इस तरह रोग पीड़ित मन्नो के माध्यम से उन दोनों की व्यथा, विसंगति को चित्रित किया है।

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 84

[2] वही – वही पृ0 – 156

[3] वही – वही पृ0 – 26

वैवाहिक सम्बन्धों में खोखलापन, रिक्तता, व्यथा नैतिक मान्यताओं के विघटन, विवाहेत्तर सम्बन्धों, विवाह–पूर्व सम्बन्धों तथा तीसरे की उपस्थिति के कारण आता है।

## 4.3 स्वावलम्बी, स्वतन्त्र और महत्वाकांक्षी स्त्री

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय नारी नवजागरण तथा शिक्षा के कारण अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई। भारतीय नारी घर की चारदीवारी से बाहर आयी और उसने खुली हवा में साँस लेना शुरु किया तो उसमें नए कर्त्तव्यों के प्रति जागृति आयी। वह पुरुष की दासी न बनकर उसके समकक्ष आने का साहस करने लगी। उसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास तथा स्वावलम्बन की भावना पैदा होने लगी। कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार –"वर्तमान परिवेश में शादी से बढ़कर नारी आर्थिक सुरक्षा चाहती है। जिससे वह जिन्दगी की विकट से विकट समस्या पर दो टूक निर्णय ले सके, अपने नीचे एक पक्की जमीन पा सके और अपने स्वाभिमान की रक्षा कर सके।"[1] नारी की स्वतन्त्रता की तेज गति के मूल में उसका आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना है। स्वावलम्बी बनकर एक ओर रूढ़ियों को नकारने की क्षमता उसमें पैदा हुई तो दूसरी ओर वर्षों पुरानी मर्यादाओं से बाहर निकल अपने जीवन को सार्थक बनाने में लगी, आज वह अपनी दयनीय स्थिति को भाग्य का विधान या समाज की देन नहीं मानती है। वह प्रत्येक शोषण का सामाजिक और कानूनी स्तर पर विरोध करती है। इस प्रकार आर्थिक सुरक्षा ने स्त्री को पुरुष समाज और व्यवस्था की प्रत्येक चुनौती का सामना करने में सक्षम बनाया है।

कृष्णा सोबती की कहानियों के माध्यम से एक स्वतन्त्र चेता आधुनिक नारी का खुला व्यक्तित्व सामने आया है। वह नारी पुरुष के निर्धारित पृथक–पृथक नैतिक मूल्यों को आक्रोश से नकारती हुई पुरुष के समकक्ष सत्ता की स्थापना का प्रयत्न ही नहीं करती बल्कि अपने विचारों के अनुसार अनुसरण भी करती है।

---

[1] कृष्ण बिहारी मिश्र – आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ0 – 28

'न गुल था, न चमन था' की मिस माधुरी एक शिक्षित नारी है। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने के कारण उसके आचार–व्यवहार, रहन–सहन, बोलने आदि के ढंग में अन्तर आ जाता है। वह कान्फ्रेंस में भाग लेती है वहाँ भाषण वगैरा भी देती है। वह कान्फ्रेंस में हुई बातचीत या प्रस्ताव आदि पर बहस करती है। अगर वह प्रस्ताव से असहमत है तो उसका विरोध भी करती है वह शिक्षित होने के कारण स्वतन्त्र निर्णय लेती है। जो बात उसे पसन्द न हो तो उसका विरोध करना वह अपना हक मानती है।

'न गुल था, न चमन था' की नादिरा दस्तूर आधुनिक शिक्षित और आत्मनिर्भर नारी है। वह पश्चिमी सभ्यता में रंगी हुई है और स्वतन्त्र विचारों वाली है।

'बदली बरस गयी' की कल्याणी अपनी माँ के साथ घर छोड़कर आश्रम में रहती है। माँ–बेटी को परिवार के दुर्व्यवहार के कारण घर छोड़ना पड़ता है। कल्याणी सोचती है – "घर में भी पिता की मृत्यु के बाद माँ असंख्य बार रोती थी – दादी और चाची की कलह से निकलकर रात को माँ का रोना कल्याणी को नया नहीं लगता था। .....माँ जो आश्रम में आकर एक ओर बैठ गयी है, वह क्या दादी–अम्मा की उन बातों को भुला देने के लिए ?"[1] माँ साधना में मग्न रहती थी और बेटी की मोह ममता से दूर रहती थी। कल्याणी माँ के साथ रहते हुए भी अपने परिवार वालों को याद करती है। वह आश्रम का जीवन त्याग गृहस्थी बसाना चाहती है। जब वह अपनी इच्छा माँ को बताती है तो माँ कहती है भजन किया करो, शान्ति मिलेगी। लेकिन कल्याणी का मन आश्रम में नहीं लगता है वह आश्रम के महाराज से कहती है–

"कुछ कहना चाहती हूँ महाराज .... "

"कहो कल्याणी !" महाराज का धीर गम्भीर स्वर ।

कल्याणी ने उड़ती निगाह से एक बार माँ की ओर देखा और महाराज की ओर झुककर बोली, "महाराज, अब इस आश्रम में मैं नहीं रहूँगी।"

आश्रम में कोई कष्ट है ?"

कल्याणी ने खुलकर महाराज को देखा – "आश्रम पर मेरी कोई आस्था नहीं .... ।"

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 64

महाराज धक्के से सँभले। 'क्यों' पूछते–पूछते रूके ! पहले की–सी गम्भीर आवाज से बोले, "कहाँ जाना चाहती हो ?"

कल्याणी ने निर्दयता से साध्वी माँ को आँखों से पकड़ा –"मैं अब अपना घर बनाकर रहूँगी।"[1] इस प्रकार कल्याणी विद्रोह करती है। वह अपनी गृहस्थी बसाकर रहना चाहती है। कल्याणी महाराज के सामने झुकी, माँ के सामने झुकी और खड़ी होकर बोली – "जाती हूँ माँ मेरे लिए अब समय है। आश्रम की कोठरी में कल से मेरा दम नहीं घुटेगा – अब मेरा अपना घर होगा।"[2] कल्याणी एक स्वतन्त्र महत्वाकांक्षी नारी है जो आश्रम छोड़कर आ जाती है और खुद अपना जीवन जीने का निर्णय लेती है। वह किसी का हस्तक्षेप अपनी ज़िन्दगी में नहीं चाहती है।

'अभी उसी दिन ही तो' की सकुन्ती पति की मृत्यु के पश्चात् अकेली हो जाती है। उसके बच्चे भी छोटे होते हैं। घर का प्रबन्ध और बच्चों की जिम्मेवारी अब उसके उपर आ जाती है। लेकिन फिर भी सकुन्ती पति के सहयोग के बिना ही सब कुछ करती है। सकुन्ती स्वावलम्बी होकर बच्चों का पालन पोषण करती है। उन्हें पढ़ा–लिखा कर उनकी शादियाँ करती है।

आधुनिक सामाजिक जागृति के कारण नारी वर्तमान की विषम परिस्थितियों से विद्रोह करती हुई आगे बढ़ रही है। स्वावलम्बी, स्वतन्त्र और महत्वाकांक्षी नारी का चित्रण सोबती जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से किया है।

## 4.4 परम्परागत मूल्य-भ्रमों से मुक्त, वर्तमान जीवन की त्रासदी में स्त्री की स्थिति

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में कहानी और कविता में नहीं सम्पूर्ण हिन्दी–साहित्य का एक ही केन्द्रीय विषय रहा है – परम्परागत मूल्य–भ्रमों से मुक्ति। परम्पराएँ समाज की उपज होती हैं और ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती हैं। इसलिए ये परम्पराएँ जीवन मूल्यों को प्रभावित करती रहती हैं। मूल्यों के निर्माण एवं विकास में इसका योगदान रहता है।

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 –67

[2] वही – वही पृ0– 68

निस्संदेह आजादी के पश्चात् परम्परागत मूल्य– भ्रमों से मुक्त होने की छटपटाहट हिन्दी साहित्य में दिखाई देती है। कहीं पुरातन मूल्यों से चिपके रहने का दुराग्रह है तो कहीं नये मूल्यों को स्वीकारने की व्यग्रता है। इन सब क्षेत्रों के मूल्यों में व्यक्ति–स्वातंत्र्य का अधिक महत्व रहा है। एक ओर विश्वासों को जन्म देने वाली नयी चेतना थी दूसरी ओर चेतना को शासित करने वाले पुराने विश्वास। भारतीय जन–मानस परम्परागत मूल्य–भ्रमों से मुक्त होने लगा था किन्तु वर्तमान जीवन में वह अपने आपको बाहरी–भीतरी स्तर पर अन्तर्विरोधों से युक्त पाता था। हर सम्भव प्रयास करने के बावजूद भी वह आधुनिक नहीं बन पा रहा था। परम्परागत मूल्य–भ्रमों से मुक्त भारतीय स्त्री, वर्तमान जीवन की त्रासदी की स्थितियों में जीने मरने के लिए विवश हो गई है। परन्तु वह अपने को पूर्णतः 'आधुनिक' नहीं बना पा रही है।

नारी अपने पूर्णत्व की खोज में प्रयत्नशील है। किन्तु उसकी खोज व्यक्तित्व को खंडित कर रही है। परम्परागत मूल्यों से नारी मुक्त हो रही है, तो दूसरी तरफ नवीन समस्याओं का सामना कर रही है। एक ओर वह पूर्णत्व की खोज में है। दूसरी ओर वह इस मार्ग में आने वाली बाधाओं के बीच दबती हुई, आधुनिक नारी व्यक्तित्व की रक्षा न कर पाने के कारण अन्त में समर्पित होकर रह जाती है। नारी परम्परागत मूल्यों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाई है। कृष्णा सोबती ने आधुनिक नारी को केन्द्र बनाकर उसके जीवन की अनेक स्तरीय समस्याओं का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। 'दो राहें : दो बाँहें' कहानी की मीनल आधुनिक नारी है। वह रोहित से प्रेम करती है। वह अपने घर–परिवार को छोड़कर रोहित के साथ रहती है। मीनल और रोहित बिना शादी किए हुए एक दूसरे के साथ रहते हैं। वह एक दूसरे को समर्पित हो जाते हैं इतना ही नहीं उनका समर्पण अकुँराने लगता है। लेकिन रोहित की साहसहीनता के कारण उसे इस बोझ से मुक्त होना पड़ता है, जब एक बार उसके भाई शोभन दा ने उसे समझाया था, "वह सच हो आया जो एक दिन शोभन दा ने संकेत कर दिया था– "मिनी, रोहित जो कुछ भी रहे हों, छूट लेकर उसे चुकाना तो नहीं ही जानते।"[1] पर तब उसे शोभन दा की इस बात पर बड़ा गुस्सा आया था कि शोभन दा ने रोहित के लिए ऐसा

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 – 185

कहा। रोहित के कारण उसे इस बोझ से मुक्त होना पड़ता हैं– " प्यार की सब कथा, सब व्यथा शेष कर मीनल नर्सिंग होम की सीढ़ियाँ उतरी तो न मन सिहरा, न पाँव काँपे। शान्त हो गयी, स्वच्छ हो गयी देह, धुले कपड़े–सी अड़ी–अड़ी, कड़ी–कड़ी। सादी सफेद साड़ी में लिपटी अपने पुराने संतरगी स्पर्श को जैसे नर्सिंग होम में छोड़ आयी।"[1] मीनल जो स्वयं को आधुनिक समझकर परम्परागत मूल्यों को नकारती है और उन्मुक्त तथा स्वतन्त्र वातावरण मे जीने लगती है। परन्तु वह न आधुनिक बन पाती है न ही परम्परागत मान्यताओं में बद्ध हो पाती है। वर्तमान जीवन में वह निस्सहाय जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाती है।

'दो राहें : दो बाँहें' की कुन्तल पति शोभन के होते हुए भी गुप्ता से प्रेम करने लगती है। वह सोचती हैं कि पति के अलावा अन्य से प्रेम करना बुरी बात नहीं है। कुन्तल गुप्ता के प्रति समर्पित हो जाती है। इस बात का पता जब शोभन दा को लगता है। तो उसे बहुत बुरा लगता है। शोभन दा घर छोड़कर आ जाते हैं। कुन्तल अकेली रहती है। शोभन दा उसे माफ नहीं करते हैं। इस तरह कुन्तल की शेष ज़िन्दगी त्रासदी में छटपटाने के लिए बाध्य हो जाती है।

'कुछ नहीं–कोई नहीं' की शिवा एक ऐसी नारी है जो शादीशुदा है। उसके पति दौरे पर जाते रहते हैं। वह घर में अकेली होती है। इस बीच उसके पति का दोस्त आनन्द आता रहता है। उन दोनों में प्रेम हो जाता है। वह पत्र के माध्यम से रूप को बताती है –"तुम्हें दो दिन बाद दौरे से लौटना था। आनन्द घन्टों मेरे पास बैठे थे ..... वह उमड़ता–सा विवश–सा तुम्हारे मित्र का चेहरा– चाइना के ठन्डे लगते प्यालों में कॉफी उड़ेलती–उड़ेलती काँपकर रह गयी। आनन्द ने कॉफी गिरते देख बढ़कर हाथ को थामना चाहा, कि हाथ छूते ही ठहर गये।.... आनन्द मेरी ओर घिरे, मैं उनकी ओर।"[2] शिवा रूप का घर छोड़ आनन्द के घर आकर रहने लगती है। लेकिन वह सोचती है कि रूप ने घर छोड़ते समय मुझे क्यों नहीं रोका ? उसे आनन्द के पास रहते हुए भी रूप की याद सताती है। शिवा को अपनी गलती का अहसास होता

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0 –185

[2] वही – वही पृ0 –82

है। वह पत्र द्वारा अपनी मानसिकता व्यक्त करती है –"रूप, जैसे चलते–चलते अनायास दुर्भाग्य हाथ लग जाता है। वैसे ही अगर कभी सौभाग्य की छाँह भी पकड़ाई में आ पाती ! पर अब मुझे ही किसके लिए आस बाँधनी है ? कोई आगे नहीं, पीछे नहीं।"[1] इस तरह शिवा परम्परागत मूल्य–भ्रमों से मुक्त होने का दंभ भरती है। लेकिन उसको त्रासदी का सामना करते हुए विवश जीवन जीने को मजबूर होना पड़ता है क्योंकि आनन्द की मृत्यु के पश्चात् वह अकेली रह जाती है ओर न ही अब रूप के साथ रहने का साहस कर पाती है।

स्त्रियाँ चाहे परम्परागत मूल्य–भ्रमों से मुक्त हो। लेकिन उन्हें जीवन की त्रासदियों को भोगने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

## 4.5 जिजीविषा के रहस्यों की खोज में रत स्त्री

जिजीविषा वास्तव में जीने की उत्कट लालसा या आशा है। जो प्रत्येक इन्सान या प्राणी का स्थायी भाव है। "जिजीविषा समझौता नहीं करती, उसका यदि कोई समझौता है तो खुद अपने से। क्योंकि वह किसी लौकिक या पारलौकिक शक्ति से प्राप्त नहीं होती, वह स्वतन्त्र व्यक्ति में सिर्फ होती है। यह जिजीविषा ही निणर्य की शक्ति देती है .... और लोगों के संस्कारों में बैठी मृत्यु को भी छलकर अपने अस्तित्व का 'होना' साबित करती है।"[2] परिस्थिति कैसी भी हो पर इन्सान हर स्थिति में जीना चाहता है, मरना नहीं।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् नवनिर्माण जीवन के सपने देखे थे, आजादी के बाद पूरे नहीं हो पाये। धीरे–धीरे सपने टूटने लगे। लोगों में स्वार्थपरता, बेईमानी, दुराचार पैदा हो गया। इतनी तेजी से माहौल बदल गया कि पुरानी मान्यताएँ अवमूल्यित होने लगी। व्यक्ति अपने हित और अस्तित्व बचाने में लग गया। वहीं से आधुनिक व्यक्ति के जिजीविषा के रहस्यों की खोज की शुरूआत होते दिखाई देती है, मृत्युबोध, संत्रास की यातनाओं को भोगता हुआ जिन्दगी के रहस्यों को पाने की कोशिश कर रहा हैं वह जीना चाहता है। जीने की दुर्दम्य इच्छा

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0– 84

[2] कमलेश्वर – नयी कहानी की भूमिका , पृ0 – 182

मृत्यु को झेलने की क्षमता प्रदान करती है। ज़िन्दगी को जीना इतना आसान नहीं। परन्तु फिर भी जीने वाला प्रत्येक व्यक्ति जीने के रहस्यों को ढूँढता है और अकेलेपन के एहसास को भूलने का प्रयत्न करता है। अपने इस अकेलेपन को दूसरों के साथ जोड़ देता है। इस तरह हर आदमी अपने लिए जीता हुआ दूसरों के लिए भी जीने लगता है।

ज़िन्दगी की कई विसंगतियों को भोगती हुई नारी बहु–स्तरीय संत्रास, कुण्ठा, दिशाहीनता, अजनबीपन का अनुभव कर रही है। जीवन के अभावात्मक स्वरूप को झेलती हुई भी जीना चाहती है। उसके अस्तित्व की दुर्दम्य आकांक्षा उसके मृत्युबोध को क्षमता बोध बना देती है। नारी जिन्दा रहने के लिए ज़िन्दगी की हर परिस्थिति से समझौता कर लेती है। "विषम जीवन–स्थितियों से जूझते हुए इन कथा–पात्रों में एक ऐसी दुर्दम जिजीविषा दिखाई देती है जैसी किसी कठोर चट्टान की संधियों को भेदती हुई किसी पौधे की अदम्य जीवनी–शक्ति हो।"[1] जीवन जीने की विषम स्थितियाँ नारी के जीवन में फैले घोर नैराश्य का परिचय देती हैं फिर भी नारी इस नैराश्य के कारण जीवन के प्रति अनास्था नहीं रखती, अपितु एक गहन आस्था रखती है। ज़ब भी नारी के अस्तित्व पर संकट आता है नारी हर सम्भव प्रयत्न करती हुई अपने आपको बचाना चाहती है और स्वरक्षा में रत हो जाती है। नारी भयंकर से भयंकर पीड़ा सहन करती हुई भी जीवित रहना चाहती है। नारी अपने व्यवहार में जिजीविषा की इस नैसर्गिक प्रबलता से परिचालित होकर अनुकूल–प्रतिकूल स्थितियों को स्वीकारती–नकारती जूझती हुई अपनी मान्यताओं और उपलब्धियों को इस जिजीविषा पर न्यौछावर कर देती है। जिजीविषा के साथ किसी भी प्रकार का समझौता उसका प्रथम, अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण समझौता है। कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी की यही दुर्दम्य जिजीविषा दिखाई देती है।

'बहनें' कहानी में मंझली पति की मृत्यु के पश्चात् अकेली रह जाती है। उसकी कोई भी औलाद नहीं है। किन्तु अपने घर–परिवार में अन्य लोगों के होने के बावजूद भी वह स्वयं को अकेली महसूस करती है। वह अपने पति के वियोग के उपरान्त भी अपने रिश्तेदारों के यहाँ भी आती जाती रहती है। वह बड़ी बहन के बेटे की शादी में भी जाती है। वह

---

[1] पुष्पपाल सिंह – समकालीन कहानी युग बोध का संदर्भ, पृ0– 98

शादी के बाद कुछ दिन छोटी बहन के घर रहती है। उसके बाद ससुराल आ जाती है। वह अकेली और दुःखी है। लेकिन प्रतिकूल स्थितियों में भी जीने की लालसा रखती है और जिजीविषा के रहस्यों की खोज में रत है।

'बदली बरस गयी' कहानी में कल्याणी की माँ विधवा हो जाने पर ससुराल वालों के बुरे व्यवहार के कारण आश्रम में आ जाती है। क्योंकि उसमें अभी जीने की इच्छा है। उसकी एक छोटी बेटी है। वह आश्रम में तपस्विनी का भेष धारण कर लेती है। वह मोह–माया के बन्धन से दूर जीवन व्यतीत करती है।

'दोहरी साँझ' की जया महेन्द्र से प्यार करती है। लेकिन जया की शादी किसी कारणवश महेन्द्र से नहीं हो पाती है। उसकी शादी किसी अन्य जगह हो जाती है। उसका एक बेटा होता है। लेकिन जया महेन्द्र को भुला नहीं पाती है। परन्तु फिर भी जया उसके प्यार के सहारे जीती है।

'सिक्का बदल गया' कहानी में शाहनी एक स्वाभिमानी नारी है। वह हवेली में अकेली ही रहती है। वह शेरे को अपनी मातृत्व की छाया में पालती है। लेकिन शेरा उसका कत्ल करने का अपने साथियों से वायदा करता है। भारत–पाक विभाजन के पश्चात् शाहनी हवेली छोड़कर कैम्प में रहने लगती है। कैम्प में उसे अपने घर की याद आती है। लेकिन उसमें जिजीविषा की इच्छा है। इसलिए उसे कैम्प में ही रहना पड़ता है।

'गुलाबजल गँडेरियाँ' की धन्नो अभावात्मक जीवन को ढोते रहने की मजबूरी में जीवन व्यतीत करती है। गरीबी से घिरी हुई भी जीने की इच्छा रखती है।

अनास्थापूर्ण, निराशापूर्ण, भय आदि में भी जीवन जीती हुई नारी में जिजीविषा है संघर्ष करने की शक्ति है। हारी व थकी हुई निष्क्रिय प्रवृत्ति वाली नहीं है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती ने कहानियों में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। इन्होंने नारी की विविध जीवनगत विसंगतियों को चित्रित किया है। मोहभंग से उपजी मूल्यहीनता कहानियों में स्पष्ट हुई है। इनकी कहानियों में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का विघटन दर्शाया गया है। मानवीय मूल्य और नैतिक मूल्य बिल्कुल लुप्त तो नहीं हुए हैं लेकिन उस पर अंधकार के बादल जरूर मंडरा रहे हैं। लेकिन जिजीविषा अभी

शेष है। पारिवारिक सम्बन्धों में संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है। पति–पत्नी सम्बन्ध पहले की तरह मधुर नहीं रहे हैं। सम्बन्धों में तनाव, टूटन आया। ज़िन्दगी धीरे–धीरे यान्त्रिक बनती जा रही है। सामाजिक रिश्ते, सम्बन्ध और मानवीय मूल्य टूटते जा रहे हैं। सम्बन्धों में शिथिलता आयी। अपनत्व का भाव समाप्त हो गया है। नारी की उभरती नई चेतना ने जीवन मूल्यों को तोड़ा। आज वह अपने नए अस्तित्व तथा व्यक्तित्व की खोज में है। इनकी कहानियों में नारी जीवन की अनेक विडम्बनाओं, आशाओं, निराशाओं आदि का चित्रण हुआ है। आत्मनिर्भर और आत्मनिर्णायक होने की स्थितियों के फलस्वरूप उसकी मानसिक स्थितियों और पुरुष के साथ उसके सम्बन्धों में बदलाव आया। यही कारण है कि उनकी कहानियों में स्त्री–पुरुष के आपसी सम्बन्धों के संक्रमण, द्वन्द्व का ही चित्रण नहीं हुआ है बल्कि पुरानी और नयी परिस्थितयों के बीच नारी किस तरह जूझती है आदि का वर्णन भी हुआ है। आत्मनिर्भर और परम्परागत मूल्य–भ्रमों से मुक्त होने के बाद भी नारी को त्रासदी का सामना करना पड़ता है परन्तु फिर भी उसमें एक दुर्दम्य जिजीविषा है।

# पंचम अध्याय : कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी-चेतना एवं विश्लेषण

हिन्दी उपन्यास नारी जीवन और उसकी विभिन्न समस्याओं के प्रति सजग रहा है। उपन्यास एक विशेष सुरुचिपूर्ण ढंग से जीवन के विस्तृत तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कराता है। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में –"प्राचीन काल में जो स्थान महाकाव्य का था, वही स्थान आज उपन्यास का है, क्योंकि वह जीवन को अधिक निकट से देखता और उसका विश्लेषण करता है।.... साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा उपन्यास में जीवन की यथार्थता, सत्यता, आवश्यकताएँ और स्वतन्त्रता, व्यक्तित्व और मूल्यों का निरूपण अधिक होता है।"[1] वस्तुतः उपन्यास वह माध्यम है जिसमें मनुष्य जीवन के व्यापक सन्दर्भों को स्पर्श करने और यथार्थ जीवन के अधिक निकट होने के कारण नारी की स्थिति को अंकित करता है। आज की गुंफित संघर्षमय चेतना को मुखरित करने का महत्वपूर्ण प्रयास उपन्यासों ने किया है।

कृष्णा सोबती उत्कर्षकाल की उदीयमान उपन्यास लेखिका हैं। उपन्यासों को लिखकर उन्होंने लेखिकाओं द्वारा कथा–साहित्य में एक अभाव की पूर्ति की है। परिमाण में अल्प होने पर भी उनके कथा–साहित्य ने शीघ्र लोकप्रियता प्राप्त कर ली है क्योंकि लेखिका में मौलिक सृजन की प्रतिभा है और लेखनी में विशेष बल है। हिन्दी उपन्यासों में नारी–चेतना के स्वर एक उद्घोष के रूप में ध्वनित हुए हैं। भारत में नारी उत्थान और जागरण की भावना 20 वीं शती से आई है। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी–चेतना और जागृति का निरूपण विविध प्रकार से हुआ है। नारी जीवन की चेतना के समग्र आयाम, परिवेश की जटिलताओं को आत्मसात किया है। एक ओर नारी जीवन से सम्बन्धित प्रमुख,समस्याओं को उभारा है तो दूसरी तरफ नारी के स्वाभिमान प्रतिशोधभाव, सहनशीलता, मातृत्व ममत्व, पातिव्रत्य, मर्यादा और महत्ता का भी सशक्त चित्रण किया है।

---

[1] लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ, पृ0 –11

उपन्यास आज के युग की ऐसी आवश्यकता बन गयी है जिसकी पूर्ति करने में अन्य विधाएँ असमर्थ पाती हैं। क्योंकि बहुआयामी तथा व्यापक चित्रण उपन्यास साहित्य में ही होता है। मानव–सम्बन्ध ही इन उपन्यासों की नींव है। सम्बन्धों में नारी–पुरुष के सम्बन्ध प्रमुख हैं। यदि उपन्यास में नारी न हो तो उसकी नींव लड़खड़ा जाएगी। नारी के मानस में जो उथल–पुथल हुई है उसको उपन्यासों में उभारा है।

## 5.1 **मित्रो मरजानी**

शरीर की सहज माँग का खुला चित्रण इस उपन्यास में किया है। 'मित्रो मरजानी' कृष्णा सोबती का वह उपन्यास है जिसके कथ्य और चरित्र ने एक लम्बे अरसे तक हिन्दी–साहित्य में धूम मचा दी थी। मित्रो जैसा नारी चरित्र समूचे हिन्दी कथा–साहित्य में दुर्लभ है। सुमित्रावन्ती अर्थात मित्रो मरजानी के द्वारा जो दृढ़, निर्भयी और वाचाल किन्तु साथ ही कोमल तथा बेझिझक चरित्र का निर्माण कृष्णा सोबती ने किया है वह सम्पूर्ण हिन्दी जगत् उपन्यास साहित्य में अनूठा है। मित्रो हिन्दी कहानी की हाड़–मांस की ऐसी पहली नारी है जो युग–युग से ओढ़ाए नैतिक मूल्यों को तार–तार कर अपनी ज़िन्दगी जीती है। बाहर से पत्थर के समान दिखाई देने वाली मित्रो भीतर ही भीतर अत्यन्त कोमल और मुलायम है। "न तो वह रवीन्द्र की अश्रुमयी है और न शरत् या जैनेन्द्र की विद्रोहिणी, बल्कि वह तो मात्र मांस–मज्जा से बनी एक ऐसी नारी है जिसमें स्नेह भी है ममता भी, माँ बनने की हौंस भी है और एक उद्दाम वासना–सरिता भी। उसे न किसी आदर्श का मोह है और न समाज तथा ईश्वर का भय वस्तुतः वह नारी के सभी पुराने बिम्बों के खिलाफ एक नया आकर्षण है।"[1]

मित्रो एक ऐसी नारी की कहानी है। जिसमें अपने यौवन की अमिट प्यास है। जिस वातावरण में पली है उसे वासनाओं ने सींचा है। वह न तो सास–ससुर की सुनती है और न जेठ जिठानी की लाज रखती है। उसे अपने दाम्पत्य जीवन में पति से सन्तुष्टि

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0 – आवरण पृष्ठ से

नहीं मिल पायी है। सरदारी लाल उसकी उद्दाम वासना को शान्त नहीं कर पाता और वह बड़े खुलेपन से अपने प्यासे रह जाने का उल्लेख करती है– "सात नदियों की तारू, तवे–सी काली मेरी माँ, और मैं गोरी चिट्टी उसकी कोख पड़ी। कहती है इलाके के बड़भागी तहसीलदार की मुँहादरा है मित्रो। अब तुम्हीं बताओ, जिठानी तुम–जैसा सत–बल कहाँ से पाऊँ–लाऊँ ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता।.... बहुत हुआ हफ्ते– पखवारे.... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास कि मछली–सी तड़फती हूँ।"[1] मित्रों के हाव–भाव और अंग–अंग से वासना की ही गंध नहीं आती, बल्कि वह उसे स्पष्ट कह देने में नहीं हिचकती, "मँझली ने पहले सरदारी की ओर देखा फिर बनवारी की ओर मँझली माथे पर हाथ मार हँसी–बुरेमाथे वाले ! मर्द जन होते तो या चटखारे ले–ले मुझे चाटते या फिर शेर की तरह कच्चा चबा डालते।"[2] मित्रों एक ऐसी नारी है। जिसमें जवानी की अबूझ प्यास है और उसे अपनी जवानी पर बहुत नाज है। "एकाएक आँखों में कोई मर्द उतर आया। खींच गले की ओढ़नी उतारी। कुरता, फिर सलवार उतार फेंक दी और हँस–हँस बोली– बनवारी कहता है, मित्रो, तेरी देह क्या निरा शीरा है शी–रा !"[3]

मित्रों की प्यासी आत्मा भीतर ही भीतर रोती रहती है। उस जैसी 'दरियाई नार' के किस्से कोई नहीं जानता। उसे अपने पति–मर्द में एक ऐसे प्रेमी की तलाश है जो उसे पूर्णतः मर्दित करे किन्तु उसे इसके अभाव में पुराने यार याद आते हैं, "मेरा यह बेअकल मर्द–जना यही नहीं जानता कि मुझ–सी दरियाई नार किस गुर से काबू आती है ! मैं निगोड़ी बन–ठनके बैठती हूँ तो गबरू सौदा–सुल्फ लेने उठ जाता है। अरे, जिसने नार–मुटियार को सधाने की पढ़ाई नहीं पढ़ी वह इस बालों की बलूगड़ी को क्या सधाएगा।"[4] जब उस पर सरदारी लाल आरोप लगाता है कि उसके सम्बन्ध दूसरे पुरुषों

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0– 19

[2] वही – वही पृ0– 16–17

[3] वही – वही पृ0–17

[4] वही – वही पृ0– 30–31

के साथ हैं तो वह सबके सामने अपने जेठ से कहती है –"सच तो यूँ , जेठ जी कि, दीन–दुनिया बिसरा मैं मनुक्ख की जात से हँस–खेल लेती हूँ। झूठ यूँ कि खसम का दिया राजपाट छोड़ मैं कोठे पर तो नहीं जा बैठी ?"[1]

मित्रो अपने पति से पूर्ण तृप्ति नहीं पाती, इसी कारण वह दूसरे से हँसने बोलने में कोई लाज महसूस नहीं करती, वह अपनी सास से भी ऐसी बाते करने में शर्म महसूस नहीं करती है। घर में माँ जब सरदारी और मित्रो की आपस में बनते नहीं देखती है तो अपने बड़े बेटे बनवारी से पूछती है – "बहू तो तुम्हारे भाई को गाली निकालती है। तुमसे पूछती हूँ , बेटा, भाई तुम्हारा संग–सेहत में तो पूरा है ?"[2] बनवारी जबाव देता है– "सरदारी में कोई दोष नहीं अम्मा ! यह जरनैली नार छोटे–मोटे मर्द के बस की नहीं।"[3] मित्रो पति से अतृप्त है और किसी की सहानुभूति स्वीकार नहीं करती। बल्कि लावे की भान्ति फूट पड़ती है – "मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ , पर, अम्मा, अपने लाडले बेटे का भी तो आड़तोड़ जुटाओ ! निगोड़े मेरे पत्थर के बुत में भी कोई हरकत तो हो।"[4] मित्रो की कामेच्छा पति से तृप्त नहीं होती इसलिए वह यहाँ, वहाँ ताँक–झाँक करती रहती है। जिसके कारण घर के सदस्यों को आपत्ति होती है। उन्हें मित्रो का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता है। बनवारी माँ को समझाता हुआ कहता है –" दस–बीस आँखें मँझली बहू के बहाने इस घर पर लगी रहें, अम्मा, यह अच्छा नहीं। कुछ ऐसा साधों, प्यार–मनुहार से कि दो–चार महीने अपनी माँ के यहाँ लगा आए।"[5] सास जब उसे मायके भेजना चाहती है तो मित्रो को मुँह माँगी मुराद मिल गई। मन–ही–मन जाने पीहर के किन–किन मित्र प्यारों को याद किया और उछाह से सास के आगे माथा टेक कर इठलाकर कहा –"बड़ी

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0– 35

[2] वही – वही पृ0– 69

[3] वही – वही पृ0– 69

[4] वही – वही पृ0 – 72

[5] वही – वही पृ0– 70

सरकार ! तुम्हारा कहा सिर माथे ! जो कहोगी, वैसा ही करूँगी। अपने कन्त से आनन्द पाने को महीना –दो क्या, मैं पूरे चौबीस पक्ख व्रती रह लूँगी।''[1] वह बिना झिझक के अपने सभी मित्र प्यारों को याद करती है।

मित्रो की सास उसे मायके भेज देती है पर मित्रो की माँ के लच्छन ठीक नहीं। मित्रो की रसिकता उसकी माँ बालो की देन है। बालो जवानी में ही विधवा हो गई थी। बालो के अनेक बड़े–बड़े अफसरों से सम्बन्ध थे। विधवा माँ के रसिक जीवन से मित्रो ने रसिकता सीखी। उसकी माँ न जाने कितनो का भोग कर चुकी है। बेटी को अपनी माँ से जलन होती है। सरदारी लाल जैसा सरल, अरसिक पति उसकी प्रणयाकांक्षा को पूर्ण नहीं कर पाता है। मित्रो अपनी माँ से कहती – ''बीबो, मुझ गरीबनी से क्या होड़ ? तुम्हें तो नित नए रास–रंग और मित्रो बेचारी हर दिन अपने इसी एक निठल्ले के संग।''[2] मित्रो काम असंतुष्टि से पीड़ित है। उसकी प्यास माँ पहचान लेती है वह मित्रो से कहती है–''मेरी भोली मित्रो, मुझे तो तू अंग–अंग से प्यासी–तिरहाई जापती है !''[3] बालो अपनी बेटी मित्रो को अपने प्रेमी के पास भेज देती है, लेकिन बालो इसे सहन नहीं कर पाती है वह किसी ओर के साथ उसे देख नहीं सकती। यह उसका अपमान है बालो मित्रो को वापिस बुला लेती है। अपने प्रेमी के पास जा रही मित्रो को देख बालो का दिल ईर्ष्या और दुःख से जल उठता है। माँ की आँखों में वासना देख मित्रो उसकी नीयत पहचान लेती है। वह कहती है– ''तू सिद्ध भैरों की चेली, अब अपनी खाली कड़ाही में मेरी और मेरे खसम की मछली तलेगी ? सो न होगा, बीबो कहे देती हूँ।''[4] मित्रो समझ जाती है कि बालो की आँख सरदारी लाल पर है। बालो अनेक पुरुषों से जुड़ने के पश्चात् अकेली रह जाती है माँ की ऐसी स्थिति देखकर मित्रो अन्य पुरुषों को पाने के लिए अपने पति को खोना नहीं चाहती

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0– 73
[2] वही – वही पृ0– 88
[3] वही – वही पृ0 – 88
[4] वही – वही पृ0– 94

है। अपने अधिकार को छिनते देख वह पति के पास लौट आती है। उसके मन में दबा हुआ पति के प्रति प्यार जाग उठता है और पति के प्रति एकनिष्ठ रहती है।

कृष्णा सोबती ने इस उपन्यास में काम–भावना को प्रस्तुत किया है। काम–भावना एक ऐसी भावना है, जो पुरुष में ही नहीं नारी में भी उसी रूप में पायी जाती है। मित्रो एक ऐसी नारी है जो जीवन की इस हकीकत को बयान करती है। उसकी बातों में अश्लीलता नहीं जीवन का सत्य है। उसमें कामेच्छा ही नहीं, वरन सुकोमल नारी हृदय भी है। सन्तान की चाहत भी है। यद्यपि मित्रो जैसी नारी का चित्र खींचना एक कठिन कार्य है पर कृष्णा सोबती ने अपनी कलम के चमत्कार से जिस साहस व स्पष्टवादिता का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है।

## 5.2 डार से बिछुड़ी

इसमें परम्पराओं में जकड़ी पाशो की दुःख–गाथा का सजीव चित्रण है। पाशो इस उपन्यास की प्रमुख पात्रा है। सारा घटना चक्र उसी के इर्द–गिर्द घूमता है। जीवन के कई उतार–चढ़ावों को पार करती हुई पाशो के मार्मिक जीवन को बड़ी सहजता से चित्रित किया है। पाशो की कहानी एक शोषित नारी की कहानी है जिसका बचपन से अन्त तक शोषण ही होता रहता है। बचपन में माँ के भाग जाने के पश्चात् वह नानी के घर रहती है। उसकी माँ शेख के घर बैठ गई और शेख जी मुसलमान हैं। उस भोली–भाली लड़की पर जरूरत से ज्यादा सख्ती बरती जाती है ताकि वह भी अपनी माँ की तरह न करे। माँ के कारनामे का परिणाम पाशो को भुगतना पड़ता है। नानी ने पुचकार कर भरे गले से कहा –"इस मुँह उसका नाम न लूँ बिटिया, उसी की करनी तुझे भरनी थी। तेरे दोनों मामू उसे कितना माानते थे, यह लोक–जहान जानता है, पर वह नासहोनी तो घर–भर का मुँह काला कर गयी।"[1] उसे मामा, मामी, नानी सभी ताने देते रहते हैं। अपनी माँ के कारण कई बार उसे मामा–मामी से मार भी खानी पड़ती। मामी लानत फटकार देती

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0–11

हुई कहती है,– "अरी नरकों में वास हो तेरा और तुझे जन्मनेवाली का ! उस शोहदे से आँख लड़ाने चली ! जैसी कुलच्छनी माँ थी .... ।"[1] उसे किसी पुरुष से बात करना तो दूर आँख उठाकर देखने का अधिकार तक नहीं है। उसे हर समय शक की निगाहों से देखा जाता है और इन्हीं बेड़ियों में जकड़ी, परम्पराओं और रूढ़िग्रस्त समाज में बंधी बेबस युवती आखिरकार भटक ही जाती है। एक दिन पाशो पर करीम को रुमाल देने का इल्जाम लगाया जाता है। "कब मिली थी करीम से, कब दे आयी थी उसे रुमाल अपना !"[2] गाली गलौज और मारना पीटना ही उनकी दिनचर्या बन गयी। उन्हें शक हुआ कि पाशो के 'पर' निकल रहे हैं। उसे जहरमोहरा खिलाने की कोशिश की जाती है और अगले दिन मेले में ठिकाने लगाने की बात की गई। लेकिन पाशो को सब कुछ पता लग जाता है। घरवालों की मार सहते–सहते वह तंग आ जाती है और वह निश्चय करती है अपनी माँ के पास रहने का। उसी रात भागकर वह अपनी माँ के पास चली जाती है। उसे वहाँ माँ से प्यार मिलता है। उसके मामा उसको ढूँढ़ते–ढूँढ़ते शेखों की हवेली तक पहुँच जाते हैं और ललकारने लगते हैं– "रब्ब को हाज़र–नाज़र जान यह कह दो शेख कि लड़की इस घर में नहीं।" छोटे मामू हाथ फैला–फैला चिल्लाये–

"इस घर से खत्रियों की जायी निकलेगी या फिर उनकी अर्थी !"[3]

परन्तु पाशो उस घर से तभी निकलती है जब उसे पालकी में बिठा कर ससुराल पहुँचा दिया जाता है। वहाँ शेख जी की उमर के दिवान को पति के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। दिवान जी के घर में उसे खूब प्यार मिलता है। उसे 'मालन' कहकर बुलाया जाता है। पाशो को एक दिन पुत्र प्राप्ति होती है और पाशो छोटे दिवान को पाकर बहुत खुश होती है। धीरे–धीरे पाशो पिछले दिनों को भूलती जाती है। परन्तु भाग्य को उसकी खुशी मन्जूर नहीं होती है और एक दिन पाशो की सारी खुशियाँ उससे छिन जाती हैं। दुर्भाग्य की मार

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0 –15

[2] वही – वही पृ0– 16

[3] वही – वही पृ0–43

कुछ ऐसी पड़ी कि फिर पाशो संवर न सकी, भाग्य ने दिवान जी को उससे हमेशा के लिए छीन लिया और उसके सुखी संसार को एक झटके में तोड़ दिया। दिवान जी की मृत्यु के पश्चात् पाशो फिर वही पाशो बन गयी जिसे सदा दूसरों की प्रताड़नायें सहन करनी पड़ी।

भाग्य की मारी पाशो मौसी के घर रहकर लोगों की नजरों से बच नहीं पाती है। उसका रूप यौवन ही उसका शत्रु बन गया। बरकत जबरदस्ती पाशो को पाना चाहता है। आखिरकार एक दिन बरकत उसकी इज्जत लूटने में सफल हो जाता है। पाशो बिना इच्छा के समर्पण करती हुई स्वयं को काठ महसूस करने लगती है–"और हाथ बढ़ा मेरा पल्ला खींच लिया। दुपट्टा छोड़ हाथ पकड़ लिया, हाथ छोड़ मुझे अपनी ओर खींच लिया, तो भी न काँपी, न चिल्लायी, ऐसी पड़ी रही कि पानी की मार से गली–गलाई काठ होऊँ।"[1] बरकत दिवान पाशो को एक लाला के हाथ बेच देता है और पाशो की बर्बादी का सिलसिला शुरु हो जाता हैं। पाशो का बेटा मौसी के पास रह जाता है। बेटे का दुःख सहन करती हुई पाशो एक बार फिर भाग्य से समझौता करती हैं वह लाला और उसके तीनों पुत्रों की चाकरी करती है..... "बारी–बारी से तीनों हुक्म चलाते और मैं सिर झुका बजाती। बड़ी–बड़ी भारी गोरी देहें देख किसी भी काम को 'ना' करते न बनता।"[2] लाला के तीनों पुत्र ऊँचे तगड़े और जवान हैं। उनके सामने बोलने की हिम्मत नहीं होती। लाला का मंझला बेटा पाशो पर आसक्त हो जाता है। – "नवेली"!

आधी रात यह कण्ठ। सुध–बुध भूल गयी। कुण्डी खोली कि दो गीली बाँहों ने समेट गले से लगा लिया।

"नवेली .....नवेली.....!"

होंठों से उठा स्वर होंठों में डूब गया। बाहर बादल गरजते रहे, पानी बरसता रहा और मैं पड़ी–पड़ी जोहती रही– कब बाँह खुले....

तन से लगी जाने किन पानियों तैरती थी कि मँझले जगाकर बोले –

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0– 64–65

[2] वही – वही पृ0 – 74

"नवेली, तुम्हें अपने संग ले जाऊँगा। तुम मेरे पास रहोगी..... ।"[1]

मँझला एक दिन पाशो को लेकर चला जाता है। पाशो मंझले के साथ रहने लगी है। मंझला पाशो को 'नवेली' कहकर बुलाता है। थोड़े दिन नवेली बनने के बाद मंझला लड़ाई में चला जाता है। वहाँ वह मारा जाता है और नवेली फिर अकेली रह जाती है। वह दर–दर भटकने लगती है। युद्ध का भयानक दृश्य देख कर, कटी, फटी लाशें देख बेहोश हो जाती है।–"हाथ उठाया कि कहूँ मुझे बचा लो.....मुझे बचा लो....पर घिग्घी बँध गयी, सिर चकराया और आँखों के आगे अँधेरा छा गया... ।"[2] जब होश आया तो स्वयं को किसी सरदार परिवार के घर में पाती है। वहाँ उसे एक भाई के रूप में मिलता है। वह युद्ध में चला जाता है। वह वहाँ मारा जाता है। वह स्वयं को मनहूस समझती है। जिस घर जाती है वहाँ कुछ न कुछ तबाही हो जाती है। अभी युद्ध का क्रूर मंजर आँखों से उतरा भी न था कि फिरंगी घरों में पहुँच कर लूटपाट करने लगे और औरतों को अंग्रेज़ों के दरबार में पेश होना पड़ा। पाशो फिरंगियों से भी बच नहीं पाती, उसे इनका भी शिकार होना पड़ता है।

इस उपन्यास में पाशों की दर्दनाक स्थिति को दर्शाया गया है। उसकी नानी का कहा पग–पग पर सही नज़र आता है – नानी झूठ न कहती थी – एक बार का थिरका पाँव ज़िन्दगानी धूल में मिला देगा। सच होके निकली नानी की वाक्–वाणी।"[3] ऐसा ही हुआ। पाशो का एक बार पाँव थिरका, तो फिर ज़िन्दगी भर वह भटकती रही।

## 5.3 सूरजमुखी अँधेरे के

इसमें एक ठन्डी नारी के कुण्ठा ग्रस्त जीवन का चित्रण किया गया है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में स्त्री–पुरुष के परस्पर सम्बन्ध और यौन अतृप्ति से पीड़ित नारी की मनोग्रन्थियों को चित्रित करने वाला कृष्णा सोबती कृत 'सूरजमुखी अँधेरे के' एक

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0 – 80 – 81

[2] वही – वही पृ0 – 90

[3] वही – वही पृ0 – 109

बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में एक ऐसी लड़की के अनुभवों की कहानी है जो बचपन में बलात्कार का शिकार हो जाती है। इस दुर्घटना के कारण वह अपने आस–पास के वातावरण को अपने अनुकूल नहीं पाती है बचपन में किसी ने उसके साथ बुरा–काम किया था और इस अनुभव ने जैसे उसके भीतर की सारी कोमलता, सपनों और नारी सुलभ भावनाओं को कुचल कर रख दिया। इसी कारण वह दैहिक सुख–भोग के प्रति जड़ हो गयी। किसी युवा पुरुष के शरीर सम्पर्क में आने पर उसका अपना शरीर जैसे एक चिथड़ा भर रह जाता है। रत्ती के जीवन में अनेक पुरुष उसके शरीर भोग की प्रबल इच्छा से बेसुध होकर आते हैं। रत्ती की जड़ता सभी को निराश कर लोटने को विवश करती है। "रेशम की सी ठन्डी मगर गरम शैली में प्रस्तुत इस उपन्यास में एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसके फटे बचपन ने उसके सहज भोलेपन को असमय चाक कर दिया और उसके तन–मन के गिर्द दुश्मनी की कंटीली बाढ़ खींच दी। अन्दर और बाहर की दोहरी दुश्मनी में जकड़ी रत्ती की लड़ाई मानवीय मन की नितांत उलझी हुई चाहत और जीवट भरे संघर्ष का दस्तावेज है।"[1]

रत्ती के मनोमस्तिष्क में एक बद्धमूल मानसिक ग्रन्थि है, जिसमें वह पूरी तरह गिरफ्तार है "वह तीव्र इच्छा से भर उठती है और हताश हो अपने में ही लौट आती है। अपने से टकराती है, संघर्षरत होती है। लड़ाई लड़ती है कहीं बाहर नहीं बाहरी शक्ति से नहीं, अपने से ही – गहरे में कहीं भीतर – अपनी ही मानसिक ग्रन्थि से जिसके कारण वह सिर्फ एक चिथड़ा है जिससे वह एक बार भी समूची औरत नहीं बन पाती। हर बार कहीं पहुँच सकने की न मारने वाली चाह और हर बार वीरान वापसी अपनी ओर।"[2] रत्ती भीतर की लड़ाई को बाहर नहीं मोड़ पाती। वह अपने जीवन में सहज नहीं है। कृष्णा सोबती के शब्दों में – "रत्ती बचपन के पारदर्शी काँच के टूट जाने से घायल वह व्यक्ति है जो सम्बन्धों

---

[1] कृष्णा सोबती – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0– आवरण पृष्ठ से

[2] नरेन्द्र मोहन – आधुनिकता और समकालीन रचना– संदर्भ, पृ0– 130

की परिपक्व जमीन पर सुरक्षा के तंबू नहीं गाड़ पाता। उसके आत्मकेन्द्रित द्वन्द्व में एक ही चीज उसके हाथ लगी है। वह है बेरहम आँख, जो एक साथ समान्तर रेखाओं से दोनों दिशाओं को देख अपने बिन्दु पर लौट आती है।''[1]

रत्ती बचपन में कुछ अनचाहा घटित हो जाने के कारण अभिशप्त है। वह अपनी सहेली रीमा के घर कुछ दिन रहती है। रीमा – कैशी और कुमू के बीच रह वह स्वयं को भुला देना चाहती है, उनकी गृहस्थी को देखकर उसमें भी गृहस्थी की इच्छा पैदा होती है। रत्ती अपने जीवन की निरर्थकता और वीरान कोख को देखकर दुःखी होती है। वह अपने आस–पास छाई चेहरों की भीड़ में कोई ऐसा चेहरा तलाशती है जो उसके दुःख–दर्द को समझ सके और केवल उसका अपना हो। ''चाहा कोई एक चेहरा, एक नाम याद कर किसी को पुकार सके, पर चेहरों की भीड़ जैसे 'फोकस' के बाहर हो गई और वक्त का धब्बा बनकर आँखों के सामने टँगी रही।''[2] उसका वीरानापन, उखड़ापन, उसकी अतृप्ति अधिक प्रत्यक्ष हो उठती है – ''जिस सड़क का कोई किनारा नहीं – रत्ती वही है। वह आप ही अपनी सड़क का डैड–एंड है। आखिरी छोर है।''[3] वह ऐसे छोर पर पहुँच चुकी है कि उसका कोई अन्त नहीं। रत्ती के लिए भविष्य सदा अर्थहीन और अंधकारमय हो जाता है। ''रत्ती कोई औरत नहीं। वह सिर्फ गीली लकड़ी है। जब भी जलेगी धुआँ देगी। सिर्फ धुआँ।''[4] वह अपने आप को इस स्थिति से निकालने के लिए पैग पर पैग पीती है पर वह स्वयं को निकाल नहीं पाती। ''इस बार की 'जिन' तीखी नहीं थी। फीकी भी नहीं। सिर्फ थी। वह खुद सिर्फ है। उसका तीखापन, कडुवापन सब मर गए हैं। वह फीकी है। एक

---

[1] कृष्णा सोबती – गर्दिश के दिन, सारिका 1973 पृ0– 43

[2] वही – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ 0– 17

[3] वही – वही पृ0– 9

[4] वही – वही पृ0– 16

फीकी औरत। एक लड़की जो कभी लड़की नहीं थी। एक औरत जो कभी औरत नहीं थी।"[1]

रत्ती के बचपन के साथी अज्जू, डिम्पी, पिक्कू श्यामली, पाशी उसे गन्दी लड़की कहकर चिढ़ाते हैं अज्जू ने कान के पास मुँह लगाकर धीमे से कहा, – " किसी ने बुरा काम किया था न तुम्हारे साथ ! खून निकला था न !"[2] वही सम्भवतः बुरी लड़की है और नारी की अस्मिता जब लुट जाती है तो वह निष्प्राण और बेजान हो जाती है। बलात्कार नारी को जूठा कर देता है और उसे कोई स्वीकार नहीं करता है। यही कारण है कि रत्ती पत्थर बन गयी। "पाशी ने उसके साथ छेड़छाड़ की तो उसे जमीन पर दे मारा। पाशी के मुँह पर छींटे दिए गए। गीले कपड़े से खून पोंछा गया आँखें खोलीं। सामने रत्ती को देखा तो सहमकर आँखें मीच लीं।"[3] फिर आस–पास खड़े लड़के लड़कियों की ओर देखकर कहती है– "किसी से कुछ कहती नहीं हूँ पर याद रखना, अब छेड़छाड़ की तो छोड़ूँगी नहीं ! समझे।"[4] सभी जानते है कि रत्ती जब मारने पर आती है तो बहुत जोर से मारती है।

रत्ती के सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक पुरुष उसके व्यवहार से निराश होता है। उसका ठण्डापन उसकी मनहूसियता बन जाता है। उसके सम्पर्क में आये प्रत्येक पुरुष की अपनी अलग राय है। रोहित, राजन, मुकुल, भानुराव, सुमेर बाली, सुब्रामनियम, श्रीपत अनेक पुरुष रत्ती की देहयाष्टि पर घात लगाते दिखाई देते हैं। प्रेम और सहृदयता का नाम लेकर ये सभी रत्ती की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाते हैं। पर तुरन्त ही उसे बिस्तर पर खींचने को बेताब दिखाई देते हैं। रत्ती के पास जब उन्हें उतनी गरमाहट नहीं मिलती है तो वे हताश हो जाते हैं –" रोहित ने एक कदम भरा। रत्ती की आँखों में जाने ऐसा क्या देखा कि

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| [1] कृष्णा सोबती | – | सूरजमुखी अँधेरे के, | पृ0– 8–9 |
| [2] वही | – | वही | पृ0– 44 |
| [3] वही | – | वही | पृ0– 53 |
| [4] वही | – | वही | पृ0–53–54 |

दिल से निकाल अपनी चाह को फर्श पर फेंक दिया – "कौन चाहेगा तुम्हें ? तुम एक ठंडी और मनहूस लड़की।"[1] वह इतनी ठन्डी और मनहूस है कि रंजन और ओमी कहते हैं– "पहने हुए कपड़ों के सिवाय तुम्हारे पास कोई गरमाहट नहीं।"[2] रत्ती के पास अब उन्हें उतनी गरमाहट नहीं मिलती है। किन्तु रत्ती की अपनी समस्या है वह भानुराव के सामने व्यक्त करती है –"जब–जब कोई नंबर मिलाया है, कभी सही जगह घंटी नहीं बजी। बजी तो इंगेज मिली। कभी नंबर मिला तो उस ओर उठाने वाला कोई न था। था तो उस ओर से ऐसी आवाज़ नहीं आई जो मुझ तक पहुँच सके।"[3] जब सुब्रामनियम से कहती है –" बस सुब्बा, जिसने अपनी गरीबी को ओढ़ लेने के लिए कीमती कपड़े पहने हों .... जिसके पास सम्बन्धों की कोई रियासत न हो..... दिखाने के नाम पर एक तेवर तक नहीं ....।"[4] रत्ती हर बार अपने को अकेला महसूस करती है उसके लिए हर मोड़ एक मोड़ भर है भविष्य नहीं। वह सोचती है –"कुछ तो होगा जिसका मुझे इंतजार है ! कोई तो होगा जिसे मेरा इंतजार है ! पर नहीं ..... रत्ती को सिर्फ रत्ती का इंतज़ार था।"[5] रत्ती ऐसा इन्तजार करती है जिसका कोई अन्त नहीं है –"कितनी बार सोचा वह ताप कहाँ है, वह आग जो इस जमे हुए को पिघला सके। कभी बेखटके – बेसहमे तन में सुहानी आग उपजती और सहज भाव बह–बह जाती उन कूल– किनारों की ओर जो सबके होते हैं। सबको मिलते हैं।"[6]

रत्ती अपमान और उपेक्षा सहन करती रही। सभी ने उसे पाना चाहा, पर वह सबको नकारती रही। उसकी ज़िन्दगी में एक जहरीला क्षण हर बार उभर कर आता है जो उसे झपटकर काठ बना देता है। जब राजन रत्ती के सम्पर्क में आता है तो उसके साथ

---

[1] कृष्णा सोबती – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0– 70
[2] वही – वही पृ0 71
[3] वही – वही पृ0 – 86
[4] वही – वही पृ0 –90
[5] वही – वही पृ0– 93
[6] वही – वही पृ0 94

भी यही होता है। राजन के बाद श्रीपत उसे अपने घर ले आता है। उस दिन उसकी पत्नी 'ऊना' भी घर में नहीं होती है। श्रीपत उसे अपनी बाँहों मे भर लेना चाहता है। पर रत्ती में फिर वही छटपटाहट है। उपेक्षा और घृणा से देख श्रीपत ने रत्ती से कहा, –"रत्ती, तुम्हारे पास अपना कोई पुण्य नहीं। तुम जमे हुए अँधेरे की वह पर्त हो जो कभी उजागर नहीं होगी। हो सकती तो श्रीपत क्या ऐसी चाहत को राख कर तुम्हीं पर छिड़क सकते !"[1] रत्ती कुछ नहीं कर सकी। वह सब कुछ भूल जाना चाहती थी। श्रीपत के व्यवहार की कडुवाहट लेकर वह क्या करती। क्योंकि वह पहले ही कडुवाहट से भरी हुई है। उसके जीवन में प्रेम नाम की कोई चीज ही नहीं है। असद भाई का प्यार रत्ती को मिला था असद भाई से मिलने पर वह अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने का अहसास भी करती थी लेकिन असद की असामयिक मृत्यु रत्ती को एक बार फिर उसे पुरानी घुटन में जीने को मजबूर कर देती है।

उसकी अब तक की ज़िन्दगी एक लम्बी लड़ाई है। हर बार बाजी हार जाने वाली और हर बार हार न मानने वाली। हर बार सिर उठाकर देखना। कोई तो होगा जिसे मेरा इन्तजार है। अन्त में दिवाकर उसके सम्पर्क में आता है। रत्ती की इस हीन ग्रन्थि को नष्ट करने में दिवाकर सक्षम हो जाता है। यह ठन्डी औरत संभोग की प्रक्रिया में आहुति बन जाती है। दिवाकर के द्वारा किया गया सम्भोग उसके शाप को धो डालता है। रत्ती की यही कहानी है। बलात्कार की घटना के कारण रत्ती एक समस्या है और समस्या से अधिक चरित्र। रत्ती एक ऐसी ग्रन्थि में फंसी है। चौदह पुरुष उसकी ज़िन्दगी में आते हैं किन्तु रत्ती दिवाकर को समर्पित होती है क्यों ? राजन उसके सम्पर्क में आकर इस नतीजे पर पहुँचा है कि शायद रत्ती औरत नहीं है। उसका नारीत्व दिवाकर के सम्पर्क में जागता है। "लबालब मुहाने पर दिवाकर रुके, फिर लतरों की दीवार में से अंदर जा घुसे और जंगल के आरक्षित अँधेरे में खो गए। रत्ती किसी दर्द से छटपटाती है यह सुना नहीं। दिवाकर अपने बोझ–तले रूई धुनकते रहे। सेमल के फूल बिखरते रहे।"[2] रत्ती जड़ता

---

[1] कृष्णा सोबती – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0– 103

[2] वही – वही पृ0– 122

और ठंडेपन से मुक्ति पा लेती है – रत्ती ने दिवाकर के पौरुष को चूम लिया और वक्ष पर सिर धरकर कहा –"पहले कभी नहीं। तुमने मेरा शाप धो दिया दिवाकर।"[1] जो शाप दिवाकर धोते हैं, उसकी हीन ग्रन्थि को समूल नष्ट कर देता है। सब कुछ घटने के बाद वह भोगा हुआ कमरा पूजारथल और साथ–साथ लेटे स्त्री–पुरुष देवगण लगते हैं। "धीमी हो गई आँच की लौ में डूबा कमरा कोई पूजा–रथल हो। एक वेदिका पर साथ–साथ लेटे वे दोनों देवगण हों। देवता ! अपने–अपने तन में छिपे स्रोतों से जिन्हें अमृत की बूदें पानी हों ! भागीरथी खींच लानी हो।"[2] दोनों देवता सुबह उठते हैं। जब दिवाकर अपनी पत्नी से सम्बन्ध तोड़ने की बात कहता है तो रत्ती उसे इन्कार कर देती हैं वह कहती है– "मैं जुड़े हुए को नहीं तोडूँगी। विभाजन नहीं करुँगी। मेरी देह अब तुम्हारी प्रार्थना है दिवाकर।"[3] इस तरह रत्ती दिवाकर और उसकी पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद नहीं करना चाहती है। वह नहीं चाहती कि उसकी वजह से दोनों पति–पत्नी अलग हो।

रत्ती की त्रासदी यही रही है कि आज तक किसी ने उसको समझने की कोशिश नहीं की। उसके मन में कुण्ठा घर कर जाती है। भले ही उपन्यास में यौन अतृप्ति से उत्पन्न विकलता अधूरेपन, आत्मपीड़ा और संभोगीय सुख का वर्णन है। परन्तु बचपन से ही समाज द्वारा दी गई यातना के बीच निर्मित कुण्ठित, ग्रन्थिग्रस्त, नकारात्मक, त्रस्त नारी–व्यक्तित्व की स्वयं से जूझने की कथा इस उपन्यास में वर्णित है। सत्य तो यह है कि "आदर्शों की भव्यता से अलग हटकर 'सूरजमुखी अँधेरे के' यथार्थ और सत्य के निरूपण की वह असाधारण सत्य कथा है जिसका सत्य कभी मरता नहीं।"[4] यह एक ऐसी युवती की कहानी है जिसमें एक नारी के हृदय की सभी पर्तों को उकेरने का प्रयत्न किया गया है।

---

[1] कृष्णा सोबती – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0– 122

[2] वही – वही पृ0– 120

[3] वही – वही पृ0–133–134

[4] वही – वही पृ0– आवरण पृष्ठ से

## 5.4 यारों के यार

इसमें आधुनिक पूंजीवादी और व्यावसायिक दृष्टिकोण से सरकारी दफ्तरों में कर्मचारियों की परिस्थितियों और मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसमें दफ्तरी जीवन की कड़वी सच्चाइयों को उभारा है। दफ्तरों में व्याप्त भ्रष्टाचार, ऐय्यारी, मुफ्त खोरी, गप्पबाजी आदि का सजीव चित्रण किया है। क्लर्क दिनभर वार्तालाप करते रहते हैं और अच्छे–बुरे शब्दों का प्रयोग करते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास का कथा–चक्र भवानी बाबू के इर्द–गिर्द घूमता है। उन्हीं के माध्यम से सरकारी दफ्तरों के कर्मचारियों की परिस्थितियों और मानसिकता का यथार्थ चित्रण मिलता है।

भवानी बाबू दफ्तर में हैडक्लर्क हैं। भवानी बाबू को साहब कमरे में बुलाते हैं और उन्हें नौकरी से छुट्टी की खबर देते हैं। तभी भवानी बाबू के बेटे को चोट लगने का फोन आता है। यह खबर पाकर भवानी बाबू घर नहीं जाते हैं लेकिन थोड़ी देर के बाद फिर उनके बेटे की मृत्यु का फोन आता है। दफ्तर में एक तरफ क्लर्क हैं और दूसरी तरफ अफसर। सभी क्लर्क भवानी बाबू के घर पहुँचते लेकिन साहब अवस्थी इस मातमी जुलूस में शामिल नहीं होते। भवानी बाबू की मनःस्थिति भिन्न है क्योंकि घर का वातावरण मातमी है। बेटे की मृत्यु की सूचना और नौकरी से छुट्टी की खबर उन्हें एक साथ मिले –"बेटे के लहू–लुहान सिर पर किसी मनहूस फ़ाइल का पन्ना चिपका दीखता।"[1] भवानी बाबू की दुविधाग्रस्त स्थिति को दर्शाया है।

क्लर्क अपनी नौकरी जहाँ से शुरु करता है वही तक रह जाता है। माथुर ने दरबारी आवाज में खँखार दिया –"अमा यार छोड़ ये चर्चे, जाल पड़ते रहेंगे, माल मिलते रहेंगे, अपने हाथ लगेगा ..... यह कलमघसीटी और यही क्लर्की का ग्रेड.....।"[2] इस स्थिति से जूझते हुए उनकी हर बात गाली के रूप में निकलती है। उन्हें मालूम है कि वे क्लर्की की कुर्सी पर ही पैंशन पा जाएँगे। लेकिन वह चाहते हैं कि उनके बच्चे क्लर्क न बने। सूरी

---

[1] कृष्णा सोबती – यारों के यार, पृ0– 15

[2] वही – वही पृ0– 27

बड़ी मायूस आवाज में कहता है, "यार, लानत तो हम सब पर है जो क्लर्क की कुर्सी पर ही पैंशन पा जायेंगे। इस उम्र में हमारा– तुम्हारा छुटकारा तो होने से रहा, हाँ अपने–अपने लड़कों को अच्छे स्कूल–कॉलजों में पढ़ाओं, सालो, नहीं तो इन्हीं अफसरों के लौण्डे तुम्हारे बच्चों के गलों में भी नाखून देंगे। और किस्मत के मारे वे भी इन्हीं कुर्सियों पर बूढ़े हो जायेंगे।"[1] वह सोचते हैं कि शायद क्लर्कों के भाग्य में तंगी ही लिखी है न स्वयं अच्छी जिन्दगी जी सकते हैं ओर न बच्चों को अच्छे स्कूलों में पढ़ा सकते हैं।

भवानी बाबू की वक्त की पाबंदी और काम की वजह से तमाम ब्रॉंच वाले उनसे खार खाते हैं। भवानी बाबू दफ्तर की फजूल बातों से बेपरवाह रहते हैं। भवानी बाबू साहब के पास जाते हैं तो क्लर्क उनके बारे में बहुत कुछ कहते हैं। एक पात्र उन पर व्यंग्य करता है – "तरक्की आजकल काबलियत से नहीं मुँहचुमाई और पाँवघिसाई से मिलती है।"[2] सचमुच ही तरक्की अफसरों के तलवे चाटने से ही मिलती है। भवानी बाबू अपनी नौकरी बचाए रखने के लिए चन्दोक और सरताज बहादुर नम्बरी दलालों से मिलते हैं। इसलिए सूरी सम्पूर्ण तन्त्र को 'लुच्चई का मदरसा' कहता है क्योंकि वहाँ भाई–भतीजावाद और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। वर्तमान व्यवस्था में व्यक्ति अपने स्वार्थों की पूर्ति में संलग्न है।

सम्पूर्ण उपन्यास में दफ्तरी माहौल का यथार्थ चित्र अंकित किया है। क्लर्कों का बौनापन तथा अफसरों द्वारा 'पैंट पतलून' (नौकरी) के लिए किया जाने वाला भ्रष्टाचार आदि का वर्णन किया है। लेखिका द्वारा स्वयं इस प्रकार के माहौल में गए बिना दफ्तरों के वातावरण को जानना नितान्त कठिन कार्य था। जो व्यक्तिगत रूप से सोबती जी के लिए चुनौती था। परन्तु इस प्रकार दफ्तरी वातावरण तथा गालियों को स्पष्ट रूप से लिख डालना हिम्मत, सामर्थ्य और खुलेपन का प्रतीक है। दफ्तरों के जीवन पर लिखी

---

[1] कृष्णा सोबती – यारों के यार, पृ0– 46

[2] वही – वही पृ0– 42

जाने वाली हिन्दी में यह पहली इतनी सशक्त और सफल कहानी है जिससे लेखिका के साहस की जितनी भी सराहना की जाए, कम ही है।

## 5.5 तिन पहाड़

एक पूर्ण पुरुष की तलाश को इस उपन्यास में चित्रित किया हैं। जया श्री–दा के दूर–पार के रिश्ते की लड़की है जिसे श्री दा की माँ ने पाल–पोस कर बड़ा किया है। जब श्री दा विदेश जाने लगते हैं तो उसकी माँ जया की सगाई की बात करती है कि उसे जाने से पहले जया की सगाई किसी अच्छे घर में कर देनी चाहिए। परन्तु श्री दा मन ही मन जया को प्यार करते हैं। इस बात को जब उन्होंने अपनी माँ को बताया तो माँ भी जया को वधू रूप में स्वीकार कर लेती है। जया के साथ मँगनी कर श्री दा विदेश चले जाते हैं। वहाँ वह एडना के सम्पर्क में आकर सब कुछ भूल जाते हैं – "सोचा था–सभी कुछ सोचा था – बार–बार सोचा था पर मोहभरी बाढ़ तो सब बहा ले गयी। असंख्य बार मन को रोका था – नहीं–नहीं – पर मन की आँखें तन की बाँहें दोनों एक संग गलबहियों में जा घुलीं। न माँ का मुख याद रहा, न अपना वचन, न वचन से बँधी जया।"[1] नारी एक बार जिसे अपना बना लेती है उसे भुला नहीं पाती है। वह प्रेम को निभाने के लिए तैयार रहती है चाहे उसका प्रेमी दूर हो या नजदीक उसी की होकर रहती है। जैसा कि जया कहती हैं– "आँखों से ओझल हो जाते ही कोई मन से भूल जाता होगा, श्री दा।"[2] पर पुरुष वातावरण के अनुसार स्वयं को बदल लेता है। सब वायदे भूलकर श्री एडना से शादी कर लेते हैं और जया घर छोड़ दार्जिलिंग आ जाती है। आते समय गाड़ी में उसकी तपन से मुलाकात होती है। परन्तु बात नहीं हो पाती है। तपन उसका नाम तक नहीं जान पाता केवल उसकी विवशता से सिसकियाँ सुनता रह जाता हैं –"मुख उघाड़ चौकन्ने हो देखा। सामने की सीट पर कोई रह–रहकर सिसकियाँ भरता था। सिरहाने पर ढुका सिर विवशता

---

[1] कृष्णा सोबती – तिन पहाड़, पृ0– 103

[2] वही – वही पृ0–104

से काँप–काँप जाता था और गाड़ी की खड़खड़ाहट में से बार–बार वही गीला स्वर इन कानों को छुए जाता था। ओढ़ना उतार जाने कैसी–सी घबराहट से उठ बैठे। कुछ पूछ लें, कुछ जान लें .... ।''[1] होटल में पहुँचकर तपन जया को बहुत याद करता है। परन्तु शीघ्र ही उसे अपनी प्रेमिका पूतूल की याद आ जाती है – ''कलकत्ता की भीड़भाड़ और कोलाहल से दूर इस कमरे के मधुर एकान्त में पूतूल की पा लेने की चाह सिमटकर बाँहों में घिर आयी। गुड़िया–सी मोहक हँसी–पूतूल कब मिलेगी, कब इन आँखों के आगे जगेगी, कब इन बाँहों से आ लगेगी।''[2] लेकिन तपन की जया से फिर मुलाकात होती है। जया की व्यथित निगाहें और पीड़ा से भरा चेहरा उसे इतना आकृष्ट करता है कि वह अपनी प्रेमिका पूतूल को भूलकर जया के करीब होता जाता है। तपन जया को हमेशा दुःखी देखता है और एक दिन सहानुभूति से उसका दर्द जानना चाहता है मगर वह बताती नहीं –

तपन पास आये। शाल को हौले–से छू हाथ के अनुरोध से बिठा दिया और गाढ़े स्वर में कहा,

''जो कष्ट हो मुझसे तो कहें .....''

सहमी–सी वह रोती रहीं – रोती रहीं .... विवश–से तपन मुँदे सिर पर बालों की अँधियारी छाँह तकते रहे, फिर बहुत सगे कण्ठ से पूछा –

''कुछ लेना चाहेंगी....चाय.....कॉफी..... ।''

वह कुछ बोली नहीं – भर–भर रोती रहीं।''[3]

धीरे–धीरे उनकी मित्रता घनिष्ठता में बदल जाती है। पर दोनों ही न तो तपन पूतूल को भूल पाता है और न ही जया श्री दा को भूल पाती है। एक रात जब जया अपने कमरे में सोई होती है तो तपन उसके कमरे में चला जाता हैं वह बेसुधी में श्री ...श्री को पुकारती है। तपन अगले दिन उसे घुमाने सिंगरापोंग ले जाता है। उस रात उन्हें वहीं

---

[1] कृष्णा सोबती – तिन पहाड़, पृ0– 70

[2] वही – वही पृ0– 73

[3] वही – वही पृ0– 77–78

रुकना पड़ता है। वहाँ वे रौस के घर ठहरते हैं। वहीं वह उनकी बेटी एडना के बारे में कुछ बातें जानती है। रौस बताते हैं कि एडना ने शादी कर ली है और वह अपने पति के साथ मिलने आ रही हैं। परन्तु जया उस समय यह नहीं जानती थी कि श्री दा ही एडना के पति हैं। एडना को लेकर श्री दा जब घर आते हैं तो माँ से मिलते हैं तो माँ ने उसके प्रति पूर्ण उपेक्षा दिखाई। माँ उससे इतनी नाराज है कि वह उसका मुँह तक देखने को तैयार नहीं है। माँ श्री दा से कहती है कि एडना को छोड़कर जया को वापिस घर ले आ। श्री दा एडना को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते हैं और जया को वापिस माँ के पास भेजने के इरादे से दार्जिलिंग पहुँच जाते हैं। दार्जिलिंग में एडना के पिता रौस भी रहते हैं। जया और रौस पहले मिल चुके होते हैं। एक दिन अचानक श्री की मुलाकात जया से होती है श्री अपने को अपराधी समझता है –" कैसा कड़वा बोझ है जो घर लौटते ही अपराध बन राह में आ खड़ा हुआ है। एक बार माँ से प्रार्थना कर जया को स्वयं माँगा था। फिर एडना से ब्याह कर स्वयं सब–कुछ झूठ कर लिया। जानते थे कि एक को पा सकने पर दूसरी से बिछुड़ जायेंगे। बचपन का संग छूटेगा, माँगकर लिया वचन टूटेगा ....।"[1] श्री दा माँ का पत्र जया को दिखाकर उससे लौटने का आग्रह करते हैं जिसे जया अस्वीकार कर देती है। श्री कहते हैं–

"माँ ने तुरन्त घर लौट आने का आग्रह किया है ...."

चिट्ठी हाथों में ले जया हँसी। पत्र खोला, आँखें झुका पहला पन्ना– पढ़ा– दूसरा, तब सिर हिला दिया ....

"अब कहाँ लौटना होगा, श्री दा ...।"[2]

जया का तपन के प्रति अपनत्व देखकर श्री को ईर्ष्या होती है। श्री दा उसकी बेइज्जती करना चाहते हैं। लेकिन जया श्री दा को टोक देती है, "जो आज दुर्दिन में मेरे सबसे अपने हैं उन्हीं का अनादर करेंगे, श्री दा ...।"

---

[1] कृष्णा सोबती – तिन पहाड़, पृ0–116

[2] वही – वही पृ0– 118

"नहीं श्री दा, कुछ भी सुनूँगी नहीं। मन में आ जाने से ही जिस–तिस का अपमान करते चलेंगे, यह अधिकार आपको किसने दिया, श्री दा ?" [1] जया के शब्दों में तपन के प्रति विश्वास और आदर का भाव उजागर होता है। श्री दा की बातें जया के लिए असहनीय हो जाती हैं और दूसरे दिन अकेली ही घूमने चली जाती है वह घूमने के बहाने पानी में कूद कर अपनी आत्महत्या कर लेती है –"वह पुल के सुनसान में गाड़ी की ओर जाते ड्राइवर को देखती रहीं। आकृति अँधेरे में विलीन हो गयी तो आँखों को दिखा – उनकी ओर पीठ किये दूर होता ड्राइवर नहीं, कोई और है – वह श्री हैं – श्री हैं ... मन–ही–मन जैसे किसी की पदचाप सुनती हों ..... तपन हैं – वहीं चले आते हैं.....अँधियारे की जकड़ में प्राण छटपटाने लगे। गला भर आया– श्री .... तपन ..... तपन।"[2] सारे दुःखों से मुक्ति पाकर मुक्त हो जाती है। इस उपन्यास में प्यार शारीरिक न होकर आत्मिक कोटि में आता है। जया अपनी सारी व्यथाओं से मुक्ति पा लेती है। लेकिन अपने साथी पुरुषों तपन और श्री दा को घुट–घुट कर जीवन जीने के लिए छोड़ जाती है।

## 5.6 ज़िन्दगीनामा

इस उपन्यास में हिन्दू–मुस्लिम एकता एवं मानवीय सम्बन्धों में अन्तर्निहित अन्तर्विरोधों का गम्भीर विश्लेषण किया है। ज़िन्दगीनामा, ज़िन्दगीनामा है उसमें जीवन का इतिहास है। यह एक ऐसी कालजयी रचना है। जिसमें मानवीय सम्बन्धों का निरूपण किया गया है। मुख्य रूप से विभाजन से पूर्व पंजाब के शान्त, सद्भावपूर्ण जीवन को चित्रित किया है। भीष्म साहनी के अनुसार, –"यह किसी एक अंचल की कहानी न होकर इंसानी रिश्तों के विरल सामंजस्य की भी कहानी है, हिन्दू–मुसलमानों की सांझी संस्कृति की कहानी है, जो पुस्तक के पन्नों पर मुस्कराती हुई–सी सामने आती है, जो शताब्दियों के मेलजोल के कारण जनमानस में रस–नस गई है। बल्कि किस्से कहानियों

---

[1] कृष्णा सोबती – तिन पहाड़, पृ0–119

[2] वही – वही पृ0–131

के रूप मे नदियों, पर्वतों में भी जुड़ गयी है।''[1] इन्सानी रिश्तों की कहानी चित्रित करने के कारण यह उपन्यास अपनी आँचलिक सीमाओं को त्यागकर व्यापक सन्दर्भों को ग्रहण कर लेता है।

उपन्यास की शुरूआत कृष्णा जी ने कविता से की है। इस काव्यात्मक अभिव्यक्ति में विभाजन पूर्व पंजाब का चित्र अंकित हुआ है –

''कौन जानेगा
कौन समझेगा
अपने वतनों को छोड़ने
और उनसे मुँह मोड़ने के दर्दों को
पीड़ा को।
ज़ेहलम और चनाब
बहते रहेंगे इसी धरती पर।
इसी तरह।
हर रूत– मौसम में
इसी तरह
बिल्कुल इसी तरह।
सिर्फ़
हम यहाँ नहीं होंगे।
नहीं होंगे,
फिर कभी नहीं होंगे,
नहीं।''[2]

---

[1] भीष्म साहनी – इन्सानी रिश्तों और सांझी संस्कृति का आकर्षण, आजकल दि0 1979 पृ0–35–36

[2] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0 – 16

उपन्यास लेखिका के जन्म स्थान गुजरात की कथा कहता है। लेखिका को अपनी मातृभूमि से किस कदर लगाव था और है। इसलिए वतन छोड़ने पर भी प्यार कम नहीं हुआ न ही उसकी याद दिल से गयी। ये ही याद एक बेहद खूबसूरत उपन्यास के रूप में छपकर सामने आ गयी। लेखिका ने यह उपन्यास लिखकर मातृभूमि से मिले प्यार का कर्ज भावभीनी श्रद्धांजलि के रूप में उतारा है। कृष्णा सोबती ने गुजरात के डेरा जट्टा की यादों को इस उपन्यास में उभारा है।

ज़िन्दगीनामा की कहानी धरती के एक छोटे से खण्ड से शुरु होती है। कथाचक्र शाह और शाहनी के इर्द–गिर्द घूमता हुआ अन्त मे अंग्रेज़ों की खिलाफत तक पहुँच जाता है। गाँव में शाह परिवार रहता है जिसके पास समस्त गाँव का साहूकारा है। गाँव के सभी लोग शाह परिवार की इज्जत करते हैं। शाह परिवार के साथ गाँव के अन्य अनेक हिन्दू–मुस्लिम व सिक्ख परिवारों का भी चित्रण किया है। इस उपन्यास में "बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के पंजाब के लोकजीवन की सांस्कृतिक झलक है। अतः यह उपन्यास पंजाब प्रदेश के पारिवारिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का वर्णन करता है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि यह नायक विहीन है। इसमें पंजाब की हरी–भरी धरती लहलहाते सरसों के पीले खेतों, चनाब और जेलहम नदियों, गेहूँ की बालियों, सुनहरी धूप, मुटियारों और नखरीली मूछों वाले वहाँ के वासियों, चूड़ा छनकाती मक्का सी खिली शरबती आँखों वाली नयी ताजी बहूटियों की कहानी कहने वाला दस्तावेज़ है।"[1] स्वतन्त्रता से कई शताब्दी पूर्व के शान्त जीवन को उजागर किया गया है। हिन्दू–मुसलमानों का मिलजुल कर रहना, एक दूसरे की ख़ुशी–गमी में शामिल होना, शाहों की हवेली में हिन्दू–मुसलमान दोनों वर्गों के लोगों का काम करना आदि दर्शाया गया है। पुरुषों की महफिल में दोनों धर्मों के लोग मिलकर वार्तालाप करते हैं। धर्म के आधार पर किसी प्रकार की बैर भावना नहीं थी। शाहों की बैठक में ही लखनदाता की जियारतगाह का वर्णन किया

---

[1] जगमोहन चोपड़ा – आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ0– 258

है – "बहुत बड़ी ज़ियारतगाह है ! एक तरफ ग़रीबनवाज़ सरवरशाह का थान। दूसरी तरफ़ बाबा नानक का।.... पास ही एक ठाकुरद्वारा है। एक तरफ अपने भैरों का मंदिर है। .... इधर पंजपीर, उधर पंज पांडव ! इधर पंज औलिया, उधर पंज प्यारे !"[1] इस तरह हिन्दू–मुस्लिम रिश्तों को दर्शाया है।

शाह जी गम्भीर व्यक्तित्व वाले व्यक्ति हैं संयुक्त परिवार की भी विशेषताएँ उनके यहाँ हैं। उनके हृदय में गाँव के प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रेमभाव है। गाँव में कोई उत्सव हो या कत्ल का मामला अथवा किसी की इज्जत पर आँच आयी हो तो शाह जी तुरन्त सहायता के लिए पहुँच जाते हैं। शाह जी का गाँव के प्रति प्रेमभरा व्यवहार चित्रित किया है। विभाजन पूर्व गाँव–शहरों में हिन्दू–सिक्ख और मुसलमान तीनों आपस में मिलजुल कर रहते थे। और उस समाज में एक सामूहिकता का भाव रहता था। डेरा जट्टा गाँव की सुबह मसीत में अज़ान और मुर्गे की बाँग से होती है। गुरूवाणी भी साथ–साथ चलती है शाह जी के परिवार में पहले करतारो फिर राबयाँ बेटी की भान्ति रहती हैं। छोटे शाह गाँव वालों की समय–समय पर दवा–दारू करते हैं। गाँव के लोग विश्वास करते हैं कि वे मुरदों में जान फूँकते हैं। तारेशाह अलग प्रकार का व्यक्ति है। उस पर छोटे बड़े मुकद्दमें चले हैं और वह घर से बाहर ही रहता है। वह बरकती नाम की विधवा को भगा कर शाह परिवार की बहू का दर्जा दे देता है। शाह परिवार भी उसे इज्जत से स्वीकार कर लेते हैं।

शाह लोग जमीनों के मालिक हैं गाँव के लोग उनके कर्जदार हैं। शाह छोटे–मोटे कर्जे मुआफ भी कर देते हैं। छोटा शाह किसी कर्जदार के साथ ज्यादा रहमदिली दिखाने लगता है तो बड़े शाह उसे समझा देते हैं कि अगर शाह जमीन रेहन रखकर कर्ज नहीं देंगे तो इन जट्ट मुजारों के मुसीबत में इनकी कौन सहायता करेगा ? कुछ लोग शाहों की सूदखोरी से तंग आ चुके हैं मेहरअली शाहों की क्रूरता पर आक्रोश

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0– 129

प्रकट करता है तो बाप झिड़कता हुआ कहता हैं – "पुत्तर हम शाहों के देनदार हैं।"[1] मुहम्मदीन को पैसों की जरूरत पड़ती है तो शाह उससे पूछते हैं –"मुहम्मदीन,– रुपये पर चार आने चंगा कि एक बीघा पर एक पंड दानों की !"[2] मुहम्मदीन को इस बात पर गुस्सा आता है लेकिन शाह जी ये सब बाते टाल देते हैं। वह जानते है कि इन्हें किसी न किसी तरह उनकी बहियों की गिरफ्त में आना है। मुसलमान ही नहीं, हिन्दू भी इस सूद की बीमारी से तंग आ चुके हैं। मद्दी की बेबे बीमार है लेकिन मद्दी उसके इलाज के लिए शाहों से उधार नहीं लेना चाहता है। शाह कठिन समय पर मदद करते हैं इस तर्क पर वह स्पष्ट कहता है –"बस ओए, सूदवाली शह हमें न बता। ढोर – डंगर तो कभी – कभार बच्छी – बच्छा देते है। उधार का सूद दिन – राती जन्मता – बढ़ता रहता है ... खैरात बाँटते हो क्या ! बाबे से पोते तक पहुँचते – पहुँचते असल का सूद और सूद का असल कर डालते हो।"[3] सूद की इस क्रूर व्यवस्था के उपरान्त भी शाहों को उनकी उदारवृति के बल पर उभारने की कोशिश की है। मेहरअली गाँव छोड़कर लाहोर चला जाता है तो शाह जी फरमाते हैं –" पिछले हिसाब पर लकीर फिर जाए तो मेहरअली सँभाल लेगा न जिवियाँ अपनी ?.... फरमान अली, लड़के को लाहोर से वापस बुला लो। जिवियों की मालकी ही चाहता है न, तो यही सही ! वह अड़ के बैठा है अपनी ज़िद पर तो इस बार उसकी मान लेते हैं।"[4] इस प्रकार शाह जी की उदारता को दर्शाया गया है कि वे कर्जों में रियायत कर कटु एवं सद्भाव पूर्ण मानवीय सम्बन्धों की ओर संकेत करते हैं।

जन–जीवन में हिन्दू–सिक्ख–मुसलमानों के सामाजिक सम्बन्ध भी अत्यन्त घनिष्ठ थे। थानेदार सलामत अली शाह जी के घर आता है तो शाहनी अपनी बहन अर्थात सलामत अली की बीबी के बारे में पूछती है और उसके लिए तोहफे भेजती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0 –266

[2] वही – वही पृ0– 153

[3] वही – वही पृ0– 240

[4] वही – वही पृ0–153

हिन्दू–सिक्ख उन दिनों एक धर्म और एक सम्प्रदाय की तरह ही रहते थे। शाहनी का हाकमाबीबी के साथ बहन का सम्बन्ध इन्सानी रिश्तों को दर्शाता है। चाची महरी इसी ओर संकेत करते हुए कहती है – "जो कोई कहे धर्म का चोला बदलने से मनुक्ख की तासीर बदल जाती है सो झूठ। खोजे – पराच्छे दीन कबूल करने से पहले अरोड़े–कराड़ ही थे न। बराबर थे गक्खड़ों ने दीन कबूल कर लिया, पर ब्याह–शादी मे वही हमारेवाले लाँवा–फेरे और खारा–बिठाई। ... इनके ढंग–कारजों में काज़ी–बाम्हण दोनों मौजूद रहते हैं। सुन्नत मुसलमानी को छोड़कर वही झंड–मुंडन, तंबोल–माइयाँ, वही जंज सेहरे सरबाले।"[1] हुसैना के लड़के होने की बधाई देना, हुसैना का चाची महरी और शाहनी के प्रति प्रेम भरा व्यवहार, चाची महरी को शाहनी और हुसेना के जातकों की बहूटियों के लिए फूलकारियाँ काढ़ने की इच्छा आदि द्वारा सम्बन्धों को उजागर किया है।

'ज़िन्दगीनामा' में पंजाब के पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के साथ भाई–भाई , सास–बहू, हिन्दू–मुस्लिम, आस–पड़ोस के कटु सम्बन्धों को चित्रित किया है। कत्ल, लड़ाइयाँ, चोरी, डकैतियाँ, युद्ध भी पंजाब के जन–जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। जायदाद के लिए शाहदाद के कत्ल की घटना भाई–भाई के स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है। सरफराज़ कत्ल के कारण सजा भुगत रहा है। शेरे का कत्ल होता है। औरत और जमीन के कारण ज्यादातर झगड़े होते हैं।

पंजाब के जन–जीवन में हर खुशी का स्वागत लोकगीतों से होता है। शाहनी गर्भवती हुई तो गीत, लाली का जन्म हुआ तो गीत। लाली की पहली दीवाली, तब गीत। उपन्यास में शुरू से अन्त तक लोकगीतों की भरमार है–

"हरिया री माए हरिया री बहनों
हरिया ओ भागी भरया
जिस दिहाड़े मेरा लाडला जम्मया

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0–190

सो ही दिहाड़ा भागी भरया।''[1]

लोकगीतों के द्वारा सांस्कृतिक वातावरण को उभारा है। त्रिजन, लोहड़ी, दीवाली, ईद आदि त्यौहारों की भी चर्चा की है।

18 वीं 19 वीं शती के माहौल को किस्से कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया है। 33 पंजाब और 40 पंजाब पलटनों, पंजाब के शहरों स्यालकोट, लाहोर, ज़ेहलम, गुजरात आदि की भी चर्चा की है। क्रान्तिकारी सरगर्मियों के बार–बार उल्लेख किये हैं। कुछ गाँववासी अंग्रेज़ों के प्रति घृणा भी रखते हैं और कुछ गाँववासी अंग्रेज़ों की सराहना भी करते हैं। भीष्म साहनी के अनुसार ''यह केवल एक अंचल की ही नहीं, इतिहास के परिप्रेक्ष्य में समूचे भारत में बिखरे अंचलों की कहानी है।''[2] सोबती जी के पास एक ऐसी दृष्टि है, जिससे वह पंजाब का इतना खूबसूरत चित्र खींच पाई हैं। उनके पास स्वस्थ दृष्टि है जिससे उन्होंने पूर्व पंजाब का चित्र खींचा है। पंजाब के लोकजीवन डेरा जट्टा गाँव के माध्यम से जीवन्त जन–संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है।

'ज़िन्दगीनामा' में पंजाब के जीवन का सशक्त तथा मार्मिक चित्रण किया है। जो लेखिका के मातृभूमि के प्रति प्रेम का परिचायक है।

## 5.7 ऐ लड़की

यह निर्भय जिजीविषा का महाकाव्य है। यह एक बूढ़ी औरत की कहानी है। उस बूढ़ी औरत की टाँग टूट जाती है जिस कारण उसे बिस्तर में रहना पड़ता है। वह बिल्कुल दूसरों के अधीन हो जाती है। उसकी लड़की और सूसन उसकी देखभाल करते हैं। उसे पास आती हुई मौत का कोई डर नहीं। वह कहती है–''मेहनत से कमाया हुआ

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0– 131

[2] भीष्म साहनी – इन्सानी रिश्तों और सांझी संस्कृति का आकर्षण, आजकल दि0 1979 पृ0– 37

जिस्म है। घुलते–घुलते भी वक्त लगेगा।''[1] अम्मू (बूढ़ी औरत) लड़की से कहती है कि बूढ़ों के लिए घर में जगह नहीं रहती है। माँ–बेटी का रिश्ता हाड़–मांस का नहीं आत्मा का है। लड़की माँ की बातों को सुनकर खीज जाती है। अम्मी सोचती है – ''देह तो एक वरण है। पहना तो इस लोक में चले आए उतार दिया तो परलोक ! पर–लोक। दूसरों का लोक। अपना नहीं !''[2] देह को वह वरण के समान मानती हैं कि न जाने कब यह मनुष्य का चोला उतारना पड़े। वह मरने से पहले अपनी अचूक जिजीविषा से घटी हुई घटनाओं को याद करती है। वह घटी हुई घटनाओं को अपनी बेटी को सुनाती है। शादी के बाद सबसे पहले मैं पहाड़ी सफर में कालका से शिमला गई थी। दिल में खूब उमंगे थी साथ में तुम्हारे पिताजी दादा–दादी जी भी थे। गाड़ी जब सुरंग से बाहर निकली मुझसे पूछा कि बहू चक्कर तो नहीं आ रहा है ? तुम्हारे दादा जी साथ थे इसलिए कहने में थोड़ा संकोच किया। लेकिन फिर सोचा कि सच कहने में क्या है। मैंने कह दिया– ''मेरा फैसला है कि मुझे चक्कर नहीं आना चाहिए तो आएगा कैसे !''[3] मेरी बात सुन तुम्हारे पिताजी को गुस्सा आया लेकिन दादाजी ने कहा, – ''हम अपनी बेटी से बहुत खुश हैं। घुड़सवारी करती रही है। घोड़ों को काबू करना जानती है। इसी से अपने पर भरोसा रखती है।''[4] तुम्हारे पिताजी इन बातों को सुनकर खामोश हो गए। वह स्वभाव के नर्म और संयम वाले थे। मुझ पर कोई रोक–टोक नहीं थी पर मान–मर्यादा के मामले में बड़ी सख्ती थी।

लड़की सब घरों में लड़की के आने पर निराशा छा जाती है। लेकिन तुम्हारे माता–पिता ने कभी फर्क नहीं रखा– ''अपनी समरूपा उत्पन्न करना माँ के लिए बड़ा महत्वकारी है। पुण्य है। बेटी के पैदा होते ही माँ सदाजीवी हो जाती है। वह कभी नहीं मरती। हो उठती है वह निरंतरा। वह आज है, कल भी रहेगी। माँ से बेटी तक। बेटी से

---

[1] कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, पृ0– 11

[2] वही – वही पृ0–14

[3] वही – वही पृ0– 21

[4] वही – वही पृ0– 21

उसकी बेटी उसकी बेटी से भी अगली बेटी। अगली से भी अगली। वही सृष्टि का स्रोत है।''[1]

उस बूढ़ी औरत में बीमारी के कारण चिड़चिड़ापन आ गया हुआ है। भड़ककर तीखी आवाज में कहती है –''तुम लोगों ने मेरे सामान को अभी से इधर–उधर करना शुरू कर दिया बुरी बात है यह!... मेरे पर्स में मेरी चाबियाँ भी पड़ी थीं। मुझे दिखाओं लाकर–पड़ी भी हैं कि नहीं।''[2] अपनी बीमारी के कारण वह हताश हो गयी है इसलिए वह हर समय कुछ न कुछ कहती रहती है। वह सोचती है कि मेरी याददाश्त में कुछ न कुछ फर्क पड़ गया है लेकिन उसकी बेटी उससे कहती है –''अम्मू, ऐसी कोई बात नहीं। आप मुझसे ज्यादा चौकस और चौकन्नी हैं।''[3]

'ऐ लड़की' में मुख्य रूप से माँ–बेटी के संवाद हैं। बीमारी के कारण बूढ़ी स्त्री में जिद्दीपन आ जाता है। वह अपनी स्मृतियों में डूबी रहती है। वह माँ, बेटी, बहन, पत्नी आदि विभिन्न जीवनों को फिर से जीने लगती है। यहाँ परिवार और समाज में नारी की अनिवार्यता को उजागर किया है।

## 5.8 दिलो-दानिश

संयुक्त परिवार के सन्दर्भ में रखैल महक और मलिक के आपसी सम्बन्धों का गहरा और जीवन्त चित्रण है। ''दिलो–दानिश की कहानी उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के दरम्यान धड़कती–फड़कती है। दिल्लीवालों के मिज़ाज, रुआब और रंगों–बू में जो किसी–न–किसी रूप में आज भी हमारे अहसासों में मौजूद है। शहर दिल्ली और उसके बाशिंदों की छोटी–बड़ी हस्तियाँ ज़िन्दगी की बरकतों को नवाजती हैं और कायदे करीने

---

[1] कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, पृ0– 56

[2] वही – वही पृ0– 24

[3] वही – वही पृ0– 34

से प्रेम और परिवार के दो ध्रुवों के बीच सिलसिले से संतुलन बिठाती चली जाती हैं।''[1] संयुक्त परिवार के कर्ता कृपानारायण हैं। वह पेशे से वकील हैं। एक तरफ उनकी पत्नी कुटुंब है उसके तीन बच्चे रज्जो, पम्मो और दम्मो हैं दूसरी तरफ महक है उसके दो बच्चे बदरू और मासूमा हैं। प्रेम और परिवार दोनों के बीच जो सन्तुलन है उस सन्तुलन के बने रहने का कारण यह है कि कृपानारायण एक खानदानी संयुक्त परिवार का कर्ता है और बन्धुओं एवं रिश्तेदारों का ख्याल भी रखना पड़ता है भले ही उसके लिए उसे कितना दुःख सहन करना पड़े।

कुटुंब को जब महक के बारे में पता चलता है तो वह बहुत गुस्से होती है। और तड़फकर कहती है – ''उस बाज़ारू औरत से आपके दो बच्चे हैं और आपने हमें खबर तक न होने दी।''[2] कुटुंब को यह बात जानकर बहुत दुःख होता है कि उसके बच्चे भी हैं। कृपानारायण महक की माँ नसीम बानो का मुकद्दमा लड़ते हैं वही महक से उनकी मुलाकात होती है और प्यार में बदल जाती है। वकील साहिब महक के पास भी जाते रहते हैं और कभी रात भी वहाँ गुजार लेते हैं।

रज्जन की सालगिरह में बदरू और मासूमा को भी बुलाया जाता है लेकिन बच्चों को देखकर कुटुंब और उसके भाई–भाभियाँ बहुत गुस्से होते हैं। बच्चे कुछ–न–कुछ सुनाते हैं। बदरू भी नज़्म पढ़ते हैं। कुटुंब भी गज़ल गाती हैं। गज़ल की कुछ पक्तियाँ कुटुंब छोड़ देती है तो बदरू कह देते हैं कि अम्मी यह गज़ल बहुत अच्छी गाती हैं। लेकिन दम्मो को इस बात पर गुस्सा आता है और बदरू को जोर का तमाचा मार देता है। बदरू रज्जो भाई से कहते हैं – ''हम अम्मी से क्या कहेंगे ! वह हमें भेजना न चाहती रहीं, हमीं ने ज़िद की थी। पहली बार यहाँ आने पर मार खाई..... हमें घर पहुँचाइए, अब हम यहाँ न रुकेंगे।''[3] रज्जो बदरू को समझाते हैं कि यह बात अपनी अम्मी को मत बताना नहीं तो

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश, पृ0– आवरण पृष्ठ से

[2] वही – वही पृ0– 47

[3] वही – वही पृ0– 26

उन्हें दुःख होगा। जब महफिल खत्म होती है तो कुटुंब का दिन–भर का गुस्सा रुलाई में बहने लगता है। वह कहती है – "आखिर आपने भरी बिरादरी में हमारा तमाशा बना कर ही दम लिया। अपने बच्चों से मुँह फेरे रहे। सारे नातों–रिश्तों ने देखा। अपनों से बेगानगी आख़िर तो दुश्मनों ने पैदा कर ही दी ! ..... उन्हें पूरी बिरादरी के सामने पेश करना ज़रूरी था क्या ? शजरे में शामिल किए बिना आपके अरमान पूरे न होते थे ? हमारे दिल पर जो गुजर गई वह दुश्मन के साथ भी न हो।"[1] कुटुंब को लगता है कि बच्चों को यहाँ बुलाकर उसकी बेइज्जती की है। कुटुंब की बातों को सुन वकील साहिब सोचते हैं कि– "आमने–सामने पसरी पड़ी है दो बिछौनों की दो औलादें। औलादें भी क्या। दो किस्में। दो मिज़ाज। दो गिरोह।..... एक मुसलमानी है दूसरी मुसलमानी नहीं, हिंदुआनी है। हकीकत यह भी कि दोनों माँएँ हैं और दोनों ने बच्चे हमीं से पाए हैं।"[2] वकील साहिब न एक को छोड़ पाते हैं न दूसरी को। फर्क सिर्फ इतना है कि कुटुंब महक को सहन नहीं कर पाती क्योंकि कोई भी औरत कभी दूसरी औरत को सहन नहीं करती है।

कुटुंब पहली तकरार उस कंगन को लेकर करती है जो वकील साहिब की माँ ने बदरू के जन्म पर अपनी ओर से महक को दिये थे। कुटुंब का कहना है कि यह घर का पुराना जेवर है और घर में ही रहना चाहिए। कुटुंब वकील के साथ महक के पास कंगन लेने जाती है। कंगन को माँगने की पहल कुटुंब ही करती है। महक बिना संकोच किए कंगन कुटुंब को सौंप देती है। महक कहती है –"हम तो माँगने न गए थे आपसे। आपने कहा पहनिए, हमने पहन लिया। अब जिसका है उसको पहुँचे तो हमें भी कलक क्यों होने लगी।"[3] कृपानारायण एक वफादार पति और वफादार प्रेमी की भूमिका का एक साथ निर्वाह करते हैं। कुटुंब फराशखाने में जाकर देखती है कि हवेली की तरह यहाँ कुछ भी नहीं है फिर भी यहाँ इनका दिल लगा रहता है। वहाँ मियाँ के हाव–भाव देख सोचती है–

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश, पृ0– 34

[2] वही – वही पृ0– 38

[3] वही – वही पृ0–64

"क्या बेला–गुलाब फूलने लगे इनके चेहरे पर। ऐसे मर्दों को ऐसी औरतें ही अपने जाल में फँसाया करती हैं।..... हवेली में तो जैसे यह मेहमान हुआ करें और असली गृहस्थी तो हज़रत यहीं जमाए हुए हैं। कलेजे में जाने कैसी–सी छटपटाहट हुई।"[1] कुटुंब अपने पति को महक के साथ मिल बाँट कर जीने के लिए तैयार नहीं। कृपानारायण के लिए जो दिल्लगी–दिलजोई है, वही कुटुंब के लिए दिल की फांस बन जाती है। बदरू और मासूमा हवेली जाकर आते हैं तो दोनों घरों में अन्तर देखते हैं। मासूमा ने हिकारत से अपने सामने पसरे कमरे को देखा और सुलगती आवाज़ में कहा – "बदरू, अब्बू वैसे नहीं जैसा आप उन्हें समझते हैं। कहाँ उनके अपने घर में ग़लीचे, झाड़–फानूस, काऊच, कुर्सी–मेज़ और कहाँ यह हमारा उजाड़ घर। हवेली के मुकाबले यहाँ कुछ नहीं है अम्मी ! उनके नौकरों के घर इससे बेहतर होंगे।"[2] इसके बाद आपस की पर्देदारी उठ जाती है और सच्चाई खुलकर परत–दर–परत सामने आती है।

कुटुंब जब अपने मायके जाती है तो वह अपने दिल की बात अपनी भाभी को बताती है। क्योंकि ससुराल में तो बउआजी और छुन्ना बीबी से वह कह नहीं पाती हैं। छुन्ना बीबी कृपानारायण की बहन है। विधवा हो जाने के पश्चात् वह मायके में ही रहती है। वह पढ़ी लिखी होने के कारण रूढ़ मान्यताओं को स्वीकार नहीं करती है। उसका अपनी भाभी कुटुंब से भी ज़्यादा लगाव नहीं है। छुन्ना सोचती है कि – "ससुराल छोड़ यहाँ भी क्यों बैठे हैं। कौन–सी खटपट है जो वहाँ थी और यहाँ नहीं। कहने को कुनबा इकट्ठा है पर हर कमरे में दबी–छिपी आग सुलगती रहती है। मेरा–तेरा, इसका–उसका, पंगे पर पंगा। मौका लग जाए तो बड़ी–से–बड़ी हज़्म। कहीं कुछ सूझ जाए तो छोटी–से–छोटी को तूल।"[3] छुन्ना कभी–कभी ससुराल जाती है। ज्यादातर वह मायके में ही रहती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश, पृ0– 63

[2] वही – वही पृ0– 67

[3] वही – वही पृ0– 56

पुरुषों की मनमानी को लेकर कुटुंब ही नहीं, कृपानारायण की माँ के मन में भी कसक है। कुटुंब कहती है –"मर्द ठहरे, जो भी करें। खानदानों में सब मंजूर। ऊपर से रूआब और दबदबा कि ऐसा क्या कर डाला जो हमें न करना चाहिए था। इनके गुनाहों पर कौन ख़ाक डालनेवाला है। बाबाजी के जाते ही खुदमुख़्तारी सर पर चढ़ गई। सबकुछ करेंगे लेकिन दूध के धुले बने रहेंगे।"[1] कुटुंब का विक्षोभ जब विस्फोटक रूप धारण कर लेता है तो बउआजी उससे कहती है –"अरे जो बाप–दादा करते रहे वही तो बेटे करेंगे। खानदानों में ऐसे ज़लज़ले–भूचाल तो उठते ही रहते हैं। उलट–फेर के बाद फिर वहीं के वहीं। कुछ साल और निकल जाने दो। हमेशा मरे हुस्न के चक्कर नहीं रहते। रोग–बीमारी में पलटकर आएँगे तुम्हारे ही पास।"[2] बउआजी के कहने पर वह नहीं मानती है और वह कुछ–न–कुछ वकील साहिब को आए दिन कहती रहती है। उसकी भाभी उसे समझाती है कि फसीलवाले भैरों बाबा से ही कुछ करवा ले।

बदरू स्कूल से आकर अपनी अम्मी को यह बताते हैं कि स्कूल के सभी लड़के कहते हैं कि तुम मुसलमान नहीं हिन्दू की औलाद हो तुम्हारा नाम बदरूद्दीन नहीं बद्रीनारायण है। अम्मी को यह बातें सुनकर दुःख होता है और वह बहुत रोती है। रोती हुई वह खाँ साहिब की अम्मी के पास चली जाती है जो उसे बेटी की तरह मानती हैं। वह सब अजमेर ख्वाज़ा साहिब की ड्यौढ़ी जा रहे होते हैं तो महक को भी साथ चलने के लिए कहते हैं ताकि उसके दिल को सकून मिल सके। महक वकील को बिना बताए उनके साथ चली जाती है। जब वकील साहिब को पता चलता है तो उन्हें बहुत गुस्सा आता है। उन्हें शक होता है कि कहीं अनवर खाँ ने पटा तो नहीं लिया है। पर वह दिल में सोचते हैं कि महक ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि हमसे उनके बच्चें भी हैं। कृपानारायण महक के घर आते हैं और उनको कुछ ऐसा अहसास होता है कि अजमेर ख्वाज़ा से लौटने के पश्चात् महक में बदलाव आ गया है। कृपानारायण भारी गले से बोले – "आज यह चमन उजाड़, सुनसान क्यों ! खाँ साहिब ने

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश, पृ0 –75

[2] वही – वही पृ0– 72

हमारा हीरा तो नहीं चुरा लिया ! सच–सच कहिए जानम, नहीं तो हम ज़हर खा लेंगे।"[1] महक कहती है कि जहर तो आपको नहीं मुझे खाना चाहिए। अब मुझमें सहन करने की शक्ति नहीं रही। जब वकील महक के घर से लौट कर जाते हैं तो कई दिनों तक वापिस नहीं आते हैं। अब वह बीबी का पूरा ध्यान रखते हैं। एक दिन जब बाहर जाने लगते हैं तो कुटुंब मना कर देती है लेकिन वकील साहिब कहते हैं कि वह जल्दी ही लौट आएँगे। वह महक के पास जाते हैं और महक उनके जूते खोलने लगती है तो वह कहते हैं कि मुझे वापिस जाना है। महक मुस्कुराई – "इतनी ही कि एक शख़्स एक ही वक्त दो बिछौनों के फर्ज़ कैसे निभा सकता है।"[2] महक की बात सुन वकील साहिब रुक जाते हैं। महक का गला भर जाता है और कहती है –"क़सम से, आप न रुकते तो आज की रात हम सौ बार मरते, पर आपसे कुछ न कह पाते।"[3] कृपानारायण महक को बीबी समझ प्यार करते हैं – "कृपानारायण अजीब सख़्ती से, बेरहमी से बानो को दाबने–तापने लगे जैसे उनके पास उनकी बीबी हो। कुछ ज़िद। आदत। रंजिश। कुछ दुश्मनी। बानो ने जाने किस अहसास से कोई वीराना देख लिया। कड़े हाथ से रोक देकर कहा– आप किसे खिला रहे हैं ? बीबी को कि हमें?"[4] बानो उनका इस तरह का प्यार सहन नहीं कर पाती है। वह बहुत गुस्से होती है। उसे पहली बार गुस्से में देखते हैं। कृपानारायण कहते हैं –"जो तूफ़ान उठ खड़ा हुआ है उसमें हम एक–दूसरे के लिए बाकी भी बचेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता।"[5] कृपानारायण सोचते है कि वह महक से हमेशा के लिए अलग हो रहे हैं।

वकील महक को बताते हैं कि हम मासूमा की शादी की बात करने आये हैं। छुन्ना के ससुराल वालों ने उन्हें पसन्द कर लिया है। उनकी यह शर्त है कि मासूमा की शादी

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| [1] कृष्णा सोबती | – | दिलो–दानिश, | पृ0– 112–113 |
| [2] वही | – | वही | पृ0– 134 |
| [3] वही | – | वही | पृ0– 134 |
| [4] वही | – | वही | पृ0– 134 |
| [5] वही | – | वही | पृ0– 135 |

हवेली में की जाये और उसे रस्मी तौर पर बेटी बना लिया जाए। शादी के बाद वह हवेली में ही आये–जाये। यहाँ नहीं। वकील पूछते हैं कि तुम्हारा इसके बारे में क्या फैसला है। महक को बुरा लगता है कि मेरी बेटी शादी के बाद यहाँ नहीं आ सकती यह कैसे होगा ? वकील साहिब बताते हैं कि गिले शिकवे भूल कर फैसला करना मासूमा की जिन्दगी का सवाल है। वह बेटा–बेटी पर अपना फैसला छोड़ देती है। बदरू तो पहले ही अपने अब्बा की हर बात का समर्थन कर रहा था, परन्तु जब मासूमा भी इस बात को स्वीकार कर लेती है तो महक को लगता है कि उसे किनारे पर छोड़ बच्चों को वकील ने अपनी तरफ कर लिया है। वकील और छुन्ना शादी के कपड़े और गहने महक को दिखाने आते हैं तो महक देखने से इन्कार कर देती है। छुन्ना और वकील दोनों उसे समझाते हैं लेकिन महक नहीं मानती है। जब वह जाने लगते हैं तो वह अपनी माँ के जेवर वकील साहिब से माँगती है। लेकिन वकील कहते हैं – "आप क्या चाहती हैं, यह हम जानते हैं मगर अफसोस, वह हम आपको दे नहीं सकते।"[1] एक तरफ शादी की तैयारियाँ हो रही हैं और दूसरी तरफ तुम ज़ेवर माँग रही हो। महक कहती है – "हमारे ज़ेवर तो हम तक पहुँचाइए। अब हम और इंतज़ार न करेंगे।.... हमारी माँ के जेवर हमें आज शाम तक मिल जाने चाहिए वकील साहिब।"[2] लेकिन महक अपनी बात पर अड़ जाती है। महक को शादी में आने के लिए मना किया गया था लेकिन वह शादी में आ जाती है। उनके साथ खाँ साहिब और अन्य भी आते हैं। वह मासूमा से गले मिलती है और कहती है – "हम तुम्हारे फर्ज से अदा हुए बेटी। तुम्हें अपने यहाँ के भी जेवर पसन्द आएँगे। तुम्हारे अपने हैं।..... मासूमा, अपने ससुराल में कायदे से निभाना। तुम्हारे अब्बू खुश होंगे और हम भी।"[3] मासूमा माँ से गले लग रोती है लेकिन बानो बेटी को आशीर्वाद देकर चली जाती है। वकील साहिब महक को उनकी समधिन से मिलवाते हैं। उनसे मिलकर वापिस जाने लगती है तो रज्जो कहते हैं कि खाना खाकर जाइएगा। लेकिन बानो कहती है– "दस्तूर के मुताबिक हमें तो आज बरती

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश, पृ0– 170

[2] वही – वही पृ0– 171

[3] वही – वही पृ0– 184

रहना है बेटे। मासूमा की माँ हैं हम।''[1] मासूमा की शादी चाहे हवेली से कर रहे हैं लेकिन हम उसकी माँ हैं माँ होने के नाते व्रत रखना हमारा फर्ज़ है। वह बिना खाए ही वहाँ से आ जाती है।

मासूमा की शादी के बाद वकील साहिब बीमार पड़ जाते हैं। बदरू हवेली में आते–जाते रहते हैं। लेकिन महक नहीं आयी। वकील उनका इन्तज़ार करते रहते हैं। कृपानारायण बीबी को कहते हैं –''इधर आप हमारी तक़दीर बनी रही, उधर वह हमारी आबरू रौंदकर अपनी तदबीर आज़माने चल पड़ी। और हम..... हम हमारी तकदीर का पुराना परचम लिए–लिए बीच में ही लटके रह गए।''[2] महक वकील साहिब के पास नहीं आती है तो उन्हें दुःख होता है कि खाँ साहिब के कारण वह हमें भी भूल गयी। लेकिन जब महक के आने की खबर उन्हें मिलती है तो वह बीबी से कहते हैं – ''उन दोनों से मुलाकात हो जाएगी, यह अच्छा ही होगा। कहते हैं न, आत्मा भटकती फिरती है। बाद में हम भी किस–किसको खटखटाते रहेंगे !''[3] महक के आते ही वकील साहिब सोचते हैं कि आखिरी बार मिल लिए नहीं तो हमारी आत्मा ऐसे ही भटकती फिरती। महक के आने पर उन्हें थोड़ा सकून मिलता है। वकील साहिब की हालत को देखकर महक की आँखों में आँसू आ जाते हैं। वह खाँ साहब के साथ कमरे से बाहर आ जाती है। वकील साहिब के कमरे में उनके सारे रिश्तेदार इकट्ठें हो जाते हैं। धीरे–धीरे उनकी आँखें बंद होती जाती हैं और दुनिया से बहुत दूर चले जाते हैं।

''ड्योढ़ियों के अन्दर इत्मीनान से औलादें पैदा होती रहती हैं – फर्ज़ों में पलती रहती हैं और शादी–ब्याह से परवान चढ़ जाती हैं। बीच में दबे–छिपे छोटे–बड़े सच हल्कान होते रहते हैं और वक्त के तकाज़ों के साथ खेल खत्म हो जाते हैं, दुबारा शुरु हो जाने को। दिलो–दानिश में कोई फलसफा नहीं, न किसी के खिलाफ या हक में कोई फतवा नहीं है, बल्कि एक

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश, पृ0– 186

[2] वही – वही पृ0– 180–181

[3] वही – वही पृ0– 187

सीधी–सादी जवाबदेही इन्सानी रिश्तों में उभरती है।''[1] सोबती जी ने संयुक्त परिवार के अंदरूनी तनावों को उभारा है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती ने नारी–जीवन को अपने उपन्यासों में एक नया और अद्वितीय आयाम दिया है। नारी मन की भीतरी परतों को स्पष्ट करने में सक्षम रही हैं। कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास में सदा एक अछूते विषय को छुआ है। मित्रो जैसी नारी का चित्रांकन करना एक साहस का काम है जो सोबती जी ने किया है। सोबती जी की नारी हिन्दी साहित्य की नारियों से नितान्त भिन्न है। वे अपने अनूठे व्यक्तित्व और स्वतन्त्र अस्तित्व के कारण भिन्न हैं। ये नारियाँ पुरुष के माध्यम से जीवन मूल्यों और अर्थों की खोज नहीं करती, बल्कि अपने पूरे अस्तित्व को सामने रखकर विविध प्रामाणिक सन्दर्भों और जिम्मेदारी को निभाती दिखाई पड़ती हैं।

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश, पृ0–आवरण पृष्ठ से

# षष्टम अध्याय : कृष्णा सोबती की नारी-चेतना : यथार्थता और समसामयिकता के सन्दर्भ में

कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में नारी–चेतना मुखरित हुई। नारी जागरण और चेतना–विकास का नितान्त उन्नत स्वरूप रूपायित हुआ है। कृष्णा सोबती का जिन्दगी के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण रहा है। उन्होंने हमेशा अपने जीवन को चैलेंज के रूप में स्वीकार किया है। वे स्वयं भी जिन्दगी को कल्पना की दृष्टि से न देखकर यथार्थ स्वरूप देखना चाहती हैं। जब भी उन्हें समाज से या आस–पास के वातावरण से ठोस चीज प्राप्त हुई है या कोई यथार्थ सामग्री जो उनकी आत्मा को छूकर गुजर गई, मिली तो लिखने को विवश हो गयी। वे समाज में बंधी बंधाई चली आ रही प्राचीन मान्यताओं का खण्डन अपने साहित्य के माध्यम से कर डालना चाहती हैं।

कथाकार मानव जीवन के यथार्थ रूप को अपना विषय बनाता है। कथा–साहित्य में मानव–जीवन का यथार्थ और समग्र चित्रण मिलता है। वह अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा शक्ति के द्वारा जीवन के यथार्थ अर्थ सन्दर्भों को अपने साहित्य के रूप में चुनता है। कथाकार की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि वह अपने युग तथा जीवन के कितने बड़े व्यापक क्षेत्र के यथार्थ को ग्रहण करता है।

यथार्थ और समसामयिकता का आपसी घनिष्ठ सम्बन्ध माना जा सकता है। क्योंकि सामयिकता जीवन के सभी क्षेत्रों में सक्रिय होने के साथ–साथ जीवन की गहनतम समस्याओं से रचनाकार का व मानव–समाज का परिचय करवाती है एवं इस सत्य में यथार्थ की आवश्यकता होती है। समसामयिकता को किसी युग–विशेष की परिस्थितियाँ–स्थितियाँ प्रभावित करती हैं, जैसे ही ये परिवर्तित होती हैं वैसे ही सामयिकता भी परिवर्तित होती है जिनके कारण यथार्थ भी प्रभावित होता है। समसामयिक यथार्थ वह महत्वपूर्ण मापदण्ड है जिसके आधार पर किसी भी रचनाकार की कृति के महत्व को आँका जा सकता है। सामान्य जन–जीवन के प्रति निष्ठा, जनता के दुःखों के प्रति पीड़ा, व्यवस्थाजन्य विकृतियों एवं उनका पोषण करने वाले वर्ग के प्रति चोट, विसंगतिपूर्ण परिवेश के प्रति असन्तोष, परिवर्तन की

आकांक्षा आदि तथ्य ही किसी रचनाकार का यथार्थ–स्थिति से परिचय कराते हैं। वे शोषण, मूल्यों का विघटन, व्यवस्था विरोध या उसके लिए होने वाला संघर्ष एवं भविष्य के प्रति अडिग आस्था अपने मिले–जुले रूप में समसामयिक यथार्थ के अन्तर्गत रूपायित होती है।

कृष्णा सोबती ने मुख्य रूप से नारी को ही चित्रित किया है। क्योंकि उनके साहित्य का मूल रूप नारी को ही लेकर चला है। उन्होंने समाज और घर दोनों में नारी की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इनके कथा–साहित्य में नारी का जीता–जागता यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। कृष्णा जी समसामयिक जीवन यथार्थ और उस जीवन के बीच उभरती नारी की सच्ची तस्वीर उपस्थित करती हैं। कृष्णा सोबती ने नारी की अन्तर्रात्मा में झाँक, उसकी मूलभूत, सामाजिक, आर्थिक और नारी व्यक्तित्व से जुड़ी अनेक समस्याओं के यथार्थवादी रूप को खोजने की कोशिश की है। उन्होंने संघर्षशील, टूटती, बिखरती नारी को चित्रित किया है। साथ ही नयी चेतना के आलोक में बनते नए मूल्यों, सम्बन्धों और जागरूक नारी को चित्रित किया है। उन्होंने वस्तुस्थिति का चित्रण यथार्थ रूप में किया है। कृष्णा सोबती ने अपने कथा–साहित्य में आदर्श की गरिमा से हटकर यथार्थ और वास्तविकता के सत्य की स्थापना की है और वह ऐसा असाधारण सत्य है जो कभी नहीं मरता है। "आदर्शों की भव्यता और गरिमा का झूठा घेरा न तो पाशो को घेर सका, न मित्रो को बाँध और न ही रत्ती को दायरे में बन्द कर सका।"[1] यथार्थ को लेकर चलने वाले स्वाभाविक जीवन को अपने कथा–साहित्य में उभारा है।

## 6.1 कृष्णा सोबती युगीन समाज और कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य में समाज

कृष्णा सोबती युगीन समाज वह समाज है, जिसमें कृष्णा जी पैदा हुई पली बड़ी हुई। "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। संयोगवश वह जिस युग में और जिस समाज में पैदा होता है, उस युग की और उस समाज की विभिन्न संस्थाएँ उसके जीवन को पग–पग पर नियन्त्रित और परिचालित करती हैं। वे उसके जीवन को एक विशिष्ट रूपाकार में सजाती हैं।

---

[1] अमर प्रसाद गणेश प्रसाद जायसवाल – हिन्दी लघु उपन्यास, पृ0– 213

उसके व्यक्तित्व को एक विशिष्ट सांचे में ढालती हैं।"[1] जिस समाज में वह रहता है वही उसका समाज कहलाता है। उसका प्रभाव उसके दृष्टिकोण तथा जीवन दर्शन पर पड़ता है।

उस समय समाज में वर्ण व्यवस्था, संयुक्त परिवार की प्रथा चल रही थी। भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। ब्रिटिश सरकार का राज था और भारत की स्थिति अच्छी नहीं थी। धीरे–धीरे स्थिति में सुधार होने लगा। आधुनिक शिक्षा और पाश्चात्य आन्दोलनों का प्रभाव होने लगा। उस समय के लोग अंधविश्वासो और रूढ़ियों में जकड़े हुए थे। समाज में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। कृष्णा सोबती कहती हैं कि –"एक ओर खेतीहर वर्ग से जुड़ी हूँ जो अपने मिज़ाज के खुलेपन से आपको कुछ भी कर सकने की जुर्रत देता है, दूसरी ओर उस सफेदपोश वर्ग की उपज भी हूँ जिसकी सफेदपोशी उसकी भंगिमा की पयार्य बन चुकी है। खुले दिल स्वीकार करना चाहूँगी कि इस वर्ग का तथाकथित व्यवहार, साज–सँवार और उनके नीचे पलती कुंठाओं से कहीं गहरी और पुख्ता मान्यताओं को मैंने इसी ढाँचे में जिया है और आत्मसात किया है ।..... इस वर्ग के रख–रखाव में अपना बचपन बीता, वह आज के हिसाब से समकालीन ही लगता है।"[2] सोबती जी को बीता हुआ बचपन आज के समकालीन ही लगता है।

सोबती जी ने गाँव व शहर दोनों की ज़िन्दगी जी है। कृष्णा सोबती जी के कथनानुसार–"हमारे बचपन का संसार काल्पनिक मनघड़ंत कहानियों का संसार नहीं था। वह शहर और गाँव के अलग–अलग रंग, रूप, गंध से भरपूर था। जैसे ही गाँव की मुंडेरें दीखतीं पहाड़ों के मुखड़े दूर पड़ जाते। .....सुबह–सुबह खेत जाते। दरिया नहाते। पानी भरे घड़े उठाने की होड़ लगती। काँसी के कटोरों में दूध पीते। रोटी पर मक्खन और बूरा खाते। चर्खा कातते। पश्म बीनते। रौ में आ कच्चे कोठों की लिपाई करते ।"[3] इस तरह उन्होंने अपने गाँव

---

[1] त्रिलोकचन्द तुलसी – परिवेश, मन और साहित्य, पृ0– 1

[2] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, पृ0– 406

[3] वही – वही पृ0– 408

की ज़िन्दगी को जिया है। कोई भी कहानीकार, उपन्यासकार किस युग में पैदा हुआ यह जानना आवश्यक होता है, क्योंकि उसके युगीन समाज से ही हम उसकी रचनाओं को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे।

कृतिकार सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज से विमुख नहीं हो सकता। यही कारण है कि उनकी कृतियों में युग का सीधा–सादा चित्र मिल जाता है। वह साहित्य सृजन की सामग्री जीवन और जगत से ग्रहण करता है, परंन्तु अपनी कृतियों पर व्यक्तित्व की अमिट छाप डाले बिना नहीं रह सकता और यही छाप उसे युग–युग तक जीवित रखती है। इस प्रकार साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जो युगीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब होता है। प्रत्येक साहित्यकार उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है और साहित्य उसी युग के सत्य को उद्‌घाटित करता है। जिस समाज में वह जीता है और जिस समाज को वह भोगता है उसका चित्रण स्वाभाविक है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसलिए साहित्य रूपी दर्पण में समाज का यथार्थ चित्रण होना चाहिए। कृष्णा सोबती के साहित्य में अधिकतर पंजाबी समाज को ही चित्रित किया है। कोई भी साहित्यकार लिखता है तो वह अपने वातावरण, समाज से प्रभावित होकर लिखता है। देवराज उपाध्याय के अनुसार,–''यदि किसी पंजाबी प्रदेश की संस्कृति, रहन–सहन, चाल–ढाल, रीति–रिवाज की जानकारी प्राप्त करनी हो, इतिहास की बात जाननी हो, वहाँ की दन्तकथाओं, प्रचलित लोकोक्तियों तथा 18वीं–19वीं शताब्दी की प्रवृत्तियों से अवगत होने की इच्छा हो तो 'जिन्दगीनामा' से अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं।''[1] 'ज़िन्दगीनामा' में पंजाब के ग्रामीणों के जन–जीवन का वर्णन हुआ है। मानव जीवन तत्कालीन परिस्थितियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता रहता है। उसी को लेखक अपनी लेखनी द्वारा चित्रित करता है।

कृष्णा सोबती ने संयुक्त परिवार को अधिक उभारा है। 'डार से बिछुड़ी' उपन्यास में खत्री परिवार का चित्रण किया है। जिसमें पाशो के मामा–मामियाँ, नानी सभी मिलजुल कर रहते हैं। 'मित्रो मरजानी' में मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार को दर्शाया है। गुरूदास

---

[1] देवराज उपाध्याय – ज़िन्दगीनामा, समीक्षा–जनवरी–मार्च, 1980 पृ0 –21

की पत्नी, तीन पुत्र और तीन बहुएँ हैं। 'ज़िन्दगीनामा', दिलो–दानिश', 'दादी अम्मा' कहानी आदि में संयुक्त परिवार को चित्रित किया है। पाशो के मामा के परिवार में मान–मर्यादा को महत्व दिया जाता है। पाशो की माँ की गलती के कारण पाशो से सख्त व्यवहार किया जाता है। उसे शक की निगाह से देखा जाता है यहाँ तक कि उसे मार देने तक की योजना बना दी जाती है। लेकिन पाशो रातों रात ही वहाँ से भाग निकलती है। पाशो के मामा को जब यह पता चलता है कि पाशो दिवानों की बहू बनी है तो वह कहते हैं – "शेखजी, हम अभागों की पत जो एक दिन सिर से उतर गयी थी, यह आपने लौटा दी। शुक्र है..... शुक्र है, मालिक का..... लड़की हमारी कुलीन घर जा बैठी.....।"[1] पाशो के मामा के घर इज्जत आबरू को महत्व दिया जाता है। शेख परिवार में खुला वातावरण है जबकि पाशो के घर का वातावरण संकीर्णता से भरा हुआ है।

'मित्रो मरजानी' में गुरूदास के परिवार कर ढाँचा काफी बदला हुआ है। संयुक्त परिवार का विघटन तेजी से होता जा रहा है। फिर भी संयुक्त परिवार किसी न किसी रूप में मौजूद हैं। पारिवारिक मूल्यों का विघटन हो रहा है। इस परिवार में बूढ़ों की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है। "धनवन्ती चौके–चूल्हे में लगी रही। बहुएँ कन्नी काट अपने–अपने काम में रुझी रहीं..... धनवन्ती बेचारी इस कबीलदारी में ऐसी फंसी कि नासमझ को न सुध अपनी, न इस बूढ़े गुरूदास की।"[2] संयुक्त परिवार की समस्याएँ दृष्टिगत होती हैं। छोटा बेटा गुलजारी और उसकी पत्नी संयुक्त परिवार में नहीं रहना चाहते हैं। मित्रो की अतृप्त कामवासना के कारण परिवार का सुख–चैन समाप्त होता जाता है। केवल बड़ी बहू ही परिवार को टूटने से बचाए रखती है।

'दादी अम्मा' कहानी में भी संयुक्त परिवार की स्थिति को उजागर किया गया है –'बड़ा पोता काम जा रहा है। दादी अम्मा पास आ खड़ी हुई। एक बार ऊपर–तले देखा और बोली, "काम पर जा रहे हो बेटे, कभी दादा की ओर भी देख लिया करो, कब से उनका जी

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0– 45

[2] वही – मित्रो मरजानी, पृ0– 8

अच्छा नहीं। जिसके घर में भगवान के दिये बेटे–पोते हों, वह इस तरह बिना दवा–दारू पड़े रहते हैं।''[1] 'ज़िन्दगीनामा' में शान्त सामाजिक वातावरण का वर्णन किया है। गाँव के सभी लोग मिलजुल कर रहते हैं। ग्रामीण समाज के प्रेमी–प्रेमिकाओं के सम्बन्धों को भी उभारा है।

'दिलो–दानिश' में उच्च मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण हुआ है। दिल्ली जैसे शहर में रहने वाले कृपानारायण पत्नी और रखैल के बीच जीवन जी रहे हैं। अनेक समर्थ व्यक्ति एक या एक से अधिक रक्षिताओं के साथ सम्बन्ध रखना अपमान नहीं समझते हैं।

सोबती जी ने विधवा–विवाह, अनमेल–विवाह को भी उभारा है। 'बदली बरस गयी' कहानी में कल्याणी की माँ विधवा हो जाने पर परिवार वालों से दुःखी होकर घर छोड़कर सन्यासी बन जाती है। 'दिलो–दानिश' की छुन्ना बीबी भी विधवा है। उस पर भी पुरानी मान्यताओं को थोपा जाता है। बार–बार उसे विधवा का अहसास कराके उसके स्वाभिमान को दबाने की कोशिश की जाती है। उसका विधवा होना ही दुर्भाग्यपूर्ण है। वह किसी भी प्रकार के सामाजिक, धार्मिक कार्यों में भाग नहीं ले सकती। ''कल सुबह–सुबह सब लोग लखनऊ जाएँगे।..... आपके कमरे के सामने से न निकलेंगे। पिछवाड़े से जाएँगे।''[2] विधवा स्त्री को पुरानी मान्यताओं के कारण अपमानित, दुःखी होना पड़ता है। लेखिका ने वेश्या समस्या को भी उभारा है।

उस समय के रीति–रिवाज, रहन–सहन का भी बड़ा सजीव वर्णन किया है। तत्कालीन समाज में प्रचलित विश्वासों को भी प्रस्तुत किया है। फूल झड़ने पर शुभ काम होना, लड़का होने पर मिठाई बाँटना, बच्चों के माथे पर काला टीका लगाना, बच्चे के पहले त्यौहार लोहड़ी दीवाली आदि धूमधाम से मनाना, बच्चे के मदरसे जाने से पहले सात घरों से भिक्षा माँगना आदि रीति–रिवाजों को दर्शाया है।

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0– 32

[2] वही – दिलो–दानिश, पृ0– 116

'ज़िन्दगीनामा' में लोक–जीवन का सुन्दर चित्रण 'त्रिजन' का मिलता है। गाँव भर की लड़कियाँ और प्रौढ़ाए रातभर एक जगह मिल कर सूत कातती हैं और बैठकर लोकगीत गाती हैं–

"डोली चढ़दया मारियाँ हीर चीकाँ
मैनू लै चल बाबला लै चलो वे
मैनू रख लै बाबला हीर आखे
डोली छत्त कहार नी लै चल वे।
साडा बोलना–चालना माफ करना
पंज रोज़ तेरे घर रहे चले वे।"[1]

पंजाब जन–जीवन में हर खुशी का स्वागत गीतों से होता है। शाहनी गर्भवती हुई तो गीत, लाली का जन्म हुआ तो गीत। जादू टोने आदि में भी लोग विश्वास रखते हैं। 'दिलो–दानिश' में कृपानारायण के सम्बन्ध महक से होते हैं तो कृपानारायण की पत्नी कुटुंब उन दोनों में सम्बन्ध–विच्छेद करवाने के लिए भैरोबाबा के पास जाती है। 'ज़िन्दगीनामा' की शाहनी सन्तान पाने के लिए बाबा फरीद की दरगाह पर मनौती माँगने जाती है।

कृष्णा सोबती ने सम्पन्न, मध्यवर्गीय, निम्नवर्गीय सभी प्रकार के लोगों को चित्रित किया है। शेख, शाह, दिवान, कृपानारायण, शाहनी कुटुंब, मेहर आदि सम्पन्न वर्ग के लोग हैं। गुरूदास, नयनीबाबू, पाशो, रत्ती, मित्रो, तमन्ना, शिवा, तमाशा आदि मध्यवर्ग के लोग हैं। निम्नवर्ग के लोग खेतों में काम करके दो वक्त की रोटी प्राप्त करते हैं। ये लोग दिन–रात मेहनत करके अपना गुजारा करते हैं। मेहरअली ने ज़मीन पर फैले सत्थर की ओर देखा– "जी, जिवियों की मेहनत–मजूरी जट्ट किसान के ज़िम्मे और घुड़चढ़ी–निगरानी शाहों के ! घोड़े पर चढ़ इधर–उधर खेतों पर नज़र मारी, मशीरी की और हर फसल के दाने अपने कोठों

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0– 33

में भर लिए ! पसीना बहाया सो काम्मियों ने !''[1] किसान लोग दिनभर मेहनत करते रहते हैं और उन्हें फिर भी ढंग से खाना नसीब नहीं होता है।

'सिक्का बदल गया', 'डरो मत मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा', 'मेरी माँ कहाँ' आदि कहानियों में विभाजन की विभिषिका पर प्रकाश डाला है। उस समय के साम्प्रदायिक दंगों को भी उभारा है। शरणार्थी समस्या पर भी प्रकाश डाला है। भारत–पाक विभाजन की दुर्घटना, साम्प्रदायिक दंगों के कारण मुसलमान पाकिस्तान जाने लगे और हिन्दुओं को पाकिस्तान से भारत आना पड़ा। 1905 में बंगाल विभाजन की घटना की भी बात की गयी है। 'डार से बिछुड़ी' में अंग्रेज़ों के खिलाफ हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर संघर्ष किया है। उसका चित्रण इस प्रकार है –

''सात समुन्दरों पार गोरा लड़ने आया ...
हाय...हाय... गोरा लड़ने आया...
छिन गये माँ के लाल... गोरा लड़ने आया...
हाय... हाय... गोरा लड़ने आया''[2]

कत्ल, लड़ाइयाँ, चोरी डकैतियाँ युद्ध का वर्णन किया हुआ है। 'ज़िन्दगीनामा' में गाँव के कुछ लोग अंग्रेज़ी राज से घृणा करते थे और कुछ लोग प्रशंसा करते थे। 'यारों के यार' में सम्पूर्ण तन्त्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, दुराचार, भाई–भतीजावाद को उभारा है। मनसुखानी कहते हैं – ''हर जगह सगेवालों का ही बोलवाला है दोस्त ! आज की तारीख में हर सगेवाल, हर सगेवाल का सगेवाल है।''[3] क्योंकि हर जगह आजकल भ्रष्टाचार ही फैला हुआ है। जियालाल सिर हिलाकर बोले– ''जीओ बेटा जीओ... तुमने तो निचोड़ ही निकाल डाला इस

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0– 83
[2] वही – डार से बिछुड़ी, पृ0– 89
[3] वही – यारों के यार, पृ0– 23

धाँधली और कबीलापरस्ती का। आज ब्राह्मण ब्राह्मण का, बनिया बनिये का, कायस्थ कायस्थ का ..."[1] 'यारों के यार' में भ्रष्टाचार, रिश्वत आदि पहलुओं को उभारा है।

कृष्णा सोबती ने समाज के प्रत्येक पहलू को अपने कथा–साहित्य के माध्यम से उभारा है। समाज के हरेक पहलू से सम्बन्धित नारी की विविध समस्याओं को स्पष्ट किया है। लेखक युग चेतना का संवाहक होता है उसके साहित्य में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी परिस्थितियों का प्रभाव होना स्वाभाविक है। सोबती जी ने समाज की समस्त विशेषताओं और उसके गुणों–अवगुणों पर प्रकाश डाला है।

## 6.3 व्यक्तिमूलक जीवन बोध

व्यक्तिमूलक जीवन बोध से रचनाकार का अभिप्राय उस दृष्टिकोण से है जहाँ उसका आधार बिन्दु केवल व्यक्ति होता है। उसकी दृष्टि समाज की अपेक्षा केवल व्यक्ति पर केन्द्रित हो जाती है। कृष्णा सोबती ने व्यक्ति को अधिक महत्ता दी है। ज्यों–ज्यों समय बदलता गया रचनाकार ने अपनी समस्त प्रक्रिया में व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप को पहचानने और जानने की कोशिश की है। व्यक्ति की अपनी अलग अस्मिता है। "व्यक्ति का अर्थ है वह मानव प्राणी, जो समष्टि का विकल्प है, व्यष्टि है, जो चेतन है और जिसकी स्वतन्त्र विशिष्ट अविभाज्य सत्ता ही उसके अस्तित्व का प्रमाण है।"[2] सोबती जी ने साहित्य में ऐसे व्यक्ति को उभारा है जो समय पर अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। कथा–साहित्य में व्यक्ति और समाज दोनों का समान महत्व होता है। परन्तु युग की आवश्यकताओं के अनुरूप कभी व्यक्ति को कभी समाज से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है तथा कभी समाज को। सोबती जी के साहित्य में व्यक्ति केन्द्रित है। समाज के भीतर व्यक्ति को अधिक उभारा है। "प्राचीन

---

[1] कृष्णा सोबती – यारों के यार, पृ0– 23

[2] पुरुषोतम दुबे – व्यक्ति–चेतना और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ0– 4

रचनाकार समाज के माध्यम से व्यक्ति को जानने की कोशिश करता था, फलस्वरूप उसे कुछ अवास्तविक निष्कर्ष प्राप्त होते थे, जबकि आज का रचनाकार समाज के माध्यम से सामाजिक स्वरूप को समझना चाहता है।"[1] सोबती जी ने कथा–साहित्य में व्यक्ति–विशेष और समस्या विशेष से प्रभावित होकर लिखा है। सोबती जी के नारी–पात्रों ने जो भोगा है वह हिन्दी साहित्य की नायिकाओं के भोग से अलग है।

मानव को समाज से अलग रखकर कथाकार ने जब मानव की महत्ता से उसके जीवन की व्याख्या की तो रचना में व्यक्ति प्रधान रचनाओं का सूत्रपात हुआ। मित्रो, पाशो, रत्ती, जया और मन्नो आदि ऐसे नारी चरित्र लेखिका ने चित्रित किए हैं जो अपने अनूठे व्यक्तित्व के कारण याद किए जाएँगे। व्यक्तिमूलक चित्रण व्यक्ति के स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष अस्तित्व को आधार बनाकर चला है। रचनाकार ने समाज के समस्त रूढ़ि, परम्पराओं, नियमों–बन्धनों के प्रति व्यक्ति के विद्रोह के स्वर को उभारा है। क्योंकि वे व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता की समर्थक रही हैं। 'सूरजमुखी अँधेरे के' की रत्ती का संघर्ष वैयक्तिक है। उसके जीवन में अनेक पुरुष आए और गए, लेकिन दिवाकर उसके जीवन के शाप धोकर अँधेरे में सूरजमुखी की वृष्टि करते हैं। वैयक्तिक स्तर पर रत्ती अपने अंतस् से जूझती हुई अपने अस्तित्व को बनाने का प्रयास करती है। क्योंकि –

"आकाश में घरौंदे नहीं बनते
आकाश में धरती के फूल नहीं खिलते –
नहीं उगते तो बस नहीं उगते"[2]

रत्ती का समाज के प्रति अस्वीकारात्मक व्यवहार चित्रित किया गया है। बचपन से ही समाज के द्वारा दिए गए दंश और यातना से जूझने के सन्दर्भ को इस उपन्यास में उभारा है। कृष्णा

---

[1] संतबख्श सिंह – नयी कहानी : कथ्य और शिल्प, पृ0– 51

[2] कृष्णा सोबती – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ 0 –135

सोबती ने समाज की व्यवस्था का मूल्यांकन व्यक्ति के हित की दृष्टि से किया है। यह दृष्टिकोण उनके समस्त कथा–साहित्य में दृष्टिगत होता है।

## 6.3 नारी मुक्ति आन्दोलन : गतिरोध और कारण

प्राचीन काल में शिक्षा के अभाव पारिवारिक और समाज के विरोध के कारण नारी का व्यक्तित्व सीमित था। "प्रत्येक परिस्थिति में नारी की स्वभावगत दुर्बलता ही उसे समस्याग्रस्त और पतनोन्मुख बनाती है।..... भय और असुरक्षा की भावना लिए जब तक वह पुरुष से सहारा माँगती रहेगी, इस श्रेष्ठत्व और हीनत्व भावना से मुक्ति असंभव है। सहारा देने और लेने के अंतर को मिटाया नहीं जा सकता। नारी का कामिनी भाव जब तक उसमें विद्यमान है, मुक्ति–आन्दोलन का कोई अर्थ नहीं।"[1] जब तक नारी अपनी कमज़ोरियों से, अपनी कामिनी रूप से, अपनी अभ्यर्थिनी वृत्ति से मुक्ति पाने में सफल होगी उसके सारे बन्धन तब समाप्त होंगे। राष्ट्रीय व समाज कार्यों में अपनी भागीदारी देने के लिए स्वयं को तैयार करना होगा। जब तक नारी स्वयं अपनी राहों का निर्माण नहीं करेगी, वर्तमान स्थितियों को अपनी नियति मानती रहेगी, नये मूल्यों की रचना की बात नहीं सोचेगी तो वर्तमान स्थिति को यथास्थिति बनाए रखने से उसके प्रगति के सब रास्ते बंद होंगे। हिन्दू समाज की अशिक्षा जन्य जड़ता का सबसे ज्यादा शिकार हिन्दू–नारियों को होना पड़ा। इसके अतिरिक्त बाल–विवाह, बेमेल–विवाह, विधवा–विवाह निषेध, परिवार में आर्थिक आधारहीन, महत्वहीन भूमिका, विधवा हो जाने पर मृत पति के साथ जलाने जैसी प्रथाओं के कारण नारी शोषित होती रही। आधुनिक भारत में जितने समाज–सुधार आन्दोलन हुए उनमें नारी–मुक्ति आन्दोलन को विशेष स्थान मिला। भारतीय समाज का आधार धर्म है तो लोगों का परम्पराओं में इतना अधिक विश्वास था कि धार्मिक आडम्बरों में विश्वास न रखते हुए भी उनको छोड़ना उनके लिए संभव नहीं हो पाता था।

---

[1] आशारानी व्होरा – नारी शोषण आइने और आयाम, पृ0– 260

राजा राममोहन राय समाज–सुधार के क्षेत्र में अग्रणी माने जाते हैं। उन्होंने सती–प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह आदि का विरोध किया। मोहनराय भाषणों और अपनी पत्रिका 'सम्बन्ध कौमदी' के माध्यम से बार–बार नारियों की स्थिति सुधारने का प्रयास करते रहे। उनके निरन्तर प्रयास से सती–प्रथा पर प्रतिबंध लगा। अन्य में उन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी।

दयानन्द सरस्वती ने भी शिक्षा का समर्थन किया। दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने अशिक्षा, मूर्तिपूजा, जाति–भेद, छुआछूत, पर्दा–प्रथा, पशुबलि आदि रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

कर्नल अलकाट और एनीबेसेन्ट ने 'थियोसोफिकल सोसायटी' के द्वारा जाति–भेद, ऊँच–नीच, भेद–भाव आदि को मिटा कर नवीन चेतना का संचार किया। इसके अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन, वेद–समाज, प्रार्थना समाज आदि कई संस्थाएँ अस्तित्व में आयी।

पण्डिता रमाबाई ने अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'द हाई कास्ट हिंदू विडो' में तत्कालीन समाज की व्यवस्था की यथार्थ झलक मिलती है। इन्होंने 'शारदा सदन' व 'मुक्ति सदन' की स्थापना की। नारी उत्थान को विशेष महत्व दिया। स्त्री–शिक्षा एवं उसकी मुक्ति तथा उत्थान के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया। उनका कहना है कि केवल शिक्षित स्त्री ही अपने अधिकार तथा स्वतन्त्रता जैसी संकल्पनाओं के प्रति जाग्रत रह सकती है। स्त्रियों को सिर्फ साक्षर ही नहीं, बल्कि सुविज्ञ होकर पुरुषों की बराबरी में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक कार्य करना होगा। यह पाप नहीं बल्कि इनका अधिकार है।

महात्मा गाँधी नारी की दलित, पतित अवस्था को देखकर दुःखी होते थे। उन्हें विश्वास था कि स्त्रियों के मामले में यदि पुरुष हस्तक्षेप न करें तो वे अपनी समस्याएँ स्वयं आसानी से सुलझा सकेंगी, क्योंकि स्त्रियों में बुद्धि और कर्तृत्व शक्ति होती है। गान्धी जी की मान्यता थी कि स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं अपितु उसकी सहधर्मिणी, अर्धांगिनी और मित्र है। वह अहिंसा की मूर्ति है, इसलिए भविष्य का निर्माण उसके हाथों में है। इसलिए उन्होंने स्त्री–मुक्ति के हर सम्भव प्रयत्न किए।

रमाबाई रानाडे ने 'आर्य महिला संघ' की अध्यक्षा के नाते घर–घर जाकर नारी–जागरण का दीप जलाया। स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत कराया। "1917 का वर्ष भारतीय नारी इतिहास में एक मील का पत्थर माना जाता है। डॉ0 एनी बेसेन्ट पहली महिला कॉंग्रेस अध्यक्षा बनीं तो इस अवसर का लाभ ले, स्त्रियों ने, जो अभी तक मुख्यतः सामाजिक क्षेत्र में कार्य कर रही थीं, राजनीतिक क्षेत्र में भी कदम आगे बढ़ाये।"[1]

मार्गरेट कजिंस भारत आने से पहले आयरलैंड में 'स्त्री–मताधिकार आन्दोलन' चला चुकी थी। 1917 में उन्होंने 'वीमेंस–इंडियन ऐसोसिएयन' की स्थापना की। इस संस्था के माध्यम से महिला–मताधिकार आन्दोलन का सफल संचालन किया। सरोजिनी नायडू ने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया। स्वातन्त्र्योत्तर काल में रूढ़िवादिता का ह्रास दृष्टिगोचर होता है। नारी पुरुष की भोग्या अथवा समर्पिता बनकर नहीं रहना चाहती, आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बी बनकर पुरुष से मुक्त होना चाहती है। स्त्रियों में जागरूकता लाने का श्रेय समाज सुधारकों को जाता है। इस जागरूकता के कारण वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई।

पश्चिम में 'बीमेंस लिव' या नारी–मुक्ति की शुरूआत फ्रांस की 'सिमोन द बोउवर' की पुस्तक 'द सेकिण्ड सैक्स' से हुई। तब पश्चिमी स्त्रियों ने पहली बार अपने अस्तित्व के बारे में गम्भीरता से सोचना शुरु किया। सन् 1949 में 'द सेकिण्ड सैक्स' का प्रकाशन हुआ। सीमोन फ्रांस की स्त्री–मुक्ति आन्दोलन की अगुआ थीं और नित नये मुद्दों पर बोल रही थीं। सीमोन ने फ्राँसीसी सरकार द्वारा उत्पीड़ित महिलाओं के पक्ष में आवाज़ उठाई। उन्हें लगा कि यह आधी दुनिया की गुलामी का सवाल है, जिसमें हर अमीर–गरीब हर जाति और हर देश की महिला जकड़ी हुई है। कोई स्त्री मुक्त नहीं। वे नारी–मुक्ति आन्दोलन के प्रति एक समाज–सुधारक का दृष्टिकोण रखती थीं, किन्तु अब वे स्त्री की स्थिति में आमूल परिवर्तन चाहती थीं। युगों से नारी दमन हो रहा था, जिसका उन्मूलन जरूरी था। समाजवाद से स्त्री की समस्या हल नहीं हो सकती। वे रूस की स्त्रियों का उदाहरण भी देख रही थी।

---

[1] आशारानी व्होरा – नारी विद्रोह के भारतीय मंच, पृ0– 52–53

पुरुष सत्ता के मद में स्त्री का दमन किए बिना नहीं रह सकता। अब इस आधी दुनिया को सारे वादों, जातियों और राष्ट्रों का अतिक्रमण कर एक अधीनस्थ जाति की तरह लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। 1974 में वे नारी–मुक्ति आन्दोलन की प्रेसीडेन्ट चुनी गई। "सीमोन की इस पुस्तक में सिद्धान्त एवं तथ्य के अलावा और भी बहुत कुछ ऐसा आत्मीय है, जो हमें भावात्मक रूप से झकझोरता है। लेखक और पाठक के बीच आत्मीयता बढ़ती चली जाती है। लगता है कि सीमोन हमारी माँ, बहन या बड़ी गहरी दोस्त हैं, जिनकी गोद में कभी मुँह छिपाकर हम रोए और जो हमारा दर्द और हमारी त्रासदी सब कुछ समझती हैं। ..... हमसे बहुत दूर बैठकर भी वे जानती हैं कि औरत होना किसे कहते हैं ? उनमें गहन आत्मविश्वास है। उनके सोचने में एक गहरा आक्रोश मिलता है, औरत की नियति के प्रति। आज तो स्त्री–स्वातंत्र्य की आवाज़ें उठती हैं, लेकिन आज से चालीस वर्ष पहले..... अलग–अलग कोनों में गूंगी रहकर घुटन का जीवन गुजारती तमाम औरतों की एक अकेली आवाज़ का नाम सीमोन है।"[1] सीमोन ने उन्हीं आदर्शों को चुनौती दी जिनका प्रतिनिधित्व वे कर रही थीं। औरत होने की जिस नियति को उन्होंने महसूस किया उसे ही लिखा। "स्त्री को, अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। यह दुनिया पुरुषों ने बनाई, पर स्त्री से पूछकर नहीं। फ्रांस की राज्यक्रान्ति हो या विश्वयुद्ध, स्त्री से पुरुष सहारा लेता है और पुनः उसे घर लौट जाने को कहता है। वह सदियों से ठगी गई है। यदि उसने कुछ स्वतन्त्रता हासिल भी की है, तो उतनी ही, जितनी कि पुरुष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देना चाहा। अतः सीमोन का मुक्ति–संदेश उस आधी दुनिया के लिए है, जो स्त्री कहलाती है।"[2]

मतदान और अन्य नागरिक अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में स्त्री की स्वतन्त्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धान्तिक रह जाती है। "मुक्ति की चेष्टा सामूहिक होनी चाहिये। इसके लिए सबसे पहले स्त्री की आर्थिक स्थिति का विकास आवश्यक है। अनेक ऐसी स्त्रियाँ हुई हैं और अब भी हैं, जो अपना उद्धार अपने ही प्रयत्नों से करती हैं। वे

---

[1] प्रभा खेतान – स्त्री : उपेक्षिता, पृ0– 15–16

[2] वही – वही पृ0– 21

इस विश्व में अपना अस्तित्व सिद्ध करने की चेष्टा करती हैं या यह कहा जाये कि वे विश्वव्यापी स्थिति में सर्वोपरि उठना चाहती हैं। स्त्री की अंतिम चेष्टा बंदीगृह को स्वर्ग की गरिमा में बदलने की है। अब वह अपनी दासता को उच्च स्वतन्त्रता में परिणत करना चाहती है।"[1] पुरुष पर निर्भर रहने के कारण स्त्री अपनी किसी भी भूमिका पत्नी, प्रेमिका या रखैल में स्वावलम्बी नहीं हो पाती। सहशिक्षा को सीमोन जरूरी मानती है क्योंकि सहशिक्षा के कारण कम से कम यह बात तो सामने आती है कि पुरुष कोई रहस्यमय आकर्षक देवता नहीं। वास्तव में वह भी औरत की तरह माँस–पिण्ड होता है। काल स्त्री और पुरुष, दोनों का क्षय करता है। मृत्यु दोनों की होती है। दोनों को एक–दूसरे की आवश्यकता है और अपनी–अपनी स्वतन्त्रता से दोनों मानवीय गरिमा हासिल कर सकते हैं।

लेकिन नारी आन्दोलन की पहचान उभरकर सामने न आने का कारण यह रहा कि नारी–आन्दोलन उच्च सभ्रांत शिक्षित नारी वर्ग द्वारा नगरों से प्रारम्भ होकर मुख्यतः नगरों तक ही सीमित रहा। शिक्षा प्रसार के साथ धीरे–धीरे मध्य व निम्न वर्ग की नारियों की संख्या बढ़ने पर छोटे शहरों, कस्बों तक ही सीमित रहा। ग्रामीण नारी समुदाय इस जागृति से लगभग वंचित रहा।

नारी–मुक्ति आन्दोलन कृष्णा जी के समस्त कथा–साहित्य में दिखाई देता है। इनके साहित्य में धर्म, अंधविश्वास, रूढ़ियों आदि का विरोध और मूल्यों के समर्थन के साथ नयी चेतना का स्वर स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। इनके साहित्य में सभी वर्ग की नारियाँ अपने–अपने स्वभाव के अनुसार संघर्ष में आगे बढ़कर भाग लेती हैं और अन्याय का विरोध करती हैं।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में नयी पीढ़ी की नारी का अंकन किया है। वह प्राचीन मान्यताओं से मुक्त हो पुरुष के समकक्ष प्रतिष्ठित होने में प्रयत्नशील है। मित्रो को आदर्श, समाज, पति अथवा सास–ससुर किसी का भय नहीं है वह स्वयं को पुरुष से कम नहीं समझती। वह परिवार में भी सबको निर्भिकता से जवाब देती है। सदियों से नारी पुरुष

---

[1] प्रभा खेतान – स्त्री : उपेक्षिता, पृ0– 290

की दासी रही है लेकिन धनवन्ती ने बहू की पीठ पर हाथ रखा और पुचकारकर कहा – "समित्रावन्ती, इसे जिद चढ़ी है तो तू ही आँख नीची कर ले। बेटी, मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे ? बहू ने बिफरकर और सिर ऊँचा कर लिया और पहले की–सी ढिठाई से सामना किए रही।"[1] मित्रो किसी का गुलाम नहीं बनना चाहती है वह स्वतन्त्र जीवन जीना पसन्द करती है।

अधिकारों के प्रति नारी अब जागरूक हो चुकी है। अंधविश्वास और रूढ़ियों को कैसे दूर किया जाए, ये सब बातें उसके मन–मस्तिष्क को झकझोर देती हैं। विधवा हो जाने पर नारी को विवाह की अनुमति नहीं थी पर अब वह सचेत हो गयी है। जब पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो नारी क्यों नहीं कर सकती ? 'ज़िन्दगीनामा' की चाची महरी, बरकती 'डार से बिछुड़ी' की मेहर आदि ऐसी नारियाँ हैं जो पति की मृत्यु के बाद प्रेम विवाह करती हैं।

'ऐ लड़की' में 'अम्मू' सचेतन साहसी नारी है। वह स्वतन्त्र विचारों वाली है। वह अपने को पुरुष से कम नहीं समझती है और दूसरों को भी स्वतन्त्र और स्वावलम्बी रहने के लिए प्रेरित करती है। वह सूसन से कहती है, –"सूसन, शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना। अपनी ताकत बनाने की कोशिश करना।"[2] इस तरह वह अन्य औरतों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है वह समस्त नारी जाति की जागरूकता पर बल देती है।

नारी चाहे सुशिक्षित हो या अशिक्षित उसमें नैतिकता और आत्मसम्मान भरा हुआ है। रत्ती एक ऐसी नारी है जो अपने अपमान का बदला खुद लेती है, जब पाशी उसके साथ छेड़छाड़ करता है तो उसे वह बुरी तरह मारती है। पाशी को बार–बार पटकती है जैसे पाशी न हो कोई पत्थर हो। "रत्ती ने ज़ालिम आँखों से भीड़ को देखा और ठंड़े गले से कहा– "फिर कभी ऐसा हुआ तो फाड़ डालूँगी.....।"[3] रत्ती लड़को के दुर्व्यवहार से नारी–मुक्ति के

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0– 12

[2] वही – ऐ लड़की, पृ0– 72

[3] वही – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0– 53

मार्ग का संकेत करती है। वह आत्मविश्वास से भरे व्यक्तित्व वाली नारी है। वह दिखा देती है कि जिस नारी–जाति को तुम विवश, असहाय समझते हैं वह कमजोर नहीं है। अपने अपमान का बदला लेने के लिए वह मरने मारने पर उतारू हो जाती है।

इस प्रकार सोबती जी के कथा–साहित्य में नारी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की उद्‌घोषिका बन कर प्रस्तुत हुई है। यही कारण है कि उन्होंने स्त्रियों के द्वारा नारी–मुक्ति के अभियान को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। सोबती जी समाज को नई राह पर ले जाना चाहती हैं जिसमें परम्परागत, रूढ़ियाँ, संस्कार, अंधविश्वास का बोलबाला न हो। ये नारी पात्र नारी–मुक्ति के साथ ही हर क्षेत्र में होने वाले अन्याय का विरोध करते हैं। सोबती जी के साहित्य के सभी वर्ग की नारियाँ अपने स्वभाव के अनुसार संघर्ष में आगे भाग लेती हैं। वे प्रेम और विवाह की समस्या पर विचार प्रकट करती हैं। और अन्याय का डटकर विरोध करती हैं।

## 6.4 पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था और कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य के नारी पात्रों की त्रासदी

आरम्भ से भारतीय समाज पुरुष प्रधान रहा है। फलतः समाज की व्यवस्था पुरुषों के हाथ में रही है। पुरुष स्वामी बन गया और नारी उसकी सहचारिणी नहीं दासी बनी। "पुरुष समाज अपने स्वार्थ तथा वासना पूर्ति के लिए नारी को केवल भोग्या समझता रहा है। उसने नारी को प्रायः चरणदासी बनाया और उस पर मनमाने अत्याचार किये।"[1] परिवार और समाज में नारी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा। नारी पुरुष समाज में शोषित होती रही है। पुरुष उसे भोग की वस्तु समझता है। पुरुष ने नारी के चारों ओर मोह, भ्रम भक्ति, आस्था और सम्मान के नाम पर इतने जाल बुन दिए कि वह उसमें घुट–घुट कर जीने को मजबूर हो गयी। नारी के शोषण का मूल कारण पुरुष का अहंकार और सामाजिक पारिवारिक रूढ़मान्यताएँ और खोखले आदर्श हैं। समाज में रहते हुए चाहे पुरुष कितने ही अनैतिक कार्य करे उसके

---

[1] मोहन लाल रत्नाकार – पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' कहानीकार : उपन्यासकार, पृ0–118

लिए सब कुछ माफ है, परन्तु औरत भूल से कोई ऐसा कार्य कर दे तो उसे पतिता, कुलटा और जाने क्या–क्या कहकर कलंकित किया जाता है। उसे घर से बाहर निकलने की इजाजत नहीं दी जाती है। सामाजिक नियम भी जैसे स्त्रियों के लिए ही बनाये गये हैं भारतीय समाज में औरत औरत है चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित। पुरुष के सामने वह अधिकाशतः विवश, बेबस ही रही है क्योंकि समाज के आचार–विचार ही ऐसे हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों में अर्द्धनारीश्वर का उल्लेख मिलता है। जिसका तात्पर्य आधा पुरुष और आधा नारी होने से है। फिर जाने कितने स्याह दौर आये होंगे कि ईश्वर का आधा भाग हाकिम बन गया और आधा गुलाम बन गया। गुलामी की यह दास्तान न जाने कितनी थी कि औरत जब अपनी पहचान अपने में नहीं पा सकी तो मर्द के अहसास में पाने लगी और वही से उसकी शारीरिक और मानसिक गुलामी शुरू हुई।

सदियों से नारी का शोषण होता आ रहा है। नारी पर शोषण पुरुष ही करता है और वह पुरुष जिसे कि नारी ने जन्म दिया, पालपोस कर पुरुष बनाया। बाद में चलकर यही पुरुष नारी का शोषण करता है। अपने पति की शारीरिक तृषणाओं को शान्त करना और सिसकते रहना ही उसकी जिन्दगी बन गयी है। हम विचित्र विरोधाभासों से भरे हुए समाज में जीते हैं। यहाँ यह कहा जाता है कि देवता वहीं बसते हैं जहाँ नारी की पूजा होती है। लेकिन जिस तरह शूद्रों की स्थिति यथावत रही है उसी तरह नारी भी अपनी स्थिति की विडम्बनाओं को झेलती रही है।

अशिक्षित और आर्थिक दृष्टि से नारी पुरुष पर आश्रित होने के कारण सभी व्यवस्थाओं और मान्यताओं के सम्मुख सिर झुकाती चली गयी, क्योंकि इसके अलावा उसके पास कोई चारा नहीं था। इसी कारण वह वेश्या बनी, रखैल बनी, दासी बनी और बलात्कार जैसे क्रूरतम शारीरिक शोषण के माध्यम से गुजरी।

### 6.4.1 **अशिक्षा**

नारी अशिक्षित होने के कारण पुरुष द्वारा शोषित होती रही है। अशिक्षित होने के कारण ही वह अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर है। वह अशिक्षित होने के कारण ही अपनी दयनीय स्थिति को अपनी नियति मान लेती है। शिक्षा से वंचित रहने के कारण नारी घर में चक्की की तरह पिसती रही और घरों में बंद होकर रह गयी। इसलिए वह अज्ञानी और संकीर्ण बन गयी। वह आज भी पुरुष –संरक्षण में ही अपना हित देखती है।

'तिन पहाड़' में जया को अशिक्षा के कारण त्रासदी को सहन करना पड़ता है। क्योंकि जया गाँव की एक अशिक्षित लड़की है। श्री दा उससे प्यार करते हैं। लेकिन जब वह विदेश जाते हैं तो वहाँ पढ़ी–लिखी लड़की एडना मिल जाती है। वह उसी से परिणय सूत्र में बंध जाते हैं। किन्तु जया का जीवन नरक बन जाता है। वह इधर–उधर भटकती रहती है और अन्त में अपने जीवन की इस आत्मव्यर्थता को सहन न कर पाने के कारण आत्महत्या कर लेती है।

बाल–विवाह भी अशिक्षित रह जाने का कारण है। क्योंकि लड़की की छोटी उम्र में शादी हो जाने से वह पढ़ नहीं पाती है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो अनपढ़ होने के कारण एक बूढ़े दिवान से ब्याह दी जाती है। उसकी जल्दी ही मृत्यु हो जाती है। वह अशिक्षित होने के कारण पुरुष समाज में शोषित होती रहती है।

'दिलो–दानिश' की महक, 'गुलाबजल गँडेरियाँ' की धन्नो, आजादी शम्मोजान की' की शम्मोजान आदि ऐसी ही नारियाँ है जो पुरुष के शोषण का शिकार होती हैं।

### 6.4.2 **आर्थिक परतन्त्रता**

भारत में नारी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय रही है। इसका मूल कारण आर्थिक परतन्त्रता है। आर्थिक रूप से पराबलंवित नारी का सम्पूर्ण जीवन ही दूसरों पर निर्भर रहता है। आर्थिक पराधीनता के कारण ही नारी परम्परागत निरंकुश शासन के अन्तर्गत जीने के लिए बाध्य है। आर्थिक परतन्त्रता नारी के लिए सबसे बड़ा शाप है। पुरुष का हर प्रकार का

अत्याचार झेलने के सिवाय उनके पास और कोई चारा नहीं है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र न होने के कारण भी नारी का शोषण किया जाता है। गरीबी का अभिशाप भी पुरुष की अपेक्षा नारी को ही अधिक झेलना पड़ता है। उसे कुलवधू का प्रतिष्ठित और सम्मानीय पद छोड़कर वेश्या का पतित जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। अर्थाभाव के कारण नारी जब विवश हो जाती है, तब अपने मानदण्डों की परिधि को तोड़ फेंकती है। उसे पता है कि समाज जो नैतिकता की दुहाई देता है उसे एक दिन की रोटी नहीं दे सकता है फिर निराश्रितों व विधवाओं का तो और भी बुरा हाल होता है। 'गुलाबजल गँडेरियाँ' कहानी में धन्नो वेश्या का जीवन यापन करती है। पति की मृत्यु के बाद उसे ऐसा जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। उसकी व्यथा इन शब्दों में प्रतीत होती है। –''चुन्नी के मर जाने के बाद समय–असमय जिस– जिसके रूपये –धेले ने उसकी मुट्ठी भरी.... ।''[1] अनेक पुरुषों से भोग्या होने के कारण घृणा का पात्र बन जाती है। लेकिन पुरुष फिर भी संभ्रान्त ही माने जाते हैं।

आर्थिक रूप से परतन्त्र होने के कारण नारी की दशा शोचनीय है। 'ऐ लड़की' में अम्मू कहती है –'' घर का खेल बराबरी का नहीं, ऊपर–नीचे का है। घर का स्वामी कमाई से परिवार के लिए सुविधाएँ जुटाता है। साथ ही अपनी ताकत कमाता–बनाता है। इसी प्रभुताई के आगे गिरवी पड़ी रहती है बच्चों की माँ।''[2] नारी पुरुष वर्ग द्वारा पूरी तरह शोषित की जाती है।

'दिलो–दानिश' मे कुटुंब आर्थिक तौर पर पति पर निर्भर है। इसलिए उसे दूसरी औरत को भी सहन करना पड़ता है। वकील साहिब कहते हैं–''है कोई ऐसा नामुराद मर्द जो जिंदगी में इस तरह के छोटे–मोटे गुनाह न करता हो। साधु–सन्यासी नहीं, इंसान हैं हम। कुटुंब ने बिलबिलाकर कहा – और हम क्या हैं ! साहिब, यह भी तो कहते जाइए। क्या सारी ज़्यादतियाँ हमीं को झेलनी पड़ेंगी ! ..... गला खँखारा, बड़ी शायस्तगी से कहते– आपके लिए तो इतना ही कहा जा सकता है कि आप औरत हैं और आपको गृहस्थी बनाने–चलाने को ही

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0– 70

[2] वही – ऐ लड़की, पृ0– 74

ऊपर वाले ने बनाया है।"[1] पुरुष स्त्री को सिर्फ गृहस्थी सम्भालने तक ही सीमित रखता है। अर्थाभाव के कारण सारी समस्याएँ नारी पर टूटती हैं। 'ऐ लड़की' में अम्मू अपनी बेटी से कहती है– "शादी के बाद औरत पूरे परिवार के लिए शिकारे की माँझी बन जाती है। .....उन पर सवार परिवार मज़े–मज़े झूमते हैं और चप्पू चलाती है औरत। उम्र–भर चलाती जाती है। उसका वक्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी। सोचने की बात है –मर्द काम करता है, तो उसे इवज़ में अर्थ –धन प्राप्त होता है। औरत दिन–रात जो खटती है। वह बेगार के खाते में ही न।"[2] नारी जब तक स्वावलम्बी नहीं होगी तब तक उसे पुरुष प्रधान समाज शोषित ही करता रहेगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नारी आर्थिक दृष्टि से परतन्त्र होने के कारण शोषण का शिकार होती है।

### 6.4.3 शारीरिक कमजोरी के कारण

स्त्री की शारीरिक दुर्बलता उसे पुरुष के समान काम नहीं करने देती है। कालान्तर उसका कार्य क्षेत्र चूल्हा चौका तथा बच्चे पालना तक ही माना जाता है। पुरुष ने जब देखा कि स्त्री पूरी तरह पुरुष के अधीन है तो उसे पातिव्रत्य तथा अन्य अनेक मार्गों से अपने अधीन करने लगा। सृष्टि के आरम्भ से ही नारी का व्यक्तित्व कभी दबता, कभी उभरता दिखाई देता है। मानवीय भावना और मानसिक क्षमता के स्तर पर नारी पुरुष के समकक्ष है। परन्तु प्राकृतिक शारीरिक भिन्नता को ही महत्व देकर विभिन्न परिस्थितियों में उसे दुर्बल तथा निम्न स्तर की साबित करने का प्रयास होता रहा है। नारी की तुलना में पुरुष शारीरिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होने के कारण आदिकाल में पुरुष प्रधान समाज की रचना की। आगे चलकर सभ्यता और संस्कृति का विकास होने पर पुरुष–प्रधान समाज की रचना चलती रही क्योंकि आदमी के हितों की रक्षा करने एवं अहम् को बनाए रखने में सिद्ध हुई। शारीरिक

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो –दानिश, पृ0– 81–82

[2] वही – ऐ लड़की, पृ0– 74

कमजोरी के कारण नारी को पुरुष के यौनात्याचार भी सहन करने पड़ते हैं। 'डार से बिछुड़ी' में पाशो को बार–बार वासना का शिकार होना पड़ता है। पाशो एक ऐसी लड़की है, जो घर की डार से बिछुड़ कर आजीवन भटकती रहती है पर उसे कहीं किनारा नहीं मिला। माँ के शेख जाति से विवाह करने के कारण मामा, मामी नानी सभी के व्यंग्य वाणों को सहन करना पड़ता है। कई बार उसे प्रताड़ना भी दी जाती है। वह वहाँ से भागकर अपनी माँ के पास पहुँच जाती है। अभी उसे माँ बाप का प्यार भी नहीं मिलता है कि मामू उसे ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं। शेख के घर से उसे दिवान के घर भेज दिया जाता है। उस घर वह मालन बनकर सुखी रहती है। लेकिन क्रूर नियति' से ज्यादा दिन वह सुखी नहीं रह पाती। दिवान की मृत्यु के पश्चात् बरकत के रूप में त्रास उसके सामने आता है। बरकत द्वारा उसकी इज्जत लूटकर उसे बांदी बना दिया जाता है। मालन की व्यथा इन शब्दों में व्यक्त होती है –"गले–गले पानियों में डूबी इस अभागी ने कई बेड़ियाँ बदलीं , पर न कार मिला न किनारा। अपने ही घर वैरियों से घिरी हूँ.....।"[1] पति की मृत्यु के पश्चात् उसे लाला को बेच दिया जाता है। मालन द्रोपदी बनकर लाला और उसके बेटों की सेवा करती है। उसे लगता है कि –"मैं भी चरखड़ी पर चढ़ी लज हूँ। कभी इस गागर, कभी उस गागर।"[2] चार प्राणियों का हुक्म मानती द्रोपदी का शरीर उनकी सम्पत्ति बन गया। लाला का मंझला बेटा द्रोपदी को घर से अपने साथ ले जाता है। उसे नवेली कहता है। दिनभर मंझला उसे कमरे में बंद रखता है और रात को नवेली को अनिच्छित समर्पण करना पड़ता है। मंझले के प्रेम में अपने को भुलाने का प्रयत्न करती है तो फिरंगियो द्वारा मंझले की मृत्यु हो जाती है। एक बार फिर उसका भविष्य अंधकारमय हो जाता है। पाशो को मालन, द्रोपदी और नवेली की त्रासमय स्थितियों को सहना पड़ता है। उसे अनेक पुरुषों से सहवास करना पड़ता है और इस सहवास में प्रेम का नितान्त अभाव है। वह एक घर से दूसरे घर, दूसरे घर से तीसरे जगह–जगह पुरुष की कामुकता का शिकार होती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिंछुड़ी, पृ0– 62

[2] वही – वही पृ0–72

शारीरिक कमजोरी के कारण नारी को बलात्कार का शिकार होना पड़ता है। 'सूरजमुखी अँधेरे के' में रत्ती बलात्कार का शिकार हो जाती है। जिसके कारण उसमें एक जड़ता सी आ जाती है। रत्ती अपने शरीर की निरर्थकता को लेकर परेशान रहती है वह ऐसा पुरुष चाहती है जो उसकी पीड़ा को समझ सके। लेकिन जो भी पुरुष उसके सम्पर्क में आते हैं सभी देहयष्टि पर घात लगाए होते हैं। बलात्कार के कारण नारी की अस्मिता लुट जाती है ओर पुरुष उसे स्वीकार नहीं करता है। पुरुष प्रधान समाज की यही त्रासदी है कि नारी दोषी न होते हुए भी समाज में तिरस्कृत होती है।

'मित्रो मरजानी' में मित्रो को शारीरिक उत्पीड़न भी सहन करना पड़ता है। "मँझली बहू के कमरे से धौल–धप्पे की आवाज़ सुन सहम गए।..... फिर वही मार–पिटाई ! .... उड़े–उड़े, बिखरे बालों में सौदाई–सी मँझली बहू सरदारी लाल से हाथ छुड़वाती थी और तहबन्द कसे सरदारी पटाक–पटाक धौल जमाता था।"[1]

नारी को शारीरिक कमजोरी के कारण उत्पीड़न सहन करना पड़ता है–"एक बार तो हुई कि बैठ छाती पर वैरी का गला घोंट दूँ , पर दो जनों की–सी देह देख झुक गयी। पाँव पकड़ अर्ज की – जो कहोगे सो ही करूँगी। मुझे मत मारो..... ।"[2] नारी को शारीरिक कमजोरी के कारण उत्पीड़न, यौनात्याचार सब कुछ सहन करना पड़ता है।

### 6.4.4 सामाजिक रूढ़ियों के कारण

आचार–व्यवहार तथा चिन्तन के वे रूप जिन्हें हम परम्परागत रूप से बिना तर्क–वितर्क अथवा विचार–विश्लेषण के पीढ़ी–दर–पीढ़ी ढोते चले जाते हैं रूढ़ियाँ कहलाते हैं। शोषण का मूल कारण रूढ़ मान्यताएँ और खोखले आदर्श हैं। भारतीय नारी के जीवन में पुरुष का होना आवश्यक है। यदि भौतिक रूप से वह आत्मनिर्भर भी हो तो मानसिक रूप से

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0–11

[2] वही – डार से बिछुड़ी, पृ0–86

किसी पुरुष के अस्तित्व से सुरक्षित होना उसकी मानसिकता का संस्कार है। भारतीय रूढ़ियों का केन्द्र प्रमुख रूप से नारी रही है। हमारा समाज रूढ़िवादी संस्कृति की प्राचीन मान्यताओं पर बल देता है तथा नारी जागरण का विरोध करता है। किन्तु यह मान्यता विकसित हो गयी है कि स्वतन्त्रता पाकर नारी बिगड़ जाती है। वस्तुतः किसी कारण नारी एक बार पथभ्रष्ट हो जाती है तो समाज उसके प्रति निर्मम और कठोर हो जाता है लेकिन पुरुष चाहे कितना ही दुश्चरित्र क्यों न रहा हो वह समाज और परिवार का कर्ता बना रहेगा।

समाज में चेतना के बावजूद भी रूढ़िगत मान्यताएँ कायम तथा प्रचलित हैं। भारत विचित्रताओं से भरा हुआ देश है। इसमें तर्क, ज्ञान, दर्शन एवं गणित के तंत्र में काफी उन्नति हुई दूसरी ओर अंधविश्वास एवं पाखण्ड और रूढ़ियों का चित्रण मिलता है। सोबती जी के कथनानुसार–"हमारा लोकमानस सदियों से उदासीनता में जीता रहा है। बाहर के आक्रमणों और खतरों से बचने के लिए वह बार–बार हर बार भाग्यवाद के दुर्ग में लौटता रहा है, अकाल, बीमारी, भुखमरी सभी को भाग्यवाद के सहारे स्वीकार करता रहा है।..... विज्ञान ने ईश्वर की एक मात्र सत्ता के साम्राज्य को ढीला किया है।..... पुराने विश्वासों और आस्थाओं को समयानुकूल कोई–न– कोई व्यावहारिक रूप देने की कोशिश भी जारी है।..... भारतीय मानसिकता अपने समूचे आदर्शों , तामझाम के साथ बराबर एक खास तरह की संकीर्णता का शिकार रही है।"[1] सामाजिक रूढ़ियों ने नारी को अपने कठोर शिकंजे में कसकर 'अबला' बना दिया। परम्परागत रूढ़ियों के कारण ही नारी दयनीय होकर पति की दासी बनी और पति को देवता मानकर उसकी पूजा करती रही।

अशिक्षित और अज्ञान के कारण मनुष्य कार्य–व्यापारों में लोक विश्वास अर्थात रूढ़ सत्य में विश्वास रखते हैं। मनुष्य का जीवन विश्वासों से भरा हुआ है। मनुष्य के पैदा होने से लेकर मृत्यु पर्यन्त से विश्वास उसको जकड़े रहते हैं। नारी विविध परम्पराओं धार्मिक अंधविश्वासो और रूढ़ियों के कारण ही शोषित हुई। सामाजिक रूढ़ियाँ इतनी कठोर हो गयी हैं कि चाहते हुए भी उनका नारी उल्लंघन नहीं कर पाती है। पुरुष प्रधान समाज में नारी

---

[1] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोबत, पृ0–404–405

रूढ़ियों का विरोध नहीं कर पाती है। नारी चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित वह सामाजिक रूढ़ियों के कारण शोषित होती रही है।

### 6.4.4.1 **नारी-जूती**

रूढ़ियों के कारण पुरुष उसे पाँव की जूती, दासी, अनुचरी कहता आया है। वह यह सोचता है कि पुरुष कमाता हैं और वह बैठकर खाती है। इसी आधार पर उसे पुरुष की गुलामी करनी पड़ती है। पति के चरणों की दासी बनने में ही उसके जीवन की सार्थकता देखी गई है। नारियाँ विवश भाव से रूढ़ियों को स्वीकार करती हैं। नारी पुरुष के इशारे पर चलने वाली, वासना तृप्ति और संतानोत्पत्ति का साधन समझी जाती है।

'ज़िन्दगीनामा' में शाह जी बड़े इज्जतदार आदमी हैं, उनकी पहली पत्नी गौरजा का देहान्त हो जाता है तो वह दूसरी शादी कर लेते हैं। शाह जी को पहली पत्नी सपने में दिखती है और वह कहती हैं–"शाह जी, मेरा जातक कहाँ हैं ! कुल वंश में कौन आगे कौन पीछे ! कहकर हँसती है और ओझल हो जाती है।"[1] शाह जी जब सपने की बात शाहनी को सुनाते हैं तो शाहनी ऐसी बातें सुनकर रोने लगती है तो शाह जी कहते है –"शाहनी, प्रालब्ध के आगे किसी का बस नहीं। मेरी मानो तो कुनबे से किसी लड़की का ब्याह अपने हाथों कर छोड़।"[2] शाह जी अपनी शादी करवाने के लिए शाहनी से कहते हैं क्योंकि शाहनी के कोई औलाद नहीं है। समाज की विड़म्बना ही ऐसी है कि दम्पत्ति सन्तान रहित हो तो पत्नी को इसके लिए दोषी ठहराया जाता है।

'यारों के यार' में चन्दोक नारी को पैरों की जूती समझता है। उसकी दृष्टि में गंवार एवं अनपढ़ पत्नी का कोई आदर नहीं है। पत्नी को मात्र वासना की तृप्ति का साधन मानता है। चन्दोक के शब्दों में "जो ज़नाना हर रोज मैले–कुचैले कपड़ों में सौदाई बनी,

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा, पृ0– 28

[2] वही – वही पृ0– 28

ची–चपड़ और चूल्हे–चौके में लगी रहे, मर्द को रिझाने के नाम पर बीमारी का पचड़ा ले बैठे, तो बता यार उसको प्यारेलाल अम्माँ नहीं तो क्या मुजरे की कमसिन माने ?''[1]

'डार से बिछुड़ी' में पाशो के पति का देहान्त हो जाने के बाद बरकत दिवान उसे अपनी वासना का शिकार बनाता है। अपना ऋण चुकाने के लिए उसे लाला के हाथ बेंच देता है। लाला उसे खरीद कर दासी की भान्ति रखता है। लाला थलथली आवाज में बोले–''शुकर है बरकत दिवान ने मेरा ऋण तो चुकाया ! ..... भागभरी, यह घर बाहर सँभाल और द्रोपदी बनकर सेवा कर मेरी और मेरे बेटों की।''[2] इस तरह नारी को क्रय–विक्रय की वस्तु समझा जाता है।

'दिलो–दानिश' में कृपानारायण शादीशुदा होते हुए भी पर स्त्री से सम्बन्ध रखते हैं। वह सोचते हैं कि–''कभी कुटुंब के किनारे और कभी महक के। क्या समझाएँ ! जिस्म को राहत चाहिए होती है।''[3] कृपानारायण औरत को देह तृप्ति का साधन मानते हैं। भारतीय समाज शिक्षा–दीक्षा, रहन–सहन, आचार–विचार में चाहे जितना भी बदला हुआ दिखाई दे किन्तु अभी भी वह सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त नहीं हो पाया है। वह नारी को देहतृप्ति और संतानोत्पत्ति का साधन ही मानता है।

### 6.4.4.2 **पुरुष की आज्ञाकारिणी**

पुरुष का मानना है कि जो अपने पति की बात नहीं मानती है उसका भला नहीं होता। अतः नारी या पत्नी को पुरुष की आज्ञा का पालन करना चाहिए। नारी के लिए पुरुष देवतुल्य है नारी पुरुष की हर आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – यारों के यार, पृ0 –34–35

[2] वही – डार से बिछुड़ी, पृ0–71

[3] वही – दिलो–दानिश, पृ0 –12

'डार से बिछुड़ी' में पाशो जब बूढ़े लाला के घर रहती है तो वह लाला की और उसके तीनों बेटों की आज्ञा का पालन करती हुई उनके कामों में लगी रहती है। लाला जी हाँक मारते–"अरी भागभरी, घी गरम कर ला ! मेरा माथा फटता है लाला जी के सिर में घी रचाती, कमर पर मुक्कियाँ मारती..... । कड़ी आवाज सुनकर चौंककर उठ बैठी। सामने देखा दहलीज पर मँझले खड़े हैं।..... गागर में से पानी ले पाँव धोने को आगे बढ़ी।..... सिर झुकाये पैर धोती रही।"[1] पाशो, बाप और बेटों की आज्ञा का पालन करती है। जैसा वे कहते हैं वैसा ही करती है।

नारी शादी से पहले बाप, भाई और शादी के बाद पति, बेटे की आज्ञा का पालन करती है। 'दिलो–दानिश' में बउआजी कुटुंब से कहती हैं–"हमसे पूछो तो घर की बहू ज़िदगीभर या मर्द की सुनेगी या बेटों की। धर्मशास्त्र भी तो यही कहते हैं।"[2] नारी को शादी से पहले भी और बाद में भी पुरुष की आज्ञाकारिणी ही बनना पड़ता है। पुरुष चाहता है कि वह हमारी हर बात का पालन करे क्योंकि वह समाज का कर्ता है।

### 6.4.4.3 **पतिव्रता**

भारतीय समाज व्यवस्था में लड़कियों के चेतन तथा अचेतन मन में यह बात पैदा कर दी जाती है कि पति परमेश्वर है। इसलिए हृदय की सम्पूर्ण भक्ति उसे अर्पित करनी चाहिए, चाहे वह इस काबिल हो या न हो। स्त्री का एक पुरुष से सम्बन्ध रखना ही स्त्री का सबसे बड़ा धर्म है इसी कारण नारी का व्यक्तित्व पति के व्यक्तित्व में सिमट कर रह गया है वह बेटी है, बहन है, पत्नी है, माँ है किन्तु मानवी नहीं है। परम्परागत भारतीय पति यह इच्छा करता है कि उसकी पत्नी एकनिष्ठ, गृहिणी होकर रहे। पत्नी का पतिव्रता रहना ही उसका पहला धर्म है। परन्तु पुरुष ने धर्म तथा ईश्वर की दुहाई देकर स्त्रियों पर अनेक अत्याचार किए क्योंकि वह

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0– 74

[2] वही – दिलो –दानिश, पृ0–84

पति को परमेश्वर मानती है। यह पुरुष वर्ग द्वारा नारी का शोषण ही है। पति को अधिकार है कि पत्नी के होते हुए भी वह दूसरा विवाह कर सकता है जबकि पत्नी को यह अधिकार पति की मृत्यु के बाद भी नहीं है।

'एक दिन' कहानी में धर्मपाल अपनी पत्नी शीला के होते हुए भी दूसरी शादी कर लेता है। वह शीला को छोड़ श्यामा के साथ रहने लगता है। शीला सब कुछ बर्दाश्त कर लेती है, क्योंकि नारी एक बार जिसे पति रूप में वरण कर लेती है। उसी के प्रति तन–मन से समर्पित होती है।

'डार से बिछुड़ी' में पाशो का विवाह दिवान से कर दिया जाता है। उससे उम्र में काफी बड़े होते हैं। यह शादी उसकी माता व शेख की आज्ञानुसार होती है। जब दिवान जी को देखती है –"वह तो किसी के बेटे–से नहीं दिखते थे। पका–पका चेहरा..... बड़ी देरों से दीखा यह मुखड़ा .....पगली, यहाँ दिल लगा ? क्षण–भर को लगा दिवान जी, नहीं शेखजी मुझसे यह पूछते हों। आँखे छलछला आयीं। टप्प से एक बड़ी बूँद नथ की वाग में आ अटकी।"[1] दिवान जी शेख जी की उम्र के हैं परन्तु फिर भी पाशो उन्हें पति रूप में स्वीकार कर उनकी इच्छाओं को पूर्ण करती है।

'मित्रो मरजानी' में गुरुदास की पत्नी धनवन्ती एक पतिव्रता नारी है। वह गृहस्थी का काम करने के बावजूद भी अपने पति की सेवा करना, पति के पाँव दबाना आदि अपने जीवन का कर्त्तव्य समझती है।

सुहागवन्ती भी अपने पति के प्रति निष्ठावान रहना अपना धर्म समझती है वह अपने पति की सेवा करना अपना परम धर्म समझती है।

मित्रो एक ऐसी नारी है जो पति की क्रूरता, यातना और अत्याचार सहने के बाद भी एक समर्पणशील नारी है। गुलजारी भाइयों के नाम पर उधार चढ़ा देता है तो घर वाले परेशान हो जाते हैं ऐसे समय में "मित्रो ने एड़ियाँ उठा पड़छत्ती पर से टीन की सन्दूकची

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0– 35

उतारी। ताला लगा लाल पट्ट की थैली निकाली और घरवाले के आगे रख बोली–यह दमड़ी दात परवान करो, लाल जी ! कौन इस नाँवे के बिना मित्रो की बेटी कँवारी रह जाएगी ?''[1] इस तरह मित्रो समय पर सरदारी लाल की मदद करती है।

'ज़िन्दगीनामा' में शाहनी और बिन्द्रादयी दोनों ही पतिव्रता नारियाँ हैं। बिन्द्रादयी ऐसी भारतीय नारी है। जिसके लिए पति ही सब कुछ है। वह पति धर्म का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझती है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व्यवस्था ही स्त्रियों के पतन के लिए जिम्मेदार है।

आज के वैज्ञानिक युग में और जागरूक युग में नारी अभी तक भी पुरुष प्रधान समाज और सामाजिक रूढ़ियों में जकड़ी हुई शोषित जीवन जी रही है। लेकिन नारी उन तमाम खोखले तर्कहीन तथा रूढ़ मान्यताओं से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील है। तथा साथ ही अपनी बौद्धिकता तथा नवीन चेतना से नए युग के साथ चलने के लिए अग्रसर है।

## 6.5 विशिष्ट वर्ग की नारी की भूमिका

कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में कुछ विशिष्ट प्रभावशाली और जीवन्त विशिष्ट वर्गीय नारी सृष्टियाँ हैं। उनकी दृष्टि में नारी अबला न होकर सबला है। अपने भले बुरे का सम्यक् ज्ञान है। उनकी नारियाँ पति के चरणों की दासी बनी रहना स्वीकार नहीं करती हैं। वह अन्य पुरुषों से मित्रता एवं प्रेम भाव रखती हैं। ''इनकी कहानी में नारी छायामयी रमणी न होकर वास्तविक जगत की हाड़–माँस की नारी है। जिसकी अपनी भौतिक और शारीरिक आवश्यकताएँ हैं। उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए पुरुष के माध्यम की आवश्यकता नहीं है।''[2] सोबती जी के कथा–साहित्य की नारियाँ नितान्त प्रामाणिक सन्दर्भों और जीवन प्रसंगों से

---

[1] कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, पृ0– 47

[2] सरिता कुमार – महिला कथाकारों के कथा–साहित्य में प्रेम का स्वरूप –विकास, पृ0 –102

जुड़ी हुई हैं जो पुरुष के माध्यम से जीवन मूल्यों की खोज नहीं करती हैं। वे अपने व्यक्तित्व की स्वयं जिम्मेदार हैं। वह सैक्स को पाप बोध नहीं समझती बल्कि एक वास्तविक और अनिवार्य आवश्यकता के अनुरूप स्वीकार करती हैं। इन्होंने गाँव और शहर दोनों ही प्रकार की नारियों को अपने साहित्य में स्थान दिया है। उनकी समस्याओं को उभारा है। इन्होंने ऐसी नारियों का चित्र प्रस्तुत किया है जो अपने व्यक्ति–सत्य को आत्मसात करने के लिए अन्य की चिन्ता न किए सिर्फ अपनी चिन्ता करती हैं। अपने व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए ऐसा निर्णय लेती हैं जो उसका अपना होता है। अधिकांश लेखिकाओं ने नारी को भावुकता और कल्पनाशीलता का पर्याय मान लिया है और उनके जीवन से जुड़ी हुई समस्याओं पर विशेष गहराई से चिंतन नहीं किया है। जबकि कृष्णा सोबती ने स्वतन्त्र चेता उस नारी का संघर्षशील व्यक्तित्व उभारा है जो युग जीवन की विभिन्न समस्याओं से जूझती है। चिरकाल से पुरुषों के शोषण की शिकार और अपने अधिकारों से वंचित नारी आज पूर्णतः जागरूक है। देहशुचिता और शारीरिक पवित्रता जैसे प्रश्नों को नकारकर वह अपराध बोध और पापबोध से ग्रस्त नहीं होती है। कृष्णा सोबती के नारी पात्रों में एक अदम्य उत्साह और अपने गन्तव्य को पाने में निरन्तर संघर्षरत हैं। उनमें यह उत्साह न आरोपित है और न क्षणिक बल्कि यह उनके अपने व्यक्तित्व का, व्यावहारिक जीवन का अविभाज्य अंग है। इस प्रकार अपने अथक परिश्रम और संघर्षशील व्यक्तित्व के द्वारा सोबती जी के पात्रों ने क्रान्तिकारी सूझबूझ का परिचय देकर अपनी विशिष्टता को प्रकट किया है।

## 6.6 कृष्णा सोबती और नया कथा-परिवेश

सन् 1950 के बाद हिन्दी कथा–साहित्य में संक्रमणशील परिस्थितियों को अभिव्यक्ति मिली। समाज में पुरुष और स्त्री का रूप बदल गया। हर व्यक्ति वैयक्तिक रूप में अपनी जिन्दगी के लिए नए मान–मूल्यों की स्थापना चाहता था। वास्तव में आध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक जीवन–मूल्यों में जितनी तीव्रता से परिवर्तन हुआ उतना ही संकट बोध उत्पन्न हुआ। मोहभंग–विभाजन और टूटे सम्बन्धों को उभारा है। पुराने मूल्य टूट रहे हैं और नये

मूल्यों की स्थापना हो रही है। आधुनिक नारी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को सुरक्षित रखना चाहती है। नारी आर्थिक स्वावलम्बन और स्वतन्त्र व्यक्तित्व के कारण सचेत हुई, इसके साथ ही परम्परागत मान्यताओं में परिवर्तन आया।

मृदुला गर्ग की 'एक और विवाह' की कोमल एक शिक्षित, नौकरीपेशा तथा आधुनिक विचारों वाली नारी है। उसके विवाह के सम्बन्ध में भी आधुनिक विचार हैं। वह कहती है– "मैं व्यवस्थित विवाह में विश्वास नहीं करती। वह विवाह नहीं, जबरदस्ती किसी का पल्लू पकड़ लेना होता है। दो कारणों से ऐसा करने की आवश्यकता पड़ सकती है, आर्थिक अवलम्बन की खोज या शारीरिक भूख। पहले की कम से कम हमें जरूरत नहीं है और दूसरा तो उसके लिए विवाह बन्धन की आवश्यकता नहीं। बेहत्तर है मुक्त प्रेम जो बासी होने पर फेंक दिया जा सकता है.....जीवन में सैक्स से ज्यादा रोमांस की खोज होती है और व्यवस्थित विवाह का अर्थ है रोमांस को तिलांजलि।"[1] इस तरह कोमल आधुनिक होने के कारण विवाह की संस्था का विरोध करती है और रोमांस को महत्व देती है।

दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यास 'प्रतिध्वनियाँ' की शुभ्रा एक साहसिक प्रेमिका है। उसका प्रेमी नीलकान्त उसे ठुकरा देता है और वह किसी अन्य स्त्री से शादी कर लेता है। शुभ्रा अपने प्रेमी की याद में दिन–रात रोती नहीं है। वह ब्रिगेडियर कोहली से शादी कर लेती है। एक समारोह में वह नीलकान्त से मिलती है। नीलकान्त उससे कहता है– "तुम फरट क्लास एम0 एस0 सी0 थी इज्जत की जिन्दगी चुन सकती थी, स्वयं कमाकर जीवित रह सकती थी तुम्हें कोहली से यह सौदा करने की क्या जरुरत थी.....?"[2] परन्तु इस पर शुभ्रा कहती है –"लेकिन क्या गलत किया मैंने ? कौन सी कमी है मेरी इज्जत में ? तुमने रामबहादुर की बेटी से शादी की, मैंने ब्रिगेड़ियर कोहली से अगर तुम किसी ओर से शादी कर सकते थे

---

[1] मृदुला गर्ग – कितनी कैदें, पृ0– 68–69

[2] दीप्ति खण्डेलवाल – प्रतिध्वनियाँ, पृ0– 45

तो मैं क्यों नहीं ?"[1] इस तरह वह स्वतन्त्र जीवन जीती है किसी का हस्तक्षेप अपनी जिन्दगी में नहीं चाहती है।

राजी सेठ के 'तत्सम' उपन्यास की वसुधा विधवा होने के बाद अपने ससुराल में रहने की कोशिश करती है परन्तु उन लोगों का व्यवहार उसके प्रति कठोर होता है। वह ससुराल छोड़कर मायके आ जाती है लेकिन वह किसी पर बोझ नहीं बनना चाहती है। वह कॉलेज में नौकरी करके आत्मनिर्भर हो जाती है। वसुधा में विलक्षण प्रतिभा है। वह बहुत बुद्धिमान है। उसकी जिंदगी में विवेक और आनन्द आते हैं। दोनों ही विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं। वह आनन्द को अपनी उलझन बताती है। आनन्द कहता है कि निर्णय तुम्हें लेना है। वह अपनी जिंदगी के बारे में स्वयं निर्णय लेती है और आनन्द का चुनाव अपने जीवन साथी के रूप में करती है।

शिवानी के 'अतिथि' उपन्यास की जया अपने अधिकारों के प्रति सजग है। बी0 ए0 करने के पश्चात् उसका विवाह मन्त्री माधव के बेटे कार्तिक से कर दिया जाता है। शुरू में कार्तिक का व्यवहार ठीक रहता है लेकिन कुछ समय बाद वह उसे प्रताड़ित और अपमानित करता है कि वह एक मास्टर की बेटी है। जया पति का घर त्याग कर मायके आ जाती है। वह आई0 ए0 एस0 की परीक्षा पास कर राज्य के उच्च अधिकारी पद पर आसीन हो जाती है। वह पढ़ी–लिखी होने के कारण अपने ऐय्यासी, कामी पति के अत्याचारों को सहन नहीं करती, बल्कि उसका घर छोड़कर, स्वयं को स्वावलम्बी बनाकर स्वतन्त्र जीवन जीती है।

निरूपमा सेवती के उपन्यास 'दहकन के पार' की तुषार एक अच्छी पेण्टर है। वह किसी प्राइवेट कम्पनी में काम कर रही है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होने के कारण वह अपनी जिन्दगी अपनी तरह से जीने का निर्णय लेती है।

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'बात एक औरत की' कामना अपने पति संजू से काफी हद तक समझौता करती है। परन्तु जब वह उस पर चरित्रहीनता का आरोप लगाता है तो सहन नहीं कर पाती है। वह अपनी छोटी बेटी को लेकर घर छोड़ देती है। उसे मायके में

---

[1] दीप्ति खण्डेलवाल – प्रतिध्वनियाँ, पृ0 45

भी मदद नहीं मिलती है वह कॉलेज में लेक्चरर की नौकरी कर अपना और अपनी बेटी का भरण–पोषण करने में सक्षम हो जाती है।

आर्थिक दृष्टि से जो नारियाँ स्वतन्त्र हैं वे रूढ़ियों से नहीं डरती हैं। शशिप्रभा शास्त्री के 'क्योंकि' उपन्यास की शकुन्तला तायल ऐसी नारी है जो आत्मनिर्भर है। वह रूढ़ियों को नहीं मानती है और पुरुषों की तरह स्वतन्त्र जीवन जीना चाहती है।

कहानीकार नारी को नारी के रूप में स्वीकार करता है इसलिए वह कहता है–"नारी यों ही आदिकाल से सौन्दर्य (और उसके शास्त्र) तथा कला का केन्द्र रही है , फिर आत्मनिर्भर, स्वयं समर्थ अकेली नारी तो पुरुष के लिए सबसे बड़ा प्रलोभन और निमन्त्रण भी है। इस निमन्त्रण को प्रायः हर पुरुष कथाकार को स्वीकार करना पड़ा है और अपनी–अपनी सीमाओं, सरंकारों के साथ प्रायः प्रत्येक ने उसकी शक्तियों, मजबूरियों और दयनीयताओं को कथा–दृष्टि दी है। पुराने सरंस्कारों और नयी परिस्थितियों के बीच नारी किस प्रकार पुरुष के अनेक टूटे सन्दर्भों के बीच अकेली होती जाती है..... इसे आज की कहानी अधिक वास्तविक भूमि, अनेक सूक्ष्म–संश्लिष्ट धरातलों और विविध संवेदनशील पक्षों से चित्रित करती है।"[1] अतः कहा जा सकता है कि कहानी में अभिव्यक्ति के आधार पर नारी को नया आयाम दिया गया है।

महीप सिंह ने 'सीधी रेखाओं का वृत' कहानी में दर्शाया है कि नारी पुरुष के सामने दयनीय स्थिति में नहीं है। वह स्वावलम्बन तथा शिक्षा के कारण चेतनायुक्त है उसकी नई मानसिकता नये विचार तथा अस्तित्व ने सामाजिक मान्यताओं को नकारा है।

कथाकार गिरिराज किशोर ने अपने उपन्यास 'चिड़ियाघर' में मिसेज रिजवी को आत्मनिर्भर चित्रित किया है। वह आत्मनिर्भर होने के कारण अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। वह पति द्वारा किए गए अन्याय का डटकर सामना करती है।

---

[1] राजेन्द्र यादव – एक दुनिया : समानान्तर, पृ0 –36

रमेश उपाध्याय के 'दण्डद्वीप' की मनीषा मेरठ छोड़कर दूसरे शहर में आकर पढ़ने लगती है। वह इस दृष्टिकोण की है कि अच्छी नौकरी मिल रही है तो क्यों न करूँ ? और दूसरे शहर में अकेली रहने से नहीं डरती है इसलिए नौकरी करना स्वीकार कर लेती है।

अमरकान्त की 'मूस' कहानी की परवतिया आर्थिक स्वावलम्बन के कारण पति के स्वाधीन नहीं रहती है। वह कहती है –" मैं देखती हूँ आजकल दिमाग सातवें आसमान पर रहता है। मुझ पर काहे पिड़िकते हो बाबा ? यह धौंस उसी पर जमाना जो तुम्हारी लौंडी–बाँदी हो।"[1]

शैलेश मटियानी की 'कठफोड़वा' कहानी की सुप्रिया इसाई धर्म से सम्बन्धित है। वह हिन्दू धरणीधर से शादी कर लेती है। सुप्रिया शिक्षित और कामकाजी है। लेकिन उसका पति नौकरी नहीं करता है। उसके मन में सुप्रिया के प्रति शक और सन्देह की भावना पैदा हो जाती है। वह उसकी मनः स्थिति देखकर चुप नहीं रहती है अपितु उसे प्रताड़ित करती है । वह कहती है – "डी0 डी0 .....तुम्हारे मन में कहीं यह शुबहा भर गया हैं कि 'मैं लूज क्रेक्टर' की हो गई हूँ। रियली इट इज ए वंडर फार मी डी0 डी0, कि मेरे लिए अब हिन्दू धर्म और अपनी सारी जात–बिरादरी को छोड़ देने वाले इस कदर शक्की होते जा रहे हो ? कभी तुमने इसी बात पर 'वाइफ' को छोड़ दिया था कि निहायत बैकवर्ड और दकियानूसी औरत है। तुम्हें 'इज ए लवर डील ' नहीं करती है। .....मगर मुझे लगता है, वह सब तुम्हारा दिखावा ही था।"[2] आधुनिका होने के कारण सुप्रिया पति की विसंगतियों और अन्तर्विरोधों को रेखांकित करती है।

रामदरश मिश्र की कहानी ' एक औरत एक ज़िन्दगी' की भवानी विचारों और आचरण से पूर्णतया जागरूक है। उसमें सामाजिक जागरूकता कूट–कूट कर भरी हुई है। वह सड़ी गली मान्यताओं, रूढ़ियों और अंधविश्वासों का विरोध करती है।

---

[1] अरकान्त – देश के लोग, पृ0–24.

[2] शैलेश मटियानी – सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ, पृ0 –14

हिमांशु जोशी के 'छाया मत छूना मन' की वसुधा भी एक स्वाभिमानी, स्वावलम्बी नारी है। वह आर्थिक उपार्जन कर अपनी ज़िन्दगी जीती है।

नये कथा–परिवेश में नये कथाकारों ने यौनकुण्ठा, घुटन, निराशा ऊब और जीवन विसंगतियों को उभारा है, साथ ही नारी–चेतना को भी चित्रित किया है। इन कथाकारों ने अनुभवों को जीवन्त सन्दर्भों में व्यक्त किया है। पारिवारिक विघटन, स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को भी उभारा है कृष्णा सोबती का कथा–परिवेश सीमित होने के बावजूद भी विशिष्ट और हर वक्त नये कथा–परिवेश का अहसास भी कराता है। कृष्णा सोबती का रचना–संसार अन्य लेखक–लेखिकाओं की तरह ही है। लेकिन नारी–पात्रों और स्थितियों को मुक्त रूप से चित्रित करने की प्रवृत्ति अन्य से अलग करती है। इस रूप में वे केवल महिला लेखिकाओं के लिए ही नहीं बल्कि पुरुष लेखकों के लिए भी चुनौती हैं। औरत के हर क्षेत्र को लेकर उन्होंने अपने साहित्य की रचना की है। प्रत्येक स्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक और गहराई से चित्रण किया है। उन्होंने अपने समय के कथा–परिवेश को यथार्थ रूप में जिस खूबसूरत मुहावरें और नपी –तुली शब्दावली, भाषा और शिल्प में अभिव्यक्त किया है। वह उनके व्यक्तित्व को सबसे अलग होने का गौरव प्रदान करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यथार्थता और समसामयिकता वह महत्वपूर्ण मापदण्ड है। जिसके आधार पर किसी रचनाकार की कृतियों के महत्व को आँका जा सकता है। अपने युग की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों को उद्‌घाटित करने वाला रचनाकार ही यथार्थ से जुड़ा हुआ होता है। नारी समाज का प्रधान अंग है। कृष्णा सोबती ने नारी की अवशता को भी उभारा है कि जर्जर मान्यताओं और सामाजिक रूढ़ियों के कारण पुरुष प्रधान समाज में किस तरह शोषित होती है। साथ ही अनेक समस्याओं के प्रति जागरूक होकर मुक्ति का मार्ग अपनाती हैं।

# उपसंहार

बोल्ड लेखन के लिए चर्चित कृष्णा सोबती का स्वातन्त्र्योत्तर कथा–साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। नारी–चेतना का चित्रण ही कृष्णा सोबती के सृजन का विषय कहा जा सकता है, जिसे प्रस्तुत करने में उन्हें सफलता मिली है। कृष्णा सोबती ने उस स्वतन्त्र चेता नारी का संघर्षशील व्यक्तित्व उभारा है जो जीवन की विभिन्न समस्याओं से जूझती है और अपने व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए ऐसा निर्णय लेती है जो उसका अपना होता है। कृष्णा सोबती ने नारी होने के कारण नारी की मनः स्थिति को पहचाना है और उसे अभिव्यक्त किया है, क्योंकि नारी ही नारी मन की थाह अपेक्षाकृत अधिक गहराई से पा सकती है। कृष्णा सोबती ने नारी के विविध रूपों को उभारा है, कहीं नारी भावुक है, कहीं वह अपनी आर्थिक आवश्यकता के लिए शरीर का सौदा करती है, कहीं वह पुरुष के शोषण का विरोध करती है और समाज को चुनौती देने की सामर्थ्य रखती है। वह समाज के संस्कारों, मान्यताओं एवं पुरुष के आधिपात्य के आगे नतमस्तक नहीं होती है। ये सबला हैं और अपने आत्माभिमान और सम्मान के बल पर अनेक परिस्थितियों से जूझने के लिए सचेत हैं।

प्राचीन काल में भारतीय नारी की दशा शोचनीय थी। परम्परा की बेड़ियों में जकड़ी नारी जीवन और जगत की समस्याओं और विषमताओं के पाटों में पिसती रही। अशिक्षित होने के कारण अंधविश्वास तथा रूढ़ियों ने उसे गुलाम से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर कर रखा था। स्त्री को पुरुषों के साथ समानता का अधिकार दिलाने के लिए भारत के अनेक मनीषियों तथा समाज सुधारकों ने प्रयत्न किये । राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, रमाबाई रानाडे, महात्मा गाँधी आदि अनेक समाज सुधारकों ने सदियों से रूढ़ियों और कुप्रथाओं में फंसी नारी को शिक्षित करके इस दुश्चक्र से बाहर निकालने का प्रयत्न किया।

आधुनिक युग व्यक्ति–स्वातन्त्र्य तथा समानता का युग है। दास्य और गुलामी की जंजीरें तोड़कर मानव नयी स्वतन्त्र जीवन चेतना लेकर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। चाहे वह नारी हो या पुरुष। बदलते सन्दर्भों एवं नारी उत्थान की नव चेतना के

फलस्वरूप नारी के अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण किया है। नारी प्राचीन संस्कारों एवं आदर्शों से चिपकी हुई नहीं रह गयी बल्कि पुरुष की दासता से छुटकारा पा अपनी अलग प्रतिष्ठा बनाना चाहती है। वह जीवन के प्रति गहनता से सोचने लगी, अपने निर्णय स्वयं लेने लगी, आर्थिक स्वावलम्बन के कारण स्वाभिमानी होने लगी वह पति से गुलामी नहीं सहधर्मिणी का रिश्ता चाहती है।

चेतना मानव मात्र में रहने वाली विचार शक्ति है जो व्यक्ति को अनेक विषयों के प्रति जागरूक रहने या ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है उन पर चिन्तन कराती है। व्यक्ति की सभी प्रकार की अनुभूतियों का मूल चेतना ही तो है। कृष्णा सोबती के साहित्य में हमें जगह –जगह नारी चेतना के दर्शन होते हैं। इनके कथा–साहित्य का केन्द्रीय वृत नारी है इनके साहित्य की नारी सजग रहते हुए अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को मुखर करने के लिए सामाजिक, पारम्परिक संकीर्णताओं से विद्रोह करती है। वह अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक है।

समाज में पहले विधवा हो जाना नारी के लिए अभिशाप माना जाता था। उस समय विधवाएँ समाज और परिवार दोनों में दुत्कारी जाती थीं किन्तु अब ऐसी स्थिति नहीं है। सोबती जी के साहित्य की नारी विधवा हो जाने के पश्चात् पुनर्विवाह करती हैं। विधवाओं के प्रति समाज की जो रूढ़ मान्यताएँ हैं उनके प्रति विद्रोह करती हैं। 'ज़िन्दगीनामा' की चाची महरी, बरकती, 'डार से बिछुड़ी' की मेहर आदि ऐसी नारियाँ हैं।

विवाह एवं प्रेम के सम्बन्ध में लेखिका ने नारी स्वातन्त्र्य को स्वीकारा है। इनके साहित्य की नारियों ने विवाह के परम्परित प्रचलित मानदण्ड को न मान प्रेम विवाह या अन्तर्जातीय विवाह किये। 'ज़िन्दगीनामा' की फतेह ,'तिन पहाड़' की एडना आदि इसी तरह की महिलाएँ हैं।

आर्थिक स्वतन्त्रता ने नारी के व्यक्तित्व में अप्रत्याशित परिवर्तन किया। उसमें आत्मविश्वास, स्वाभिमान एवं बौद्धिक चेतना का विकास हुआ। वह सभा–सोसायटीज आदि में भाग लेती हैं और भाषण देती हैं। 'यारों के यार' की तमन्ना और तमाशा दोनों ही नौकरीपेशा नारियाँ हैं। 'न गुल था न चमन था' की माधुरी, नादिरा दस्तूर पढ़ी लिखी हैं और सभा आदि में

भाग लेती हैं। 'दो राहें : दो बाँहें' की मीनल, श्यामली और कुन्तल 'सूरजमुखी अँधेरे के' की 'रत्ती', 'ऐ लड़की' की लड़की, सूसन आदि पढ़ी लिखी और जागरूक नारियाँ हैं।

कृष्णा सोबती पूर्व महिला कथाकारों की चेतना किस स्तर पर अलग थी पचास से पूर्व महिला कथाकारों की युग–स्थिति कैसी थी उन सबको यहाँ उभारने की चेष्टा की है। इनकी रचनाओं में नारी चेतना को भी चित्रित किया है शिवरानी देवी की 'प्रेम' कहानी की प्रेमा, रजनी पनिकर् की ' महानगर की गीता' की गीता, मन्नू भण्डारी की 'ईसा के घर इन्सान' की ऐंजिला, उषा प्रियंवदा की ' रूकोगी नहीं राधिका' की राधिका शिक्षित नारियाँ हैं। ये जीवन और जगत के अत्याचारों के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करती हैं। अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करती हैं।

उस समय की युग–स्थिति, नारी स्थिति को भी चित्रित किया है। उस समय नारी की स्थिति दयनीय थी। उसे जीवन की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। आर्थिक परावलम्बन के कारण पग–पग पर प्रताड़ित किया जाता था। महिला लेखिकाओं ने उस समय की समस्याओं, कठिनाइयों को भी उभारा है साथ ही नारी की स्वतन्त्रता का पक्ष लिया है और पुरातनपंथी मान्यताओं के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। आज की नारी स्वावलम्बी और स्वतन्त्र निर्णय लेने में सक्षम होने के कारण स्वतन्त्र जीवन जीती है।

शैक्षिक संस्थाओं, आधुनिकीकरण, औद्यौगीकरण, तकनीकी विकास और महानगरीय बोध की प्रक्रिया ने सामाजिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। परिवार का परम्परागत एवं सशक्त रूप संयुक्त परिवार था उसमें परिवर्तन हुआ। संयुक्त परिवार का रूप केन्द्रीय परिवार ने ले लिया। संयुक्त परिवार में व्यक्तियों के आर्थिक एवं मानसिक सम्बन्ध परस्पर जुड़े होते हैं लेकिन अब उनमें सहानुभूति का और आत्मीयता का बोध धीरे –धीरे समाप्त होता जा रहा है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने प्राचीन मान्यताओं व स्थापित नैतिकता को नकार दिया है। प्रेम विवाह, नैतिकता, ईश्वर सम्बन्धी धारणाओं में परिवर्तन आया और स्थापित नैतिकता का अनेक स्तरीय विघटन हुआ। सामाजिक सम्बन्धों एवं पारिवारिक सम्बन्धों में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। परिवारगत मूल्यों की भीषण सक्रांति से स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में द्वन्द्व व तनाव पैदा हुआ। आधुनिक जीवन की विद्रूपता और विसंगति ने स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों में रिक्तता, शून्यता, व्यथा एवं एकाकीपन के एहसास को आक्रान्त कर दिया। आज

एकपत्नी व्रत, पतिव्रता आदि, मूल्यों का कोई अर्थ नहीं है विवाहोत्तर, विवाहपूर्व यौन सम्बन्धों, जटिल, मनः स्थिति आदि के कारण स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में बदलाव आया है। 'बादलों के घेरे', 'एक दिन', 'दो राहें : दो बाँहें,' 'कुछ नहीं :कोई नहीं' आदि रचनाओं में दाम्पत्य जीवन की टूटन, व्यथा, विसंगति देखी जा सकती हैं।

स्त्री–पुरुष अपनी–अपनी जगह पूर्णत्व की खोज में संघर्षरत हैं, किन्तु खोज की हर दिशा उनके व्यक्तित्व को खंडित कर रही है। नारी रूढ़ परम्पराओं और मान्यताओं से जैसे –जैसे मुक्त होती जा रही है उसे अनेक नई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। नारी परम्परागत मूल्य भ्रमों से मुक्त हो रही है परन्तु दूसरी ओर उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है। नारी अकेलेपन और व्यथा, रिक्तता के बोझ से दबी हुई है फिर भी विषम जीवन – स्थितियों के होते हुए भी दुर्दम जिजीविषा रखती है। वह नैराश्य के कारण अपने भाग्य को नहीं कोसती है अपितु विषम परिस्थितियों से जूझते हुए जीवन के प्रति अनास्था नहीं रखती है। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण ही जिजीविषा है। मानवीय जीवन विभिन्न दुःखों एवं यातनाओं से ग्रस्त है लेकिन मनुष्य के भीतर कसमसाती हुई जिजीविषा का परिणाम है कि वह इन यातनाओं से मुक्त होने का मार्ग ढूंढ़ लेता है। वास्तव में जिजीविषा नारी में उस चेतना का निर्माण करती है जिससे वह जीवन की चुनौतियों का सामना करने में स्वयं को सक्षम पाती है।

उपन्यास का क्षेत्र मनुष्य जीवन के व्यापक सन्दर्भों को स्पर्श करने वाला और यथार्थ जीवन के अधिक निकट होने के कारण नारी की स्थिति को यथार्थ रूप से अंकित कर सका है। इसमें उन्मुक्त यौवन सम्बन्धों के प्रति नारी की परिवर्तित मानसिकता देखी जा सकती है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो अपने अस्तित्व में चैतन्य की ओर एक सजग कदम है दैहिक माँग जो सृष्टि का स्त्रोत है उसका अधिकार स्त्री–पुरुष दोनों को है। मित्रो जिस छटपटाहट का प्रतीक है। वह यौन उफान नहीं, व्यक्ति की अस्मिता का अक्स है जिसे नारी की पारिवारिक महिमा में भुला दिया जाता है। मित्रो में वासना ही नहीं, वरन कोमल हृदय नारी भी है। सन्तान की इच्छा भी है। वह रूढ़ मान्यताओं को अस्वीकारती है। कृष्णा जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी के भीतर की अहम्, कुण्ठा, दमित, काम भावना अथवा उसके

व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उभारा है। अंधविश्वासों के प्रति अविश्वास परम्पराओं के प्रति आक्रोश, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, सामाजिक बन्धनों के प्रति अवमानना प्रकट की है। आधुनिक परिवेश में नारी पुरुष के समान और समकक्ष स्वतन्त्र–चेतना से सम्पन्न होकर जीवन के नवीन आयामों में अपनी विशिष्ट इकाई का निर्माण करती है।

सोबती जी के कथा –साहित्य का वृत नारी है सोबती जी अपने युग के बाह्य तथा आन्तरिक दोनों रूपों से जुड़ी है। उन्होंने सामाजिक प्रक्रिया और उनके विकासमान तथा परिवर्तनशील स्वरूपों का गम्भीर अध्ययन मनन किया है। उनके कथा–साहित्य में समकालीन यथार्थ के अर्थ पूरी तरह खुलते दिखाई देते हैं। समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्रण रचना को पूर्ण बनाता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते साहित्यकार, समाज की यथा–स्थिति से अवश्य प्रभावित होता है अर्थात समाज के यथार्थ को अभिव्यक्ति देना उसका ध्येय बन जाता है। सोबती जी ने समाज की परम्पराओं, रूढ़ियों, मान्यताओं, मर्यादाओं का अपनी रचनाओं में जगह–जगह उल्लेख किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर समाज में भी पुरानी सामाजिक रूढ़ियाँ बरकरार हैं। सोबती जी ने इन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह प्रकट किया है। नारी जीवन को वे समद्ध और सम्माननीय देखना चाहती हैं उनकी रचनाधर्मिता में नारी उन्नयन प्रमुख स्वर रहा है। नारी जर्जर मान्यताओं और परम्पराओं के बीच किस प्रकार का जीवन जीने के लिए विवश है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में उभारा है और साथ ही विद्रोही स्वर प्रदान किया है। उन्होंने भारतीय नारी जीवन के विविध रूप प्रस्तुत किये हैं साथ ही वे नारी के दुर्बल पक्षों की चर्चा करना नहीं भूली हैं। नारी जीवन की विविध समस्याओं अशिक्षा, पुरुष द्वारा शोषण, वेश्या समस्या आदि को प्रस्तुत किया है नारी जब तक आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं होगी तब तक उसका शोषण होता रहेगा। नारी जब तक रूढ़ मान्यताओं और परम्पराओं तथा अशिक्षा एवं अंधविश्वासों के घेरे में फंसी रहेगी तब तक वह पुरुष प्रधान समाज में शोषित होती रहेगी। पुरुष उसे यौनेच्छाओं की पूर्ति के साधन के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता है। अशिक्षा के कारण नारी पशुवत् जीवन व्यतीत करती है। कोई भी नारी जन्म से ही वेश्या या अपराधिनी नहीं होती उसे विषम

परिस्थितियों में सब कुछ करना पड़ता है। सोबती जी ने नारी के अनेक पहलूओं को उभारा है क्योंकि नारी ही नारी मन की गहराइयों में झाँक सकती है।

भारतीय नारी जीवन के अनेक स्तरों पर अपमानित एवं शोषित है। लेकिन सामाजिक जीवन में होने वाले विभिन्न आन्दोलनों ने उसकी चेतना को आन्दोलित किया और चेतना सम्पन्न नारी अपनी अस्मिता पहचानकर अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई देती है। सोबती जी के साहित्य की नारी चाहे ग्रामीण अंचल की हो या शहरी परिवेश की वह स्वयं को रूढ़ मान्यताओं से मुक्त करने में संघर्षरत दिखाई देती है। साथ ही अनेक समस्याओं के प्रति जागरूक होकर आज की नारी किस प्रकार अपने अधिकारों के प्रति सजग है इसका अंकन किया है।

कृष्णा सोबती स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथाकारों में विशेष रूप से प्रसिद्ध रही हैं। नारी के जीवन के विविध स्तरों की प्रस्तुति सोबती जी के कथा–साहित्य की एक महान उपलब्धि है। यथार्थ का बेबाक खुला चित्रण, गहरी संवेदनशीलता नारी–चेतना इनके साहित्य का विषय रहा है। इनके साहित्य की नारी कर्त्तव्य – अकर्त्तव्य का बोध रखती है वह बन्धन तथा मुक्ति में अन्तर पहचानती हैं। उनकी नारी पुरातनपंथी चिन्तन व रूढ़ियों से जूझने की सामर्थ्य रखती है और समाज से टक्कर लेती है। दफ्तरी जिन्दगी का नरक हो या पारिवारिक पीड़ा की कचोट, किसी भी तरह की सामग्री हो, उसे संजोने की अद्‌भुत कला सोबती जी के पास है। परिस्थितियों और घटनाओं के माध्यम से जीवन के अन्तरंग और निजी अनुभवों को उभारने और मानवीय सम्बन्धों की विशिष्टताओं को दर्शाने की शक्ति उनके पास है। लोक–जीवन और सांस्कृतिक परिवेश को रेशा–रेशा खोलने वाली कलात्मक दृष्टि और हिन्दी कथा–साहित्य को नये आयाम देने वाली विशिष्ट भाषा-शैली का वरदान उन्हें मिला है। अपनी अनुपम कला के लिए सोबती जी हिन्दी कथा–साहित्य की विशिष्ट पहचान है।

# परिशिष्ट–I

## कृष्णा सोबती के कथा - साहित्य की भाषा- शैली

भाषा कथा–साहित्य का एक आवश्यक एवं विशिष्ट तत्त्व है। यह मनुष्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। सामान्यतः भाषा मनुष्य की सार्थक व्यक्त वाणी को कहते हैं। इसके द्वारा मनुष्य के भावों, विचारों और भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है अर्थात मनुष्य के भावों, विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का सर्वोतम माध्यम भाषा है। भाषा मानव की सामाजिकता को पुष्ट करती है। साधारण बोलचाल की भाषा की अपेक्षा साहित्य की भाषा अधिक कलात्मक और प्रभावशाली होती है। उपन्यास तथा कहानी साहित्य के दो लोकप्रिय रूप हैं। साहित्य के इन दोनों रूपों की भाषा अन्य की अपेक्षा सरल और सहज होती है।

भाषा प्रयोग मूलतः सम्प्रेषण के लिए होता है। यों तो सम्प्रेषण के लिए संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि अन्य अनेक साधन भी हैं। किन्तु इनमें भाषा का स्थान सर्वोपरि है। उपन्यास एवं कहानी की भाषा पात्रानुकूल बनाने के लिए वातावरण विशेष के निर्माण के लिए उसमें प्रसंगानुसार अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी किया जा सकता है। शब्द भले ही उर्दू, अरबी, फारसी, पंजाबी अंग्रेज़ी के हों किन्तु उनका प्रयोग स्वाभाविक होना चाहिए। शब्द भावों या विचारों के अनुरूप होने चाहिए। सहज आम बोलचाल की भाषा में मानवीय अन्तर्वृतियों को निरुपित करने में, विसंगतियों और विद्रूपताओं को अभिव्यक्ति देने में कृष्णा सोबती का अन्यतम स्थान है। कृष्णा सोबती के कथनानुसार, 'लोक भाषाएँ बोलियाँ अपनी ताकत धरती से सोखती हैं – ठेठ लोकतत्वों को अपने में समेटती हैं और लोकजीवन में घुलमिल उसकी लय को अंकित करती हैं।..... देश के किसी भी क्षेत्र विशेष या कालखंड की बोली में घुलमिल गए संस्कृत, पाली, उर्दू अपभ्रंश, ब्रज, अरबी, फारसी के शब्दों के लिए इतनी उपेक्षा क्यों ? खड़ी बोली में उनका अनुवाद करना दरकार न था।''[1] कृष्णा सोबती की

---

[1] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोंहबत, पृ0 – 410

कथा–भाषा अत्यन्त सशक्त, सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों की प्रस्तुति में पूर्ण सक्षम, अर्थ समृद्ध है इसमें भाषा और शिल्प का एक परिश्रम साध्य सन्तुलन दिखाई देता है। कृष्णा सोबती का शब्दकोश समृद्ध व्यापक एवं अक्षय है। उनके शब्द भाव एवं अर्थगर्भित हैं उनके कथा–साहित्य की भाषा बोलचाल की भाषा होते हुए भी साहित्यिक गरिमा का रूप लिए है। " जिस भाषा को लेखक जीता नहीं, जिससे उसे लगाव नहीं, सम्बन्ध–सरोकार नहीं – उन्हें सृजन के स्तर पर वह रचना की बुनावट में सार्थक रूप में गूँथ नहीं सकता। सच तो यह भी है कि भाषा के साथ गहरे में जुड़ा है लेखक का व्यक्तित्व, उसकी सोच, चिन्ताएँ और उसकी समूची जीवन–दृष्टि।"[1]

कृष्णा सोबती की अपनी भाषा–शैली विशेष प्रकार की है जिसके कारण वे अन्य लेखक–लेखिकाओं से अलग हैं। इन्होंने हिन्दी व्याकरण की उपेक्षा कर अपनी भाषा के कुछ शब्दों का स्वेच्छा से प्रयोग किया है। जिस कारण कठिनाई का सामना करना पड़ता है लेकिन फिर भी इनकी भाषा प्रसंगानुकूल पायी जाती है। हिन्दी एक विकासशील भाषा है। अतः भावों एवं विचारों की सफल अभिव्यक्ति के लिए लेखक हिन्दी के अतिरिक्त लोक प्रचलित अंग्रेजी, उर्दू , संस्कृत, अरबी फारसी, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करने लगा है भाषा को अधिक सजीव और प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों व लोकोक्तियों का भी खुलकर प्रयोग किया है। कृष्णा सोबती की रचनाओं में अनेक भाषाओं का प्रयोग हुआ है।

**संस्कृत शब्दों का प्रयोग** - भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत है। सोबती जी के कथा–साहित्य में संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है ये शब्द आवश्यकतानुसार ही आये हैं। जैसे–

---

[1] कृष्णा सोबती – सोबती एक सोहबत, पृ0 – 411

"सिर – मस्तक – मुख – नेत्र – नाक – कान – कपोल – हाथ – पाँव – कटि, रचने वाले ने भी क्या रच डाला ! अंदर लगा दी पल–छिन वाली घड़ी। न एक साँस ज्यादा और न कम।"[1]

"नाग शोभे मदकर नीर शोभे इंदीवर
रैन शोभे हिमकर नारी शील रति ते।
शोभत तुरंग जब धाम शोभे उत्सव
शोभे व्याकरण वाणी नदी हंस गति ते।"[2]

**उर्दू, अरबी, फारसी के शब्द** - कृष्णा सोबती की भाषा में एक बेबाकी उर्दू की रवानगी के साथ–साथ बोलचाल की जीवनधर्मी गंध बरकरार रखने के लिए निस्संकोच शब्दों का प्रयोग किया है। जिससे लगता है कि भाषा एक स्वतन्त्रता की साँस ले रही है। उर्दू के रंग में रंगी खूबसूरत भाषा कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में देखी जा सकती है। सोबती जी ने अपने कथा–साहित्य में उर्दू , अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। उर्दू के बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग तो अन्य कथाकारों ने भी किया है किन्तु सहज रवानगी और उसका मिज़ाज उतारने का श्रेय कृष्णा सोबती की भाषा को है। उनके कथा–साहित्य में उर्दू ,अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग पूरी स्वछन्दता से हुआ है। उनके कथा–साहित्य में इस प्रकार के शब्दों का भाषिक प्रयोग सर्वत्र दर्शनीय है। उदाहरणस्वरूप जैसे– बड़े बाबू ने किसी तरह हलक की फाँस निगली और सहमे गले से पूछा, "कुछ ख़ता हुई हुजूर ?

"साहब ने खुर्दबीनी निगाह भवानी बाबू के चेहरे पर गड़ा दी और अफसराना अन्दाज में बोले–"पड़ताल के लिए जाँच–कमेटी बैठने वाली है। आपको फौरन मुअत्तिल न कर, छुट्टी की छूट दे महकमे ने आपके साथ रिआयत ही बरती है।"[3]

---

[1] कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, पृ0–18
[2] वही – ज़िन्दगीनामा, पृ0–80
[3] वही – यारों के यार, पृ0–10

"मेहनत और खबरदारी से सैकड़ों फाइलें 'डील' कीं और काबलियत से भुगता दीं। आज इतने सालों बाद यह मुसीबत न जाने कहाँ से बरपा हो गयी।"[1]

'यारों के यार' उपन्यास का शीर्षक का शब्द 'यार' भी उर्दू का ही शब्द है। दिलो–दानिश में भी उर्दू शब्दों का प्रयोग मिलता है–

"बीबी को आगबबूला देख वकील साहिब ने पटरी बदल दी – बदगुमानी की हद है ? कितनी देर उसी एक नुक्ते पर अड़ी रहिएगा। हम दोनों के सिर पर से खासा पानी गुज़र चुका है।

– इसके गुनहगार क्या हम हैं ?

– सुनिए, बीबी होने के नाते आपको यह अहसास तक नहीं है कि अच्छी गुफ्तगू और देग का लुत्फ उठाने का हक भी शौहर का बनता है। मगर आपके पास वही एक पुराना दुखड़ा।"[2]

"हमारा रिज़क जिससे बँधा है उस कानून से भी क्या शिकायत। और इंसान से भी क्या। ज़िंदगी का खेल है साहिब, खेला ज़रुर जाएगा। आखिर मुहब्बत को मुहब्बत भी क्यों न कहा जाए। एक सीधा–सादा इंसानी जज़्बा। यह भी क्यों ज़रूरी है कि एक ही रिश्ता पसरकर बंदे की पूरी ज़मीन और ज़मीर को घेर ले ! ..... किस खुशकिस्मत को मयस्सयर होगी ऐसी खुशज़ौकी।"[3]

"माँबीबी चाची से बोली, "सौह रब्ब की चाची, मैं ऑकने से पहले विचारने न बैठी थी। ये सोहणी मूरतें आप ही हाथ से पुर गई हैं। अल्लाह बेली हमारी भी सुनेगा न !
उसी के हजूर में अर्ज़ कर, इस घर भी बच्चड़े खेलें।

चाची, बाबा फ़रीद जिनकी अल्ल के पुरखा हों उन पर क्यों न मेहर होगी ! क्यों न झोली भरेगी।"[4]

---

[1] कृष्णा सोबती – यारों के यार, पृ0– 19
[2] वही – दिलो–दानिश, पृ 0–35
[3] वही – वही पृ0–39
[4] वही – ज़िन्दगीनामा, पृ0–29

"कुदरते–खुदावंदी का यकीन दिलाने के लिए मूसा ने बड़े–बड़े मोजज़े दिखाए। आसमानों को कैसा बुलंद और बाआब बनाया। सूरज के जरिए रात और दिन की तारीकी और रोशनी का इंतज़ाम किया।..... आसमानों की हकीकत रब्ब कुछ भी समझी जाए, मगर उनके वजूद और उनकी मज़बूती में किसी को शक नहीं । आसमानों की हर–एक चीज़ अपनी मुकर्रा जगह के अंदर निहायत मज़बूती से कायम है।"[1]

" खुदा ने सब कुछ दिया था, मगर – मगर दिन बदले, वक्त बदले.....रब्ब तुम्हें सलामत रक्खे बच्चा, खुशियाँ बख्शे..... ।"[2]

कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में उर्दू शब्दों का प्रयोग काफी हुआ है। मुगल साम्राज्य होने के कारण भारतीय जनजीवन में इन शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक हो गया है। जन भाषा का अविभाज्य अंग होने के कारण आज भी ये शब्द अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। इन शब्दों से भाषा में गति आयी है और भावों में गहनता।

**अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग** - महानगरीय वातावरण में रहने के साथ–साथ बोलचाल की भाषा में शिक्षित समुदाय के लोगों में अंग्रेजी के शब्दों की भरमार है। सोबती जी ने अपने कथा–साहित्य में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी किया है–"कौन दादा ! रंगबिहारी ? एण्टीक्रम्शन में अण्डर–सेक्रेटरी हो गए हैं।"[3]

"बड़े भाई, तुम्हारी सीनियोरिटी का चक्कर क्या चला साला, दिमाग ही पटरी से उतर गया।"[4]

"यार–दोस्तों के महकमे, डैज़िगनेशन, पोज़ीशन और रसूख के चीदा–चीदा डिटेल्स दिमाग़ी खाके में भरते चले गये कि दफ़्तर के स्टाप पर कण्डक्टर ने घण्टी बजा दी।"[5]

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा पृ0– 55

[2] वही – बादलों के घेरे, पृ0–127

[3] वही – यारों के यार, पृ0–18

[4] वही – वही पृ0–21–22

[5] वही – वही पृ0–20

"एयरपोर्ट पर कॉफी लेते रत्ती ने नीचे झाँका। बड़ी एयरपोर्ट की चहल–पहल। कोलाहल। आने–जाने वाली फलाइट्स के अनाउंसमेंट।"[1]

तुम्हारा यह क्रैडिट मेरे लिए कीमती है..... बढ़ाकर बात करते हो भानुराव, अख़बारों के 'हैडिंग' बाँटने की आदत है न।.....यह कॉम्पलीमेंट नहीं है रत्ती..... ।"[2]

"पहले से रिज़र्व करवाये बोर्डिंग हाउस के कमरे मे रात को लेटी तो गाढ़ा काला अंधियारा मन के आसपास छा गया।"[3]

तुम अपना टाइमटेबल ही भरती रहो।..... टैंपरेचर लिया। डॉक्टर को फोन किया। ..... तुम्हारा लिखा हुआ रिकार्ड रद्दी में जाएगा।"[4]

"रेलिंग पर हाथ रख खड़े रहे, फिर रिफ्रेशमेंट रूम की सीढ़ियाँ चढ़ गये।.... नीचे उतरे ,कुछ सोचा और स्टेशन मास्टर के कमरे में पहुँच प्रार्थना की छूट गयी गाड़ियों के रिज़र्वेशन चार्ट देख सकता हूँ।"[5]

आज उच्च या मध्यवर्गीय व्यक्ति ही नहीं सामान्य व्यक्ति भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर रहा है। ऐसी स्थिति मे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग उसकी भाषा का अनिवार्य संस्कार हो गया है। व्यक्ति का यथार्थ चित्रण करने के कारण कथा–साहित्य में यह भाषा संस्कार पूरी तरह उतरता है।

**पंजाबी शब्दों का प्रयोग** - सोबती जी ने पंजाब की संस्कृति तथा परिवेश को सजीवता प्रदान करने के लिए पंजाबी शब्दों का प्रयोग किया है।

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| [1] कृष्णा सोबती | – | सूरजमुखी अँधेरे के, | पृ0–80 |
| [2] वही | – | वही | पृ0– 83 |
| [3] वही | – | बादलों के घेरे, | पृ0–185 |
| [4] वही | – | ऐ लड़की, | पृ0–70 |
| [5] वही | – | तिन पहाड़, | पृ0–123 |

"सब्र करो मेहर, रब्ब अच्छा करेगा। यही जानो लड़की सासरे जाती है।"[1]

"वारी उन राहों से जिन पर से मेरा राजा वीर इस ड्यौढ़ी पहुँचा है। वारी इस सुलच्छी घड़ी जिसने यह मीठी खबर सुनाई। .....झुक मेरे वीर ने मुझे 'पैरीपौना' किया तो दिल में प्यार उमड़ आया पर सबके सामने सकुचायी–सी खड़ी रही।"[2]

"रह–रह लाहणियाँ पड़ती थीं, कड़े सयापे की आवाजें तीर–सी कलेजे लगती थी और छाती पीट–पीट बेहोश हो–हो जाती थी।"[3]

"उठकर कोठे पर चली गयी। बनेरे पर हाथ दिये–दिये अपने वीर की खैर मनायी। लड़ाई में न रुझे होते तो वीर मेरे अब तक खोज–ख़बर न लेते ? पीर–फकीरों का नाम ले आँखे बन्द कर लीं।"[4]

"ढक्की से उतर मँझले चौक में आये । घोड़ा रोक नीचे उतरे और हाथ बढ़ा मुझे उतार लिया। अँधेरी सीढ़ियों पर से चबारे चढ़ी तो इस मन से न कुछ सोचा गया, न देखा गया।"[5]

"सुहाग सास से ढुक बैठी तो ओंठों–ही –ओंठों में मुस्करा मित्रो ठसक से घरवाले के पास जा बैठी। धनवन्ती ने बारी–बारी सबकी ओर ताका और बात हिलाने को कहा– समित्रारानी, माथे का कपड़ा तनिक नींवा कर ले, बेटी ! तेरे ससुर–जेठ बैठे हैं !"[6]

"हुक्म की बाँदी हूँ चन्न जी, इतनी रूखाई क्यों ? ...मित्रो ने भूरी आँखें नचाई मैं किस्मत–जली क्या करूँ। मेरा ढोल तो मुझसे बेमुख।"[7]

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0– 31
[2] वही – वही पृ0–41
[3] वही – वही पृ0– 56
[4] वही – वही पृ0–77
[5] वही – वही पृ0–83
[6] वही – मित्रो मरजानी, पृ0–31–32
[7] वही – वही पृ0– 45

"पिंड के कच्चे कोठे चम्मचम्म चमकने लगे। दमकने लगे। चान्ननी ने सजरी लिपाई से खेत–खलियान रूख–वृख सब उजरा–उजला दिए। बेटों–बच्चड़ो के साथ घरों को लौटती बलदों की जोड़ियाँ जी की तृखा–प्यास जगाने लगीं।..... रब्बा, ये सोहणें समय मनुक्खों के साथ लगे रहें।"[1]

"चलो भई, चलो निक्की बेबे के बेहड़े।..... मोहरे की बेबे से हाँक पड़ गई – अरे कख न जाए तुम्हारा, नीचे मिट्टी झड़ती है। कहीं रण जीतने तो नहीं जा रहे। मंजी पर चौकड़ी मार लाला वड्डे दूध–पराँठा खाकर तृप्त हुए ही थे कि वानरों की टोली आ प्रकटी।"[2]

"भाई रे बाँके चीरवाले
दमड़ा तो इक देता जा
मोह माई दे के जा
दाढ़ी फुल्ल पवा के जा
बस, जातको ! यह लो फल–फूल और ख़लासी करो।"[3]

कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य की भाषा पंजाबी मिश्रित हिन्दी है।

**मुहावरे और लोकोक्तियाँ** - इनके कथा–साहित्य में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग भी हुआ हैं लेखिका के मौलिक प्रयोग उसे परम्परित मुहावरों से अलग नहीं ले जाते, साहित्य के कथ्य को ध्वनित करने में सफल होते हैं। भाषा को मजबूत, प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाने में मुहावरों का विशेष महत्व होता है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों से भाषा सजीव हो उठती है। भाषा में निखार आता है। भाषा को नई रवानगी देने का कार्य मुहावरे ही करते हैं। उनके कथा–साहित्य से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

---

[1] कृष्णा सोबती – ज़िन्दगीनामा पृ0–16–17
[2] वही – वही पृ0–18
[3] वही – वही पृ0– 35

[1] पसार छूने लगी– न शर्म न हया

[2] अंग–अंग जल उठा

[3] चलते पानी की ठौर कहाँ

[4] घिग्घी बंध गयी

[5] घर की ईंट–से–ईंट बजायेंगे

[6] दाँतों तले उँगली दबा

[7] जात की किरली, शहतीरों से गलबहियाँ

[8] जो रानी थी सो गोली बन गयी

[9] कमजात बिल्ले, मलाई देख मुँह मारने आया

[10] मन–ही–मन कच्ची हो आयी

[11] बात का बंतगड़

[12] नाक–तले चार भाँड़ों में मुँह मारती है

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| [1] कृष्णा सोबती | – | डार से बिछुडी, | पृ0–8 |
| [2] वही | – | वही | पृ0–10 |
| [3] वही | – | वही | पृ0–13 |
| [4] वही | – | वही | पृ0–15 |
| [5] वही | – | वही | पृ0–28 |
| [6] वही | – | वही | पृ0–30 |
| [7] वही | – | वही | पृ0–59 |
| [8] वही | – | वही | पृ0–75 |
| [9] वही | – | मित्रो मरजानी | पृ0–20 |
| [10] वही | – | वही | पृ0–26 |
| [11] वही | – | वही | पृ0–32 |
| [12] वही | – | वही | पृ0–33 |

[1] दूजे घर का चिराग

[2] शहर की धूल फाँकता है

[3] मन–ही–मन फूली न समाई

[4] गोता मारा पाताल और निकला थोथा घोंघा

[5] औन–पौन का ही फार फरक

[6] खून का बदला खून

[7] हक्की–बक्की रह गयी

[8] चौदहवीं का चाँद

[9] दूध का दूध और पानी का पानी

[10] ज़िगर का टुकडा

[11] मौत के घाट उतार दिया

[12] बत्तीस सुलक्खना वह जो अपनी अक्ल करे। तैंतीस सुलक्खना वह जो दूसरों की पूछ करे

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| [1] कृष्णा सोबती | – | मित्रो मरजानी | पृ0–36 |
| [2] वही | – | वही | पृ0–40 |
| [3] वही | – | वही | पृ0–45 |
| [4] वही | – | वही | पृ0–46 |
| [5] वही | – | ज़िन्दगीनामा | पृ0–62 |
| [6] वही | – | वही | पृ0–128 |
| [7] वही | – | वही | पृ0–130 |
| [8] वही | – | वही | पृ0–164 |
| [9] वही | – | वही | पृ0–175 |
| [10] वही | – | वही | पृ0–183 |
| [11] वही | – | वही | पृ0–199 |
| [12] वही | – | वही | पृ0–221 |

[1] दूर के ढोल सुहावने

[2] टस–से–मस न होगीं

[3] कबाब में हड्डी

[4] आस्तीन का साँप

[5] ईद का चाँद

[6] चोर –चोर मौसरे भाई

[7] स्याह–सफेद का पूरा खाका दिमाग पर खींच लिया

सोबती जी ने परिष्कृत हिन्दी, उर्दू , अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करके वाक्य को स्वाभाविक और पात्रानुकूल बना दिया है। साथ ही मुहावरे और लाकोक्तियों का प्रयोग भाषा को सशक्त बनाता है। उनकी भाषा का अपना अलग ही व्यक्तित्व है उनकी भाषा का मुहावरा, उन्हीं लोगों का मुहावरा है जिनका वर्णन वह करती हैं। उनकी भाषा विषय के अनुकूल विविध रूप धारण करती है।

कृष्णा सोबती के अनुसार–"भाषा और भाषा में फर्क है। भाषा का मुहावरा लहजा और उसकी सँवरन हर वर्ग के चौखटे के साथ बदलते हैं। मज़दूर किसान की भाषा अपने तेवर से सफेदपोश शिक्षित वर्ग और अभिजात के मुलायम मँजे हुए मिज़ाज और परिष्कार से अलग जा पड़ती है।"[8] इन्होंने भाषा के माध्यम से कथा–साहित्य के चरित्रों की मनः

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो–दानिश पृ0–15

[2] वही – वही पृ0–54

[3] वही – वही पृ0–58

[4] वही – वही पृ0–58

[5] वही – वही पृ0–143

[6] वही – यारों के यार, पृ0–27

[7] वही – वही पृ0–35

[8] वही – सोबती एक सोहबत, पृ0– 411

स्थितियों को अनुभूतियों और संवेगों को अभिव्यक्ति दी है। इनके साहित्य की भाषा बोलचाल की है। इन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू , अरबी, फारसी तथा देहात एवं अंचल के शब्दों का प्रयोग सहजता से किया है।

**शैली** - शैली के द्वारा लेखक का व्यक्तित्व निर्दिष्ट होता है। अर्न्तमन में भाव–विचार की जो लहरें उठती हैं, उनकी अभिव्यक्ति शैली द्वारा होती है। अर्थात भावनाओं और विचारों को मूर्त रूप प्रदान करने वाला तत्त्व शैली है। अपनी रचना में कथा के सूत्रों को जोड़ने, अग्रसर करने के लिए, प्रकरण को सजीव एवं मूर्त बनाने के लिए एवं उसे विशिष्ट बनाने के लिए लेखक आवश्यकतानुसार विभिन्न शैलियों का प्रयोग करता है।

किसी भी साहित्यिक कृति की सफलता में कृति की भाषा–शैली का हाथ होता है। कथ्य और शिल्प का मिलकर एक हो जाना कृतिकार के लिए उपलब्धि है। भाषा कथाकार का एक शक्तिशाली उपकरण है। वह शब्द योजना, वाक्य–संरचना और वाक्य विन्यास द्वारा अपनी बात को विशेष प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषित करने में समर्थ होता है। शैली द्वारा लेखक वास्तविकता को व्यक्त करता है। कृष्णा सोबती ने निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है–

**वर्णनात्मक शैली** - कथानक को संगठित व विकसित करने की यह सर्वाधिक प्राचीन शैली है। कथन के साथ–साथ चित्रण में पात्रों के बाह्य तथा आंतरिक स्वरूप को अभिव्यंजित करने के लिए लेखक इस शैली का प्रयोग करता है। सोबती जी ने पात्रों के चरित्रांकन तथा उनकी विचारधारा को उजागर करने के लिए इस शैली का प्रयोग किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है – शर्मा ने अचानक उठ आयी खाँसी को रोकते–रोकते अपने हमजोलियों को आँख मारी कि सक्सेना की कनकव्वी आँख ने बीच में ही झपट ली। एकाएक बड़े बाबू ने अपनी मँजी हुई रोबीली आवाज़ में सब इशारेबाजियों को खत्म कर दिया, "शर्मा , लो सँभालो, यह स्टेटमैण्ट

की फाइल है, याद रहे कल आख़िरी तारीख़ है, इसके जाने की। और हाँ, भारद्वाज फर्नीचर परचेज की फाइल कल साहब को सबमिट होगी।''[1]

**आत्मकथात्मक शैली** - आधुनिक युग में यह सर्वाधिक प्रचलित है। इसमें लेखक खुद निवेदक होता है। लेखक कथा के नायक, नायिका या सहायक पात्र का स्थान स्वयं ग्रहण करता है और इस प्रकार स्वयं प्रत्येक घटना का वर्णन करता है। अर्थात इस शैली में कथा इस प्रकार से कही जाती है जिससे लगता है कि लेखक आत्मानुभूति को ही प्रस्तुत कर रहा है। उदाहरण दृष्टव्य है –

''मैं किसी को नहीं पुकारती। जो मुझे आवाज़ देगा, मैं उसे जवाब दूँगी।''[2]

''कहाँ जाती हूँ मैं, कहाँ जाती हूँ, कि बिजली कौधी और मैं अपने वीर से जा लगी। मुझे कहीं और न भेजो वीरजी, मुझे कहीं.....''[3]

**काव्यात्मक शैली** - कथा–साहित्य को रोचक और सरस बनाने के लिए जगह–जगह काव्यमयी भाषा–शैली को अपनाया है। उदाहरणस्वरूप जैसे –

रतिका जैसे तन–मन की चिलमन के पीछे हँस ली हो। आखीरकार ! दिवाकर शतांश को रूक गए कि डुबकी लगाने से पहले गहराई मापते हों ! इस बार गूँथ नहीं। सुख का हिंडोला हो ! आमने –सामने ! गुच्छे लटकने लगे। पाटल बिखरने लगे।

दिवाकर देरी से आतंकित हो काँपने लगे थे कि रत्ती ने लयकारी से किनारे तक ला अपनी ओर खींच लिया। अपने में।''[4]

---

[1] कृष्णा सोबती – यारों के यार, पृ0–12

[2] वही – ऐ लड़की, पृ0–74

[3] वही – डार से बिछुड़ी, पृ0–65

[4] वही – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0 – 122

"उजागर हो – हो आती वह दुपहरी नहीं थी, धूप में खिलखिल आता आकाश का कोई स्वप्न था। आकाश की चूनर रह–रह पहाड़ों पर लहराती। पतली बलखाती राहें दो जोड़ी पाँव से लिपट–लिपट जातीं और दूर बैठी सयानी सखी – सी कंचनजंगा हर मोड़ से, हर ठौर से मुसकरा जाती।"[1]

भाषा को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए काव्यमय शैली में नज़्म की पंक्तियों का प्रयोग भी किया है–

"आशिक है तो दिलबर को हर इक रंग में पहचान
फल पात कहीं शाख़ कहीं फूल कहीं बेल
नरगिस कहीं सौसन कहीं बेला कहीं है खेल
आज़ाद कोई सबसे, किसी का है कहीं मेल
मलता है कोई राख, चमेली का कोई तेल
करता है कोई जुल्म तो लेता है कोई झेल
अदना कोई आला कोई सूखा कोई डंडपेल
जब ग़ौर से देखा तो उसी के हैं ये सब खेल"[2]

"एक मियाँ थे मोटे खाँ
नाम था जिनका छोटे खाँ
छोटे खाँ बाज़ार गए
चलते–चलते हार गए।"[3]

---

[1] कृष्णा सोबती – तिन पहाड़, पृ0–82
[2] वही – दिलो – दानिश, पृ0– 22–23
[3] वही – वही पृ0– 24

**चित्रात्मक शैली** - चित्रमयता शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। सोबती जी की शैली इस कसौटी पर बिल्कुल सफल है। उनके साहित्य को पढ़ते समय एक–एक प्रसंग घटना स्थान का चित्र आँखों के सामने सजीव हो उठता है। जैसे– "दार्जिलिंग पर तो एक ही आकाश की छत है। उसे भी पहचानना होगा।..... चायबगान की एकाकी बलखाती सिंगरापोंग की ओर उतर चली। जितनी बार मोड़ आता, पीछे छूट गये पहाड़ ऊँचे होते जाते। दार्जिलिंग की लाल छतों की थिगलियाँ। कभी धुपेले बादलों की छाँह हल्की होती, गहरी होती और पतली पगडण्डी अजानी–अदेखी मंजिल की ओर भागती चली जाती।"[1]

"अनसुना–सा कर मुंशीजी ने कदम भरा और लपककर झल्ली वाले के साथ हो लिए। नुक्कड़ पर पहुँचते–न–पहुँचते तेज़ हवाएँ चल निकलीं। दुकानों के बाहर लटकते रंग–बिरंगे चमकीले सूती–रेशमी–ऊनी कपड़े उड़ –उड़ लहराने लगे। जितने में दुकानों से निकले हाथ उन्हें झपटकर समेटें, बड़ी–बड़ी पनीली बूँदों की बरखा होने लगी। पटरियों पर तेज़–तेज़ भागने की होड़–सी लग गई। बौछार से बचने के लिए छज्जों तले अधगीलों की टोलियाँ पानी थमने का इंतज़ार करने लगीं।"[2]

"मेहरअली ने घी–लगी दुप्पड़ के चार टुकड़े किए और निवाला मुँह में डालकर कहा – दूध–मलाई धनाढ़ शाहों की और छाछ–लस्सी हमारी ! लानत हमारी मेहनतों पर।"[3]

इस तरह सोबती जी ने आधुनिक जीवन का यथार्थवादी चित्र, मध्यम वर्ग की जिन्दगी, पहाड़ी स्थल, पगडड़ियों, दिल्ली की सड़कों, गलियों, मुहल्लों, निम्न मध्यवर्ग के लोगों के रहन–सहन, बोलचाल, संस्कृति आदि के अनेक चित्र खींचे हैं।

---

[1] कृष्णा सोबती – दिलो – दानिश, पृ0– 84
[2] वही – वही पृ0–8
[3] वही – ज़िन्दगीनामा, पृ0–83

**पत्रात्मक शैली** - पत्रात्मक शैली के रूप में लिखित कथा की योजना का आधार विविध पात्र–पात्रियों द्वारा लिखे गये पत्र होते हैं। पत्रों द्वारा विचारों, भावों, घटनाओं, व्यक्तियों तथा उन सभी बातों और पदार्थों का ज्ञान कराया जा सकता है या कराया जाता है जिन्हें लिखकर समझाया जा सकता है। इस शैली में सारी कथा एक या अनेक पत्रों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। ये पत्र एक व्यक्ति के भी हो सकते हैं और एक से अधिक के भी। जैसे–

"सुषी !

बत्ती की हल्की लौ में तुम्हें लिख रही हूँ। रात हुए बहुत देर हो गयी। घड़ी की ओर देखती हूँ और सोचती हूँ कि आज यह थम क्यों नहीं जाती। क्यों थम नहीं जाती ? कमरों में धीमी रोशनी है। और भारी पुराना फर्नीचर किन्हीं बीते चंचल क्षणों की तरह उदास पड़ा है। बाहर अँधेरा है और सितारे हैं। चीड़ के पेड़ों पर लहराती हवा सरसराती है। खिड़कियों के भारी परदे पूरी तरह हिलते नहीं, पल–पल सिहरकर रह जाते हैं होटल में बिल्कुल खामोशी है। कहीं कोई बोल नहीं आवाज नहीं।"[1]

"बार–बार सोचती हूँ , दिन में सौ बार सोचती हूँ और यही सोच–सोचकर तुम्हें लिखने बैठ गयी हूँ। क्या लिखूँगी, नहीं जानती, बस एक ही बात मन में उठ आती है कि मरना सचमुच में मर जाना होता है। न तन रहता है न राग, न अनुराग। अपने–आपको देखती हूँ और रो देती हूँ। रूलाई के ऐसे ही क्षणों में यह गीली आँखें तुम्हें याद कर लायी हैं।"[2]

'दो राहें : दो बाँहें' कहानी में भी पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।

**व्यंग्यात्मक शैली** - कृष्णा सोबती ने वर्णन अथवा पात्र के कथन को रेखांकित करने के लिए कहीं–कहीं व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है द्रष्टव्य है –

एक बार परीक्षा की नजरों से पति की ओर देखा – तब तक धर्मपाल सिगरेट जला चुके थे। सिगरेट के फैलते – से धुएँ ने मानो उनके चेहरे की असली रेखाओं को ढक

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0– 140

[2] वही – वही पृ0 – 73

लिया। श्यामा ने कटाक्ष किया – "आज तो ज़मानों के बाद घर की बड़ी बहू को देखा है जी ! क्या उससे डर गये थे ? एक बात ही कर लेते बेचारी के साथ।"[1]

ठीक ग्यारह–बीस पर फाइलों का पुलिन्दा उठाया और रोज़ की तरह साहब के कमरे की ओर बढ़ गये।

बड़े बाबू के जाते ही शर्मा और बख्शी ही–ही करके हँस दिये, "क्या क़ायम–मिज़ाज पाया है – "कल बेटा गया और आज हज़रत हाज़िर ! पूछिये साहब, छुट्टी कर लेने से क्या कुरसी लुटी जाती थी।"[2]

तबीयत शर्मा की एक झापड़ देने को कुलबुला उठी, पर सिगरेट सुलगाकर रह गया। जल्दी–जल्दी दो–चार कश खींचे और कड़वे गले से कहा – "पण्डताई कोई जुर्म है क्या ? जब देखो यही फब्ती। तुम्हारे डर से क्या कुल–गोत्र बदल डालें ?"

"बदल क्यों नहीं लेता यार, मेरी बात मान, फायदे में रहेगा। कल्लूलाल के स्पेशल कोटे में एण्टरी करवा ले, चुटकी में अफसरी मिलेगी चुटकी में।"[3]

**संवाद शैली** - संवाद या कथोपकन यों तो नाटक का मुख्य तत्त्व है, लेकिन कथा–साहित्य में भी उसका उपयोग विशिष्ट महत्व रखता है। जब दो पात्र आपस में बातचीत करते हैं, तो वह संवाद के अन्तर्गत आता है। संवाद प्रायः संक्षिप्त एवं चुटीले होते हैं –

सरदारी लाल कई बार मित्रो को तकता रहा – फिर रूखाई से पूछा– सच–सच कहेगी ?

मित्रो ने आँखें झपकाई– कयों नहीं !

पहले मेरी सौंह !

.....तो यह नाँवा कहाँ से समेटा है ?"[4]

---

[1] कृष्णा सोबती – बादलों के घेरे, पृ0– 154–155

[2] वही – यारों के यार, पृ0– 21

[3] वही – वही पृ0–22–23

[4] वही – मित्रो मरजानी, पृ0– 47

चूड़े की छनकर सुन माँ की–सी मीठी दीठ से देखा और हँसकर कहा–

"बहन तो पूरी घरनी हुई !"

आँखें नीची कर सबकी सुख–साँद पूछी–

"पीछे सुख तो है ? माँ, शेखजी....."

वीर ने सिर हिला दिया –

"सभी बहना, सब खैर है !"

छन–भर को सोचने लगी अब क्या पूछूँ कि वीर मेरे हँसे, फिर नेह से कहा– "दिवानजी तो मन भा गये न बहना ?"[1]

–रज्जन की कसम है आपको, सच–सच कहिए, क्या यह बात आपको आज पहली बार मालूम हुई ?

कुटुंब बौखलाई – जब भी मालूम हुई हो, हमारे बर्दाश्त के बाहर है।

वकील साहिब ने बड़े दाना अंदाज़ में कहा – आपको जानने का हक है। आप हमारी बीबी हैं। जो चाहे पूछिए।

– कुछ साल हुए जब यह बिरादरी से चली थी कि.....

–रूकिए नहीं, हम सुनने को तैयार हैं।

कुटुंब के सब धीरज–हिम्मत ढह गए। बेचारगी से कहा – दूसरी औरत से आपके बच्चे हैं। सारा चीराख़ाना आ–आकर हमसे कहता था पर हमें यकीन न आता था।"[2] संवाद पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल हैं जिस कारण स्वाभाविकता आ गई है।

**सूत्रात्मक शैली** - लेखिका ने अपने कथा–साहित्य में सूत्रात्मक शैली का प्रयोग भी किया है। जैसे –

"भोर बड़ी संपदा है। जिसने सोकर इसे गँवाया, उसने बहुत कुछ खो दिया।

---

[1] कृष्णा सोबती – डार से बिछुड़ी, पृ0– 42

[2] वही – दिलो– दानिश, पृ0–48

आँखों से न रात और दिन का मिलन देखा और न उनका अलग होना।''[1]

''घर–गृहस्थी माप–तौल सिखाती है मूठ पड़नी है तो मूठ, चुटकी डलनी है तो चुटकी।''[2]

''इसकी करनी आप ही इसे काले पानियों भिजवाएगी!''[3]

बेटी, तेरी सयानफ का क्या मूल्य ? तेरे सास–ससुर ने तुझे पाने को ज़रूर पिछले जन्म कोई अच्छा कर्म किया होगा।''[4]

''जहाँ जन्मी–पली, वही घर अब पराया हो गया।''[5]

''यार जुटे रहो कसकर, मेहनत ज़रूर रंग लायेगी।''[6]

''लिखियाँ किसने मिटायी हैं। लाख करो, सगे अंग संग ही लगे रहते हैं।''[7]

''कुल चलाने को बेटे की लोक–रीत चली आई है।''[8]

**प्रतीक विधान** - प्रतीक मूलतः काव्य का उपकरण है। परन्तु कथा–साहित्य में भी इसका प्रयोग होता हैं प्रतीक मानव मन के भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का साधन है जिसके माध्यम से अमूर्त का प्रतिविधान मूर्त प्रस्तुत होता है। जब रचनाकार को किसी कारणवश अपने मन की बात स्पष्ट करने में कठिनाई होती है तब उसकी भाषा प्रतीकात्मक बनकर भावों–विचारों को व्यक्त करती है।

---

[1] कृष्णा सोबती – ऐ लड़की, पृ0–26

[2] वही – वही पृ0– 32

[3] वही – मित्रो मरजानी, पृ0 12

[4] वही – वही पृ0– 36

[5] वही – वही पृ0–50

[6] वही – यारों के यार, पृ0– 40

[7] वही – डार से बिछुड़ी, पृ0–44–45

[8] वही – ज़िन्दगीनामा, पृ–28

'सूरजमुखी अँधेरे के' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। यह प्रणयवंचिता नारी–मन या ठन्डी नारी का प्रतीक है। यह उपन्यास तीन खंडों में विभाजित है– पुल, सुरंगें और आकाश।

पुल – रत्ती, रीमा, केशी और कुमू के साथ रहती है और कभी–कभी उखड़ी–उखड़ी हो जाती है।

सुरंगें – यह रत्ती के अतीत में लौटने की प्रक्रिया है। रत्ती के बचपन की यादें अर्थात् यह रत्ती के अँधेरे अतीत और भयावह वर्तमान का प्रतीक है।

आकाश – रत्ती के ग्रन्थि मुक्त होने का प्रतीक है।

सहसा रत्ती कई बरस छोटी हो आई। शोखी से दिवाकर को आँखों में देखकर कहा–

"हम दोनों मिलकर क्या एक छोटा सा गाछ नहीं उगा सकते!"

"रतिका, यहाँ तो सब पथरीली चट्टानें हैं। कहाँ जमेगा अंकुर!"

"ऐ..... इतना नहीं जानते! मैं जो हूँ धरती!"

रत्ती ने वक्ष – तले फैली क्यारी पर हाथ फिराया लाड़ से –

"यहाँ उगेगा वह गाछ दिवाकर....."

रत्ती खिलखिलाकर हँसने लगी कि भँवराले अँधेरे में सूरजमुखी की बरखा होने लगी।"[1]

प्रस्तुत अंश में रत्ती और दिवाकर का मिलन तथा मिलकर गाछ उगाना और भँवराले अँधेरे में सूरजमुखी की वृष्टि होना आदि प्रतीक रत्ती के अतीत और वर्तमान की ओर संकेत करते हैं।

**बिम्ब विधान** - लेखक अपनी सौन्दर्य चेतना को बिम्बों के द्वारा ही व्यक्त करता है। इस शब्द का प्रयोग प्रायः छाया, प्रतिच्छाया तथा अनुकृति आदि के लिए किया जाता है। हिन्दी का बिम्ब अंग्रेज़ी के 'इमेज' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। बिम्ब मानव की चित्रमयी उपलब्धि है। यथार्थ मानवीय संवेदनाओं को मूर्त रूप से प्रस्तुत करने के लिए शब्दों में चित्र खड़े करना, बिम्ब का

---

[1] कृष्णा सोबती – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0 131

उद्देश्य है। बिम्ब को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए शब्दों के चुनाव पर भी लेखक की दृष्टि रहती है। बिम्ब में कल्पना मूर्त हो उठती है। बिम्ब के माध्यम से रचनाकार की कल्पना एक शब्द चित्र उपस्थित करती है। उदाहरणस्वरूप –

"कंचनजंगा की छोटी–बड़ी बहनेलियाँ सिरों पर रूपे के चौंक–फूल पहने हँस–हँस इतराती थीं। आस–पास फैली दार्जिलिंग की बस्तियाँ हरियाले आँचल पर बिखरी लाल–पीली बिन्दकियों–सी लगती थीं।"[1]

"होटल की अनक्सी गुड़िया के सचमुच के–से घर–सी भर–भर धूप में चमकती थी। छाँह किये धूप की रंगीन छतरियाँ रंग–बिरंगी पाँखुरियोवाले कमलों–सी दीखती थीं और छोटी–छोटी फूलों की क्यारियाँ गुड़िया के पटोलों–सी इधर–उधर बिखर पड़ी थीं।"[2]

"रीमा ने बच्चे के बाल छू दिए तो रत्ती ने धूप की गरमाहट महसूस की।"[3]

कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य में भाषा–शैली पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से कथा–साहित्य के चरित्रों की मनः स्थिति को, अनुभूतियों को, संवेगों को अभिव्यक्ति दी है। उनके साहित्य की शब्दावली बोलचाल की है। उनकी भाषा के तीन स्तर लक्षित होते हैं। पहला साहित्यिक स्तर है जिसमें परिष्कृत शब्दावली आती है। इस शब्दावली में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। दूसरे स्तर में अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी, अरबी, फारसी तथा देहात एवं अंचल के शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसे व्यावहारिक या बोलचाल की भाषा कह सकते हैं। भाषा के तीसरे स्तर के रूप में सोबती जी ने बिम्ब, प्रतीक और काव्यात्मकता को अपनी भाषा में अपनाया है। परन्तु फिर भी इनकी भाषा का सही स्तर बोलचाल की भाषा है। इन्होंने पात्रानुकूल, भावानुकूल संस्कृत, अंग्रेज़ी, पंजाबी उर्दू, अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग करके अपने साहित्य को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने वर्णात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, पत्रात्मक

---

[1] कृष्णा सोबती – तिन पहाड़, पृ0 – 74

[2] वही – वही पृ0 – 75

[3] वही – सूरजमुखी अँधेरे के, पृ0 – 17

शैली, व्यंग्यात्मक शैली, संवाद शैली, सूत्रात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है साथ ही मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। भाषा मूलतः मनुष्य के अन्तर्जीवन की अभिव्यक्ति है, जिसके माध्यम से कोई भी साहित्यकार अपने विचारों को पाठकों के समक्ष रखता है। भाषा ऐसी हो, जो जनसाधारण के मन को छू सके, प्रभावित कर सके। कृष्णा सोबती की सूक्ष्म संवेदनशीलता, भाषा–शैली, पात्र सभी कुछ अनूठा है। उनकी भाषा मधुर और कोमल है।

# परिशिष्ट–II

## कृष्णा सोबती से साक्षात्कार का विवरण

प्र0 : आपको लिखने की प्रेरणा कैसे मिली ? सबसे महत्वपूर्ण चीज किसे मानते हैं। मेरा मतलब महत्वपूर्ण से यह है कि ऐसा कौन–सा ज़ज्बा है कि आप लिखते समय इतने मग्न हो जाती हैं कि सारी दुनिया को भूल जाती हैं ?

उ0 : लिखने की प्रक्रिया में शायद कोई लेखक मग्न नहीं होता। कम–से–कम मैं तो नहीं। लेखक की हैसियत से मैं अपनी पूरी रचनात्मक विरासत के साथ सजग और चौकन्ना हो उठती हूँ। मैंने जो भी अपने अन्दर–बाहर का अपने में ज़ज्ब किया होता है, संचित किया होता है उस अनुभव को मात्र स्मृति के बल पर नहीं दिल दिमाग के संकेतो और संवेगों से उसे पन्नों पर अनुभूति से तरंगित करना होता है। सबसे पहले विचार और भाव लेखक की आँख के सामने दृष्टिगोचर होते हैं, तब वह उसे पंक्ति में पिरोता है और पंक्ति दर पंक्ति उस पाठ को संजोती है, जिसे कथ्य के रूप में पाठक पढ़ता है।

प्र0 : आप साहित्य की रचना–प्रक्रिया कैसे करते हैं तथा आप अपने लेखन में किन वस्तुओं को जरूरी मानती हैं?

उ0 : हर लेखक के लेखन की प्रक्रिया किसी बंधे–बंधाये चौखटे से नहीं उभरती। वातावरण, सामाजिक, पारिवारिक, जलवायु, तन–मन का स्वाभाविक तापमान, आनुवंशिक दुर्बलताएँ और विशेषताएँ बहुत कुछ मिलकर लेखक के संस्कार और चुनाव को तय करते हैं। और इन सब से अलग और आगे वह आँख होती है जो परत–दर–परत ज़िन्दगी की तहों को खोलती है। घटित होने के पिछवाड़े पहुँचती है और अतीत से भविष्य को जोड़ती है। यही समर्थ भाषा से, खामोशियों से शब्द देती है और शब्दों को विचार की निष्ठा और विश्वसनीयता।

प्र0 : आप अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना किसे मानते हैं ?

उ0 : मुझे अभी अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना पाठकों के सामने प्रस्तुत करनी है।

प्र0 : अपनी रचनाओं के सन्दर्भ में आपका क्या दृष्टिकोण है ?

उ0 : साहित्य के व्यापक सन्दर्भों में मैं अपनी रचनाओं को एक छोटे से चिन्ह की तरह देखती हूँ। क्योंकि जानती हूँ साहित्य समग्रता में इतना गहरा, विशिष्ट और विशाल है कि अपनी लेखकीय उर्जा को, छोटी–सी कलम को कोई नाम देने की जुर्रत नहीं की जा सकती।

प्र0 : किन विषयों पर लिखने में अधिक रुचि है ?

उ0 : मेरे व्यापक सरोकार विषय से नहीं, मानवीय तन–मन से है। उस समाज से भी जिससे हम जुड़े है। उस राष्ट्र से भी जिसके हम नागरिक हैं, उन परम्पराओं और कानूनों से भी जो हमारे जीवन को जीने के लिए एक चौखट प्रदान करते हैं। व्यक्ति और समाज के बीच आमने–सामने के दबाव और तनाव मेरी लेखकीय परिधि के बाहर नहीं। हमारा सम्बन्ध उन शाश्वत मूल्यों से भी गम्भीर रूप से जुड़ा है जिन्हें इन्सान ने लम्बे संघर्षों के बाद अर्जित किया है, स्थापित किया है।

प्र0 : आपके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ क्या हैं और वे आपकी किस रचना में सर्वाधिक प्रतिबिंबित हुई हैं ?

उ0 : साहित्यकार होने के नाते जीवन की छोटी–बड़ी घटनाएँ जब लेखन तक पहुँचती हैं तो उनके मूल में बहुत से उलटफेर हो चुके होते हैं। वह एक ऐसा रसायन बनता है जो अर्क की तरह छनता चला जाता है उन्हें मात्र घटनाओं में ढूँढ़ना पाठ के महत्व को कम करना है।

प्र0 : आपने अपनी आत्मकथा क्यों नहीं लिखी जैसे पुरुष लेखक लिखते हैं ? आप लिख रहीं हैं या नहीं। हिन्दी साहित्य की महिला लेखिका अपनी आत्मकथा नहीं लिखती इसके पीछे क्या कारण हैं ?

उ0 : साहित्यिक विमर्श और संघर्ष मात्र की छोटी–बड़ी घटनाओं में से ही नहीं उभरते वह स्वरूप ग्रहण करते हैं उस दृष्टि से, उस मनोभाषा से जिसे लेखक जाँचता पड़तालता है। बहुत से मामूली दिखने वाले पात्र लम्बे वक्त में छनकर विशेष और असाधारण बनते हैं। ऐसे बनकर उभरते हैं जैसे वह पहले नहीं थे या पहले उन्हें किसी ने इस

कोण से देखा नहीं था। किसी भी व्यक्ति का समूचा व्यक्तित्व उसकी व्यक्तिगत क्षमताओं में नहीं सामाजिक संगतियों, वातावरण और शक्तियों से उजागर होता है। ये तभी घटित होता है जब किसी–न–किसी रूप में टकराहट जन्म लेती है। अपने तईं मैं अपने को साधारण जन की संज्ञा देती हूँ उसी माध्यम से अपने और दूसरों को पहचानती हूँ। यह कहना गलत न होगा कि लेखक अपने में अनेकों मुखड़ों वाले जनसाधारण को जीता है। लेखक उसी साधारणता को अपनी ईमानदारी और रचनात्मक कौशल से असाधारण बना देता है। उनके तन, मन में उन खूबियों और खामियों को खोजता है जिससे इस लोक का समूचा व्यापार चलता है। एक लम्बे सफर में मुझे अपने सफर में ऐसा कुछ विशिष्ट नहीं लगता रहा कि मैं अपनी आत्मकथा लिखूं। मैंने एक बड़ी दुनिया को जिया है, मेरे पास छोटा संकुचित संसार नहीं रहा। मैंने स्त्री–पुरुष दोनों की दृष्टि और अनुभव को देखा जाना और समझा है। मैं किसी भी इकहरे अनुभव को संदेह से देखती हूँ। जहाँ तक अन्य महिला लेखिकाओं का सवाल है उनके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकती।

प्र0 : हमारे समाज में औरत को दोयम दर्जा का स्थान दिया है क्या लेखन में भी उसको दोयम दर्जा दिया हुआ है। अगर है तो क्यूँ ? क्या पुरुष के मुकाबले आप अपना लेखन दोयम दर्जा का मानती हैं और क्यों ?

उ0 : अपनी बात कहूँ तो मेरी रचनात्मक के साथ मेरे व्यक्तित्व का स्थान हमेशा प्रथम रहा है। ये खूबी मेरी नहीं उन सर्जक क्षमताओं की रही जिन्हें परिश्रम और पौरुष से अर्जित किया जाता है। एक बात बिल्कुल साफ हो कि साहित्य संसार में मात्र चाहने से नहीं, महत्वाकांक्षा से भी नहीं, लेखकीय मर्यादा को कृति दर कृति कार्यरत होकर प्रमाणित करना पड़ता है। लेखक का अनुशासन बहुत कड़ा है। लेखन मात्र कौशल से और भाषा की योग्यता से नहीं किया जाता, बचे–खुचे समय में मनमाने ढंग से कलात्मक चुहल करने को गम्भीर लेखन नहीं माना जाता। आप स्त्री हों या पुरुष, आपमें होना चाहिए लेखकीय विश्वास, सिद्धांत और वह साहित्यिक संस्कार जो समग्रता में हमारे जीवन का साक्षी है।

प्र0 : आपके अपने विचार में नारी–मुक्ति चेतना क्या है ? कृप्या इस पर विस्तार से बताइये।

उ0 : नारी–मुक्ति चेतना मानवीय चैतन्य का ही एक स्वरूप है, एक माँग है। इसी माँग से मानवीय अधिकार जुड़े हैं। नारी–मुक्ति आन्दोलन की बात न भी करें तो भी नारी अपनी संज्ञा, निज का व्यक्तित्व और उससे जुड़ी अस्मिता की ओर प्रेरित है। वह मात्र परिवार और समाज के मूल्यों से ही अपना साक्षात्कार नहीं कर रही। वह एक बड़ी दुनिया के परिप्रेक्ष्य में अपने को स्थापित करने हेतु संघर्ष कर रही है। वह आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होना चाहती है वह किसी पर निर्भर नहीं होना चाहती है। क्योंकि वह जान गई है कि यदि आप अपने तन, मन के निमित्त कुछ समझौते करते हैं तो उसकी कीमत आपको जरूर चुकानी पड़ती है।

प्र0 : नारी–मुक्ति चेतना के बारे में पुरुष लेखक ने भी लिखा और स्त्री लेखिकाओं ने भी लिखा। इन दोनों में आप किसका प्रमाणिक मानती हैं?

उ0 : नारी–चेतना या कमजोर वर्गों के बारे में लिखना स्वयं उनकी संज्ञा या खोल में होना या उसी वर्ग से सम्बन्धित होना जरूरी नहीं। दरअसल आवश्यक है मानसिक और वैचारिक रूप में उनके निकट होना, उन्हें समझ पाना जरूरी है। ऐसी अन्तर्दृष्टि और विवेकशीलता से उनकी विषमताओं, अपेक्षाओं, क्षमताओं का जायजा लेना सर्वप्रथम है। ये सोचना कि पुरुष होकर आप पुरुषों को गहराई से जाने हैं या महिला होकर आप महिला के अन्तरंग को जानते हैं सही नहीं। असली बात व्यापक और विस्तृत अनुभवों द्वारा अर्जित की गई उन अन्तर्दृष्टियों की सघनता है जो लेखक मन में सृष्टि के किसी भी कोने को आलोकित कर सकती है। 'ज़िन्दगीनामा' में असंख्य पुरुष पात्र हैं और स्त्री पात्र भी। 'दिलो–दानिश' के वकील साहिब और उनकी पत्नी की पहचान करने के लिए मुझे पुरुष होने की दरकार नहीं थी। स्त्री और पुरुष एक ही समाज को जीते हैं, एक ही लोक में रसते–बसते हैं। सांझेपन में ज़िन्दगी को अरख–परख सकते हैं।

प्र0 : 'ऐ लड़की' उपन्यास में आप क्या बताना चाहती हैं? इसका लिखने का उद्देश्य क्या है ?

उ0 : 'ऐ लड़की' के फ्लैप को पढ़ने की चेष्टा करें। उसको पढ़े तो सब पता चल जाएगा। इस पाठ में निहित नये–पुराने संस्कार कर निस्तारा कर सकेगीं। किसी भी रचना का उद्देश्य क्या है ये रचनाकार से न पूछिये पाठक की हैसियत से स्वयं जांचिए फिर आलोचक की निगाह से इसके पाठ की पड़ताल किजिए।

प्र0 : आजादी के पचास वर्ष बीत जाने के बाद महिलाओं ने कितनी प्रगति की खासतौर पर महिला लेखिका किन मुकामों से होते हुए आज तक पहुँची। क्या हिन्दी–साहित्य में महिला लेखन का अगला वर्ग है ? आजादी के पहले और आज इसके तेवर में क्या फर्क आया ?

उ0 : इस प्रश्न के उत्तर में 'हाँ' और 'न' दोनों ही। अपनी रचनाशीलता और व्यापक संवेदन से हमारी कई महिला लेखिकाओं ने साहित्य को प्रभावित किया है जैसे–जैसे पढ़े लिखे महिला वर्ग का दायरा विस्तृत होता जाएगा उनके रचनात्मक कृतित्व के मानदण्ड साहित्य के सरोकारों को प्रतिबिंबित करने लगेगें। हमारे पास कारण मौजूद हैं ये विश्वास करने के कि महिला रचनाकारों का वृतान्त, कथ्य और शैली अपने पुरुष समकालीनों से कमतर नहीं।

प्र0 : आलोचकों का कहना है कि महिला लेखिका परिवार, बच्चे, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध तक ही सिमट कर रह गया है। लेकिन आज बदलाव आया है तो कितना ? अगर दायरे को तोड़ने में अड़चने हैं तो वह कौन–कौन सी हैं ?

उ0 : तथाकथित प्रश्नों का सम्बन्ध हमारे सामाजिक परिवेश से है स्त्री या पुरुष होने से नहीं। लेखकीय अनुशासन रचनात्मक आस्था, मानसिक विस्तार समय सजगता और सैद्धान्तिक आस्थाओं की अपेक्षा करता है। कोई भी आसान रास्ता आपकी रचना में से लक्षित होकर लेखक सीमाओं को प्रदर्शित कर जाता है उसे औसत कलात्मकता का उद्घाटन कहें तो गलत न होगा। गम्भीर प्रतिबद्धता सतही दृष्टि वाले लेखन से नहीं जुड़ती। घरेलू कामकाज से फुरसत पाकर किए जाने वाला लेखन मात्र लोकप्रिय

होकर रह जाता है। राजनीति को समझने–बूझने और उसके व्यावहारिक तन्तुओं को समेट पाना अनुभव के बिना नहीं हो सकता।

प्र0 : स्त्री लेखिकाओं में सामाजिक प्रतिबद्धता के स्वर तो सुने गये हैं मगर राजनैतिक लेखन या विचारधारा का प्रभाव महिला लेखन पर कम क्यों रहा ? इसका क्या कारण है। क्या आप भी कोई राजनैतिक चेतना से सम्बन्धित रचना लिखने का इरादा रखती हैं या लिख रही हैं ?

उ0 : 'ज़िन्दगीनामा' विभाजन से पहले के कालखण्ड़ को समझने–बूझने, पड़तालने की कोशिश है। इस क्षेत्र और उस क्षेत्र और उसकी राजनैतिक स्थितियाँ, परिस्थितियाँ अपने उलझाव में राजनैतिक विसंगतियों विरोधी दिशाओं से आमने–सामने ला खड़ा करती हैं। अपनी कोशिश इसे टटोलने और जाँचने की वह प्रक्रिया थी जिसके बीचों बींच से गुजर कर आपको एक व्यापक संसार से साक्षात्कार करना होता है। ऐसा उपन्यास लिखना कहानी या कविता लिखने के समान नहीं ये लेखक से कार्यकारी गम्भीरता और प्रतिबद्धता की माँग करता है और उन चुनौतियों की पहचान कराता है जो राष्ट्रीय सन्दर्भ में हमारी राजनीति से जुड़े हों और सामाजिक स्तर पर उससे विलग दिखते हुए भी उनके सूत्रों को अपने में बाँधे हुए हों।

प्र0 : हिन्दी साहित्य में महिला लेखन में आजादी के बाद हुए आन्दोलनों का कितना प्रभाव पड़ा। 80–90 के दशक में जो परिवर्तन दिखा उसकी वजह क्या है ?

उ0 : हमारे राष्ट्र ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पचास वर्ष पूरे किए। स्वतन्त्र देश के नागरिक पुरुष हों या महिलाएँ सभी एक नये लोकतान्त्रिक संस्कार को धारण करने की प्रक्रिया में से गुजरे हैं। भारत देश के नागरिक होने के नाते दोनों ही भारतीय जनतन्त्र के अभिन्न अंग हैं, ऐसे में कोई भी परिवर्तन समूचे राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित करता है। देश के कमजोर वर्ग अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ जिस आरक्षण की अधिकारी बनी हैं वह हमारे सामाजिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक स्थितियों को भी प्रभावित करती हैं।

प्र0 : स्त्री में साक्षरता वृद्धि महिला सम्बन्धी कानूनों में सुधार मीडिया आदि का नारी लेखन पर क्या प्रभाव रहा है ?

उ0 : संविधान द्वारा भारतीय स्त्री–पुरुष को एक से बराबर के अधिकार दिए गए हैं। हमारा कानून भी पितृ पक्ष के मुकाबले स्त्री पक्ष की और प्रवाहित हो रहा है। यद्यपि यह कमतर मात्रा में है फिर भी कानून की सजग दृष्टि इसकी ओर देखने को प्रतिबद्ध है। सामाजिक रूप में भारतीय महिला को अपने जीवन में इन अधिकारों का लाभ उठाने के लिए शिक्षा, सजगता और आत्मविश्वास की जरूरत है।

प्र0 : महिला लेखिकाओं में कथा–लेखन के मुकाबले कविता और आलोचना क्यों कम दिखती हैं ?

उ0 : बौद्धिक रूप से महिला लेखिकाओं ने वह तटस्थता और आलोचनात्मक कौशल नहीं जुटाया जिससे आलोचक होने की क्षमताएँ, साहित्यिक अवधारणाएँ विकसित होती हैं। यह गम्भीर अध्ययन और विश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों की माँग करता है।

प्र0 : आम महिलाओं तक महिला लेखन कितना पहुँच रहा है और उनसे 'फीड़ बैक' (प्रतिक्रिया) में क्या बदलाव आया है ?

उ0 : किन्ही भी महिला आन्दोलनों से हटकर आज भारतीय स्त्री अपने व्यक्तित्व की खोज में रत है। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होना उसके लिए पहली शर्त है। वह साक्षर महिलाएँ भी इस ओर कदम उठा रही हैं।

प्र0 : पुरुष आलोचकों ने आपके कथा–साहित्य की आलोचना करते हुए कहा है कि कृष्णा सोबती की रचनाओं में पुरुषों की तरह बेबाकी है या किसी हद तक उसे अश्लीलता का नाम दिया है। इस संदर्भ में आप क्या कहेंगी ?

उ0 : मैं अपने साहित्यिक सफर में अपने सम्पादकों और आलोचकों को हमेशा गम्भीरता से लेती रही हूँ। उनकी जाँच पड़ताल से कुछ न कुछ सीखती रही हूँ। मेरे आलोचकों या पाठकों ने मेरे पाठ को लेकर कोई भी संकेत किया है तो उसे समझने बूझने से मैं चूकती नहीं। रचनात्मक लेखन में जिस पौरुष की बात की गई है मैंने उनकी इस जांच को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है। मेरी जानकारी में मेरे कुछ पाठकों को

अश्लीलता की शिकायत होती रही है। अगर वह पाठ को ध्यान से और पूर्वाग्रहों से मुक्त हो कर देखें तो पायेंगें कि नैतिकता विरोधी दिशा से उभरकर भी अश्लील अश्लील नहीं होता। 'यारों के यार' के संदर्भ में गालियों के प्रयोग को अश्लील नहीं कहा जा सकता गालियों की अपनी सत्ता है। व्यावहारिक भाषा में वह लगातार इस्तेमाल होती ही रहती हैं। दिल की उलझती, नापसन्दी, नफरत, बेबसी, आक्रोश को प्रकट करने के लिए ही गालियों का भाषाई आरम्भ और विस्तार हुआ होगा। 'सूरजमुखी अँधेरे के' में बलात्कार के सम्बन्ध में उसे अश्लील मान लेना सामाजिक और साहित्यिक स्तर पर अनुचित है। याद रहे साहित्य अपने व्यापक परिवेश में जीवन के हर पहलू को देख सकता है, जांच पड़ताल कर उसे अंकित कर सकता है। साहित्य धर्मशिक्षा नहीं – साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है।

हां लेखक की रचनात्मक शनाख़त करने के लिए साहित्य के पाठक की लेखकीय कृतियों की सूक्ष्मता, पाठ के साथ–साथ बहती चेतना और भाषाई शोर के पीछे की ख़ामोशियों को भी देखना ज़रूरी है। सतह पर दिखता मात्र वृत्तान्त ही पढ़ लेना काफी नहीं।

आलोचको के अनुसार – "कृष्णा सोबती ने हिन्दी की कथा–भाषा को एक विलक्षण ताज़गी दी है। उनके भाषा संस्कार के घनत्व, जीवन्त प्रांजलता ओर सम्प्रेषण ने हमारे समय के अनेक पेचीदा सच आलोकित किए हैं। उनके रचना संसार की गहरी सघन ऐन्द्रियता तराश और लेखकीय अस्मिता ने एक बड़े पाठक वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट किया है। निश्चय ही कृष्णा सोबती ने हिन्दी के आधुनिक लेखन के प्रति पाठकों में एक नया भरोसा पैदा किया है।"

प्र0 : मैं समझती हूँ आपका लेखन केवल महिला लेखिकाओं के लिए ही नहीं बल्कि पुरुष लेखकों के लिए भी एक चुनौती है। क्या आप भी यह मानती हैं और कैसे ?

उ0 : किसी भी रचना का पाठ पाठक के निकट जितना साधारण बनकर उघड़ता है उतना ही असाधारण होकर पढ़ने वाले के अंतरथ में ज़ज्ब होता है। लिखने वाला लेखक है। लेकिन उस एक लेखक के संवेदन से अनेक अनाम लोग जुड़े रहते हैं। उस पाठ में

अपनी संज्ञाओं में मौजूद रहते हैं जिन्हें लेखक ने अपनी अन्तर्दृष्टि से, अनुभव और अनुभूति से, भाषा, भाव और विचार के घनत्व से बुना है।

प्र0 : अन्त में आपसे एक प्रश्न पूछना चाहूँगी कि आजकल आप क्या लिख रहे हैं ?

उ0 : मैं इन दिनों दो उपन्यासों पर काम कर रही हूँ। एक बड़ा उपन्यास जो 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का दूसरा भाग है और एक छोटा उपन्यास जो वरिष्ट नागरिकों के जीवन को उद्‌घाटित करता है।

# ग्रन्थ-सूची

## मूल ग्रन्थ

### उपन्यास


| लेखक | पुस्तक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|
| कृष्णा सोबती | ऐ लड़की | राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली | 1991 |
| वही | ज़िन्दगीनामा: जिन्दारूख | वही | तृ0 सं0 1989 |
| वही | डार से बिछुड़ी | वही | पांचवां सं0 1992 |
| वही | तिन पहाड़ | वही | चतुर्थ सं0 1993 |
| वही | दिलो-- दानिश | वही | 1993 |
| वही | मित्रो मरजानी | वही | दूसरा सं0 1989 |
| वही | यारों के यार | वही | चतुर्थ सं0 1993 |
| वही | सूरजमुखी अँधेरे के | वही | चतुर्थ सं0 1990 |


### कहानी-संग्रह


| | | | |
|---|---|---|---|
| कृष्णा सोबती | बादलों के घेरे | राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली | तृ0 सं0 1989 |


### संस्मरण


| | | | |
|---|---|---|---|
| कृष्णा सोबती | हम हशमत | राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली | तृ0 सं0 1989 |

## विविधा


| | | | |
|---|---|---|---|
| कृष्णा सोबती | सोबती एक सोहबत | राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली | तृ0 सं0 1989 |


## सहायक ग्रन्थ


| | | | |
|---|---|---|---|
| अमरकान्त | देश के लोग | धारा प्रकाशन इलाहबाद | 1969 |
| अमर प्रसाद गणेश प्रसाद जायसवाल | हिन्दी लघु उपन्यास | विद्या विहार कानपुर | 1984 |
| अर्चना जैन | प्रेमचन्द के साहित्य में सामाजिक चेतना | इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन | 1979 |
| आशा रानी व्होरा | नारी शोषण आइने और आयाम | नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली | 1982 |
| वही | नारी विद्रोह के भारतीय मंच | वही | 1991 |
| आशा बागड़ी | प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यास पारिवारिक जीवन | शोध–प्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली | 1974 |
| उषा देवी मित्रा | नष्ट नीड़ | नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली | 1965 |
| वही | रागिनी | हिन्दुस्तान पब्लिकेशन इलाहबाद | 1946 |
| वही | वचन का मोल | नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली | तृ0 सं0 1957 |
| उषा प्रियंवदा | शेष यात्रा | राजकमल प्रकाशन दिल्ली | द्वि0 सं0 1988 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| उषा प्रियंवदा | ज़िन्दगी और गुलाब के फूल | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली | तृ0 सं01971 |
| वही | रुकोगी नहीं राधिका | राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली | 1984 |
| उमेश माथुर | आधुनिक युग की हिन्दी–लेखिकाएँ | ऋषभचरण सन्स दिल्ली | 1969 |
| उर्मिल गम्भीर | प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों का समाज – शास्त्रीय अध्ययन | आर्य बुक डिपो नयी दिल्ली | 1972 |
| उर्मिला गुप्ता | स्वातन्त्र्योत्तर कथा–लेखिकाएँ | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली | 1967 |
| वही | हिन्दी –कथा–साहित्य के विकास में महिलाओं का योग | वही | 1966 |
| कमला चौधरी | यात्रा | साहित्य सेवा–सदन मेरठ | तृ0 सं0 1950 |
| कमला त्रिवेणीशंकर | जयमाल | ..... | ..... |
| कमलेश्वर | नयी कहानी की भूमिका | अक्षर प्रकाशन दिल्ली | द्वि0 सं01969 |
| कृष्ण बिहारी मिश्र | आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और हिन्दी साहित्य आधुनिक | आर्य बुक डिपो | 1972 |
| कंचनलता सब्बरवाल | अनचाहा | किताब महल इलाहबाद | 1960 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| घनश्याम मधुप | हिन्दी लघु उपन्यास | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली | 1971 |
| चन्द्रकिरण सौनरेक्सा | आदमखोर | सरस्वती पुस्तक मन्दिर दिल्ली | 1948 |
| जगमोहन चोपड़ा | आधुनिक हिन्दी उपन्यास | विक्रान्त प्रैस बजीरपुर | 1982 |
| तारा पाण्डे | उत्सर्ग | विद्या भास्कर बुक डिपो बनारस | 1937 |
| तेजरानी पाठक | अंजलि | चाँद प्रेस इलाहबाद | 1931 |
| दीप्ति खण्डेलवाल | प्रतिध्वनियाँ | पराग प्रकाशन दिल्ली | 1978 |
| देवेश | प्रसाद के नारी चरित्र | नवयुग प्रकाशन दिल्ली | 1966 |
| नगेन्द्र | आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ | नेशनल पब्लिशिंग दिल्ली | 1941 |
| नरेन्द्र मोहन | आधुनिकता और समकालीन रचना–संदर्भ | आदर्श साहित्य प्रकाशन | 1973 |
| पीयूष गुलेरी | चन्द्रधर शर्मागुलेरी व्यक्तित्व एवं कृतित्व | दिग्दर्शन जैन ऋषभ चरण जैन एवम सन्तति नयी दिल्ली | 1983 |
| पुष्पपाल सिंह | समकालीन हिन्दी कहानी | हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ | 1987 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| पुष्पपाल सिंह | समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ | नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली | 1986 |
| पुरुषोतम दुबे | व्यक्ति चेतना और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास | अनुपमा प्रकाशन बम्बई | 1973 |
| प्रभा खेतान | स्त्री : उपेक्षिता | सरस्वती विहार दिल्ली | 1990 |
| बटरोही | कहानी : संवाद का तीसरा आयाम | नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली | 1983 |
| बैजनाथ शुक्ल | भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना | प्रेम प्रकाशन मन्दिर दिल्ली | 1977 |
| बंगमहिला | कुसुम–संग्रह | साहित्य सेवा–सदन काशी | 1922 |
| मन्नू भण्डारी | एक इंच मुस्कान | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली | द्वि0 सं0 1960 |
| वही | प्रतिनिधि कहानियाँ | राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली | 1994 |
| मुक्तिबोध | नये साहित्य का सौन्दर्य–शास्त्र | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली | 1971 |
| मोहन लाल | पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' | दिग्दर्शन ऋषभजैन | 1974 |
| रत्नाकर | कहानीकारः उपन्यासकार | एवं सन्तति | |
| मृदुला गर्ग | कितनी कैदें | इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन दिल्ली | 1994 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| यामिनी गौतम | सावित्री और कामायनी की चेतना का तुलनात्मक अध्ययन | नचिकेता प्रकाशन दिल्ली | 1984 |
| रजनी पनिकर | मोम के मोती | शारदा मन्दिर प्रकाशन दिल्ली | द्वि0 सं0 1960 |
| वही | सिगरेट के टुकड़े | वही | 1956 |
| रत्नाकर पाण्डेय | हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना | पाण्डुलिपि प्रकाशन दिल्ली | 1976 |
| राजेन्द्र अवस्थी | प्रश्नों के घेरे | सरस्वती विहार दिल्ली | 1981 |
| राजेन्द्र यादव | औरों के बहाने | अक्षर प्रकाशन नयी दिल्ली | 1981 |
| वही | एक दुनिया : समानान्तर | वही | चौथा सं0 1980 |
| वही | कहानी स्वरूप और संवेदना | नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली | 1968 |
| रामशुक्ल पाण्डेय | मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय | रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा | 1965 |
| लक्ष्मीकान्त वर्मा | नयी कविता के प्रतिमान | भारती प्रैस प्रकाशन दिल्ली | 1977 |
| लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय | हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली | 1970 |
| शिवरानी देवी | नारी–हृदय | प्रेमचन्द गृह बनारस | |
| शैलेश मटियानी | सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ | विकल्प प्रकाशन इलाहबाद | 1971 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सरिता कुमार | महिला कथाकारों के कथा साहित्य में प्रेम का स्वरूप–विकास | राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली | 1983 |
| सर्वपल्लि राधाकृष्णन् | भारतीय दर्शन | राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली | 1966 |
| सुभद्रा कुमारी चौहान | उन्मादिनी | अजय चौहान जबलपुर | 1934 |
| वही | बिखरे मोती | हंस प्रकाशन इलाहबाद | पंचम सं0 1959 |
| सुमित्रा कुमारी सिन्हा | अचल सुहाग | युग मन्दिर उन्नाव | पंचम सं0 1939 |
| वही | वर्षगाँठ | वही | 1941 |
| संतबख्श सिंह | नयी कहानी :कथ्य और शिल्प | अभिनव भारती प्रकाशन इलाहबाद | 1973 |
| हेमेन्द्र पानेरी | स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासः मूल्य संक्रमण | संघी प्रकाशन जयपुर | 1974 |
| होमवती देवी | धरोहर | साहित्य भण्डार आगरा | 1946 |
| वही | निसर्ग | वही | 1939 |
| त्रिभुवन सिंह | हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद | हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी | सम्वत 2022 |
| त्रिलोक चन्द तुलसी | परिवेश, मन और साहित्य | प्रतिभा प्रकाशन होशियारपुर | 1974 |

# कोश

## हिन्दी कोश


| | | | |
|---|---|---|---|
| ओम प्रकाश गावा | समाज विज्ञान कोश | वी0 आर0 पब्लिशिंग कार्पोरेयान दिल्ली | 1984 |
| कालिका प्रसाद | बृहत हिन्दी कोश | ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी | सम्वत 2001 |
| गोविन्द चातक | आधुनिक हिन्दी शब्द–कोश | तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली | 1986 |
| धीरेन्द्र वर्मा | हिन्दी साहित्य कोश | ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी | सम्वत 2015 |
| नवल जी | नालन्दा विशाल शब्द सागर | आदीश बुक डिपो दिल्ली | 1978 |
| नगेन्द्र | मानविकी पारिभाषिक कोश | राजकमल प्रा0 लि0 प्रकाशन दिल्ली | 1965 |
| रामचन्द्र वर्मा | हिन्दी मानक कोश : भाग दो | हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग | सम्वत 2014 |
| राम प्रसाद त्रिपाठी | हिन्दी विश्वकोश : खण्ड चार | नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी | 1964 |
| वामन शिवराम आप्टे | संस्कृत हिन्दी कोश | मोती लाल बनारसी दास लखनऊ | 1966 |
| सत्यपाल गुप्त व श्यामकपूर | अभिनव पर्यायवाची कोश | आर्य बुक डिपो | 1965 |

## अंग्रेजी कोश


| | | | |
|---|---|---|---|
| आ0 ए0 सैलिगमैन | इन्साइक्लोपीडिया ऑफ साइंसज, वाल्यूम –19 | मैकमिलन एण्ड कम्पनी | |
| इन्साइक्लोपीडिया वर्ल्ड यूनिवर्सिटी : भाग चार | | न्यूयार्क वाशिंगटन | 1968 |


**पत्र-पत्रिकाएँ**


आजकल, दिसम्बर1979

आलोचना, जनवरी –मार्च 1976

समीक्षा, जनवरी–मार्च 1980

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिसम्बर 1979

सारिका, जुलाई 1984

संचेतना, मार्च–मई 1979


170801
H. P. University Library
Shimla